मंगल भवन अमंगलहारी

परिवार प्रदीपिका

बेंगलूरु

मंगल भवन अमंगलहारी

(एक प्रश्नोत्तरी)

(मूल कन्नड़ भाषा के 'मनेये मांगल्य'
अर्थात् 'घर ही मांगल्य स्रोत' का हिंदी अनुवाद)

7.2

संपादक मंडली

डॉ. जयश्री, मैसूरु
सुश्री एच. ए. स्वर्णाम्बा, बेंगलूरु
डॉ. रामचंद्र भट्ट कोटेमने, बेंगलूरु
प्रा. टी. एन. प्रभाकर, हासन
श्री एस. सूर्यप्रकाश पंडित, बेंगलूरु
श्री मा. चं. नागराज, बेंगलूरु
श्री सु. नागराज, मंगलूरु

हिन्दी अनुवाद
अशोक भंडारी, बेलगांव

2013

प्रकाशक
परिवार प्रदीपिका
बेंगलूरु – ५६००६२

MANGAL BHAVAN AMANGALHAARI (Original Kannada Book Maneye Mangalya)—A compilation of frequently asked questions with answers on 'Hindu Way of Life' translated to Hindi. Published by Parivar Pradipika, No. 75-76, 'Jnanagiri', IV Cross, II Main, Soudamini Layout, Konanakunte Main Road, Bengalooru - 560062 Ph: 0 99001 57714. Printed by: Gayathri Prints, Bengalooru - 560050. © Parivara Pradeepika, Bengalooru - 560062
First Print: November 2011 Pages: xxiv + 362 Price Rs. 120

प्रथम संस्करण : नवेंबर २०११, ३००० प्रतियाँ
द्वितीय संस्करण : डिसेंबर २०११, ३००० प्रतियाँ
तृतीय संस्करण : जनवरी २०१२, २००० प्रतियाँ
चतुर्थ संस्करण : फेब्रवरी २०१२, ५००० प्रतियाँ
पंचम संस्करण : जनवरी २०१३, ५००० प्रतियाँ

पृष्ट: xxiv + ३६२

मूल्य: रू. १२०

परिवार प्रदीपिका
सं. ७५-७६, 'ज्ञानगिरि'
४ था क्रास, २रा मेन, सौदामिनी ले आऊट
कोणनकुंटे मेन रोड, बेंगलूरु -५६००६२
दूरभाष: ९९००१ ५७७१४

मुद्रक
गायत्री प्रिंट्स
सं. २३२/४, ४ था मेन,
श्रीनिवासनगर बेंगलूरु - ५६० ०५०
दूरभाष: ०८० - २६६९ ९३६७

निवेदन

घर ही है पहली पाठशाला, माता ही है प्रथम गुरु ।
धन्य हैं वे लोग, जो माँ से सीख पाते हैं ।।

ये अतीव अर्थपूर्ण, लोकप्रिय, नित्यनूतनसी कविवाणी है । इनके संदर्भ में हज़ारों घटनाएँ शब्दबद्ध की गईं; तो भी कम ही है । इनका आशय भारत के सभी घरों में साकार हुआ था । अच्छी साक्षरता न होने पर भी, अनगिनत माताओं ने बच्चों को उत्तम संस्कार, अच्छे विचार, सदाचार की शिक्षा देते हुए, उनको सुंदर सुमनों की भाँति विकसित किया था । इस प्रकार घर में ही अच्छी बुनियाद प्राप्त बच्चे भविष्य में हर समय जनमान्य मार्ग पर ही चलते रहें; उन्होंने कभी भी गलत राह नहीं पकड़ी । युगोंयुगों से चली आ रही अपनी यह परंपरा एक अत्यंत उल्लेखनीय बात है ।

हर व्यक्ति सुंदर सा जीवन चलाने के लिए आवश्यक गुण घर में ही सीख सकता है। आत्मविकास करते हुए, दूसरों को विकसित करने हेतु खुद एकाकी न रह कर, समूह के साथ बढ़ते हुए, अंत में भगवद्गीता, उपनिषदादि ग्रंथों के उपदेशानुसार सब कुछ पार करते हुए, स्वयं 'अनिकेत' अवस्था प्राप्त कर सकने का केंद्र घर ही है । अपना व समाज का सुख आदि सब साध्य कर सकने वाला सव्यसाची व्यक्तित्व विकसित करने का काम घर ही करता है । अपने आत्मसुख की बलि चढ़ा कर क्यों न हो, किसी अन्य को सुखी करने की भावसाधना करने का केंद्र घर ही होता है और समाज याने ऐसे ही घरों का एक बृहत् रूप होता है! यही बात घर जीत कर, जगत् जीतो इस कहावत में प्रतिबिंबित हुई है ।

इत:पूर्व शिशु अवस्था से मनुष्यों को घर, मंदिर व पाठशालाएँ (गुरुकुल) ही सुशिक्षित-सुसंस्कारित करती थीं । आज घरों में या मंदिरों में या नूतन आदर्शों वाले जानकारी-केंद्र बनीं पाठशालाओं में इस प्रकार की शिक्षा मिलना दूभर हो गया है ।

घर कहते ही अभी भी अधिकांश लोग वास्तु-आधारित घर के बाहरी लक्षणों के बारे में ही सोचते हैं । घर याने पत्थर, मिट्टी, सीमेन्ट, लोहा मान लिया गया, तो हम गलत सोच के झमेले में फँस जाते हैं । घर का निर्माण घर में वास करने वाले लोगों के आचरण से ही होता है। घरपन-घराना ये शब्द इसी अर्थ से प्रचलित हुए हैं । किसी विशिष्ठ घराने का नाम सुनते ही, उस घराने के लोगों का आचरण, विचार, शील, ज्ञान, निष्ठा आदि गुण आँखों के सामने से गुजर जाते हैं ।

हमारे घर मानव को माधव बनाने वाली टंकशालाएँ थीं । हर दिन की पूजा में धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष नामक चतुर्विध पुरुषार्थों की प्राप्ति का संकल्प दोहराया जाता था। आज धर्म व मोक्ष कुछ हद तक दूर खिसक रहे हैं । बहुत गलत ढंग से इनकी व्याख्याएँ की जा रही हैं। अत: अर्थ व काम की ही मनमानी चल रही है । अपने ऋषियों के उपदेशानुसार, इन चारों पुरुषार्थों का समान रूप से सेवन करना चाहिए। हजारों वर्ष पहले ही व्यास महर्षि ने दोनों हाथ सिर के ऊपर उठा के नमस्कार करते हुए, ऊँची आवाज में हमें उपदेश किया था कि धर्म के आधार पर ही अर्थ-काम का अर्जन व उपभोग करना चाहिए। उन्होंने अपनी व्यथा भी प्रकट की थी कि अधिकांश लोग इस उपदेश की अनसुनी करते हैं ।

आज बहुत से गाँव-देहात केवल बूढ़ों के आश्रयस्थल बन गए हैं। थोड़ी-बहुत शिक्षा प्राप्त करते ही जगमगाते नागरीय जीवन की ओर आकृष्ठ होते हैं । नगरवासी लोगों की दिनचर्या भी धन-केंद्रित होती जा रही है । यहाँ निर्बाध रूप से शोषण चल रहा है । इस शोषणसंस्कृति के कारण मानो संघर्ष ही जीवन बन गया है । इसीलिए आज लोग पहले से भी अत्यधिक दिग्भ्रान्त बने हैं । सबदूर जीवन उतावलेपन, आतुरता से भरा हुआ है । प्रत्यक्ष तनाव हो या नहीं, भारी तनाव है ऐसा प्रतिबिंबित करते हुए, खोखलेपन का जीवन जीने का चलन सा बन गया है । इन सबके बीच भी, यहाँ-वहाँ बिजली सी चमकती प्रकाश किरनें दिखायी देती हैं । आज भी अनेक घरों में 'मैं, मेरा' के स्थान पर 'हम, हमारा' इस समूह तत्व का ही प्रभाव दिखायी देता है । श्रमजीवन, वृक्षवल्लरी के साथ स्पंदन, पशु-पंछी-प्राणियों के साथ घुलमिल के रहना, मानवी मन का विकास करते हुए, एक विश्वकुटुंबी के नाते उसका गढ़न कर रहे हैं । दु:ख की बात यह है कि अब गाँव-देहातों में बचे-खुचे लोग भी राजनीति व जातिकेंद्रित द्वीप जैसे बन गए हैं ।

बड़ी गतिमानता से चलने वाले आज के जीवन में मनुष्य को सोचने के लिए भी

समय नहीं है । अपने चहुँ ओर के लोग जैसा करते हैं, उसीका अनुसरण वह करता है । अंतर्मुख होकर, सही क्या है? दोषपूर्ण क्या है? इसके बारे में चिंतन करते हुए, अच्छे विकल्प की खोज करना रुक सा गया है । बाहरी दृष्टि को दिखायी देने वाले को ही सही मान कर चलने की स्थिति आ गयी है ।

हमारे द्वारा उपयोगित अति अमूल्य कस्तुरी एक मृग के शरीर का पसीना होता है। गर्मी के दिनों में उस मृग के शरीर से जब पसीना छूटता है, तब अपने ही शरीर से बाहर आने वाली सुगंध का सेवन करके, वह कहाँ से आ रही है? ऐसा सोचते हुए, बहती हवा की दिशा में दौड़ते हुए, उस सुगंध का स्रोत कहाँ है? इसकी खोज करने जैसा है यह। वह सुगंध अपने में ही है, इस वास्तविकता से अनजान वह कस्तुरी-मृग चाहे जिस दिशा में जैसी भागदौड़ करता है; उसीके अनुसार आज मानव की स्थिति भी हुयी है। सुख का अनुभव करने की शक्ति अपने अंदर ही है, इससे अनजान मानव भी सुख बाहरी वस्तुओं में है, ऐसा ही भरोसा करते हुए, उनकी खोज-बीन के लिए दौड़धूप करता है; थक जाता है। सुख तो मिलता ही नहीं; सहनशक्ति खो देता है; निराशा आती है । आज के गतिमान जीवन का फल यही है।

हजारो वर्षों से अपने समाज पर विभिन्न प्रकार के आक्रमण होते आए हैं । अत: जीत-हार हमारे लिए सहज-स्वाभाविक से बन गए हैं । ऐसे सभी संदर्भों में हमारा धीरज बनाए रखने का काम हमारे घर ही करते हैं । क्योंकि, हमारे घर के बुजुर्ग हमारे प्रेरणादाता एवं मार्गदर्शक थें । इसीलिए ही पुराने जमाने में हिंदू घर याने, केवल कुछ लोगों के भोजन-निद्रा के केंद्र न बन कर, आदर्श परिवार थें । कुछ घर तो मंदिर बन चुके हैं । वे सब चिरंतन, नित्यनूतन जीवनमूल्यों का सृजन व उनका संवर्धन करने वाले केंद्र थें । विविध स्रोतों से उस प्रकार के जीवनमूल्यों का संकलन इस पुस्तक में किया गया है । निष्ठा से इनका अनुसरण करने वाले घर स्वर्ग के समान होते हैं । 'धन्यो गृहस्थाश्रम:' यह उक्ति तभी सार्थक बनती है । गृहस्थाश्रम शेष तीन आश्रमों का आधार है यह वर्णन केवल अलंकारिक न रह कर, वह यथार्थ बन जाता है । वैसे लोगों को प्रश्नोत्तरी के रूप वाला यह ग्रंथ मार्ग दर्शाता है । चिंतन करने की प्रेरणा प्रदान करता है। अर्थ-काम जीवन के लक्ष्य नहीं बन सकते । पूर्णता प्राप्त करना ही जीवन का लक्ष्य है, इसे भली भाँति समझाता है ।

इस पुस्तक में दिनचर्या से प्रारंभ करते हुए निद्रा तक, जन्म से आरंभ कर मृत्यू तक, विधि-निषेधों से लेकर हर घर के लिए एक वयोवृद्ध कहने तक, भिखारी, निराधार बच्चे, मतांतरण, चुनाव आदि सभी विषयों के बारे में प्रश्नों का समावेश किया गया है । अनुभवी, आदर्श गृहस्थों द्वारा दिए गए उनके उत्तर भी इसमें समाविष्ठ किए गए हैं । उन सब उत्तरों का विषयानुसार संकलन कर, समन्वय बिठाते हुए प्रकाशन के लिए इसे तैयार किया

गया है । तदर्थ कुछ वर्षों से विचारमंथन करते हुए, विद्वत्-मंडली ने यह विचार नवनीत आपके सम्मुख प्रस्तुत किया है ।

कुछ चुनिंदा मंदिरों के सूचना-फलकों पर हर दिन इनमें से एक-एक प्रश्न लिख कर, भक्तों के मन में उत्तर के बारे में कौतूहल जाग्रत किया गया । भक्तों ने भी इन प्रश्नों को दो-दो बार पढ़ कर, उत्तरों के बारे में चिंतन किया । सोचे गए उत्तरों को अपने घर वालों के साथ बाँट लिया । यह कार्य अब सब दूर फैल कर, देशव्यापी बनना चाहिए । लेकिन अपने देश का विस्तार, समाज में स्थित वैविध्यों को ध्यान में लेने पर, किसी भी प्रश्नों के उत्तर समाजांतर्गत सभी समुदायों को समान रूप से स्वीकार्य होना थोड़ा कठिनप्रद हो सकता है, इस वास्तविकता का आभास भी हो चुका है । यह प्रयोग करने वाले सभी लोग विविध जाति-संप्रदाय-भाषाओं से आए हैं । वे सब धर्मनिष्ठ व पूर्वाग्रहों से पूर्णत: अलिप्त लोग हैं । इसीलिए प्रस्तुत प्रयोगांतर्गत प्रश्नोत्तरों में से केवल सर्वग्राह्य ऐसी बातों का ही चयन कर, उन्हें सर्वग्राही रीति से लिखेंगे, अनंतर उन्हें अपने समाज के विविध विद्वानों के सम्मुख रखते हुए, उनके परिशीलन के उपरान्त उनसे प्राप्त सूचनाओं को हम स्वीकार करेंगे – इस प्रांजलता के साथ इसे पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया है ।

ये सभी चिंतन, प्रयोग कर्नाटक में ही चलते रहने के कारण, यह पुस्तक पहली बार कन्नड़ भाषा में जून २०१० में प्रकाशित हुयी । सामान्य जनों को भी इस तरह की मार्गदर्शिका आवश्यक लगी, यही इसका आरंभ बिंदु है । अत: एक ही वर्ष की अवधि में 'मनेये मांगल्य' (घर ही मांगल्यस्रोत) नामक ८०० प्रश्नोत्तरी रूप वाली इस किताब ने छ: संस्करण देखे हैं । विवाह, गृहप्रवेश आदि शुभ प्रसंगों पर 'मनेये मांगल्य' नामक यह पुस्तक भेंट के रूप में लोगों में बाँटना एक अघोषित प्रथासी बन गयी है ।

इस ग्रंथ का परिशीलन करने वाले अनेक धार्मिक प्रमुखों ने इसका हिंदी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनुवाद यदि प्रकाशित किया गया, तो विश्व में रहने वाले सभी सज्जनों के लिए सहायक होगा, ऐसी बार-बार माँग करने के फलस्वरूप, उसी पुस्तक को हिंदी में 'मंगल भवन अमंगल हारी' इस नाम से प्रकाशित किया जा रहा है ।

भारत एक विशाल देश है । इसकी जनसंख्या ने १२० करोड़ की सीमा पार की है । बीसियों राज्य, सैंकड़ों-सहस्रों भाषाएँ, आहार, वेशभूषा, चाल-चलन आदि सब बहुत ही भिन्न हैं । इतना होते हुए भी विविधता में एकता की अनुभूति करते हुए, हजारो वर्षों से एक बन के रहते हुए, एकही राष्ट्र के रूप में खड़े होकर जीने वाला देश है यह ।

यहाँ के ऋषियों ने बाहरी दृष्ठि से भी देखा और अंत:चक्षु सदा खुले रखते हुए उसे ग्रहण कर, चिंतन करते हुए इसे संवर्धित किया । समूचे विश्व को ही एक कुटुंब के रूप में देखने वाली, उसे परिवर्तित करने वाली यह संस्कृति है । यहाँ एकरूपता (uniformity)

नहीं है; एकात्मता (oneness) है । मैंने इसी एक का दर्शन लिया है; मैंने जो किया है, वही सही है ऐसा दुराग्रह यहाँ नहीं है । मैंने जो देखा है, वह मेरे लिए ठीक होगा; पर दूसरों द्वारा देखा गया भी सही हो सकता है ऐसा चिंतन करने का विवेक है । इसी लिए वैशाल्य व वैविध्य होते हुए भी, एक राष्ट्र बन के रहने वाली संस्कृति हमारी है।

इस पुस्तक को साकार करते समय भी, विविधता का गौरव करने वाली उसी प्रज्ञा ने काम किया है। हमारे अनुरोध पर बेलगांव के अपने कार्यकर्ता श्री अशोक भंडारी ने इसका सरल, सुबोध हिंदी में मंगल भवन अमंगल हारी इस शीर्षक से अनुवाद करके इस समूचे ग्रंथ की संगणकीय मुद्रण प्रति तैयार करने के तुरंत बाद, उसे दिल्ली के माननीय प्रेमचंद्र जी गोयल, भोपाल के डॉ. सदानंद जी सप्रे, श्री प्रकाशराव जी सोलापुरकर, नागपूर के श्री रवींद्र जी जोशी, पुणे के प्रा. अनिरुद्ध जी देशपांडे, मुंबई की सुश्री गीतताई जी गुंडे, कन्याकुमारी की सुश्री निवेदिता जी भिडे आदि भारत के विविध प्रांत-भाषा के समाजनिष्ठ चिंतकों को भेज कर, हिंदी भाषा में अनुवादित यह ग्रंथ भारत के सभी भागों के सभी स्तरों के जनों को भी ऐसा लगना चाहिए कि यही मुझे चाहिए था। इसीलिए इस ग्रंथ के अनावश्यक, असमर्पक लगने वाले भाग निकाल दीजिए अथवा परिवर्तित कीजिए; साथ ही साथ, और कोई बात इसमें शामिल करनी है, ऐसा लगने पर, उसका सुझाव दीजिए ऐसा अनुरोध किया था।

ये सब चिंतक भी समाज में विविध सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक कार्यों में लगन के साथ क्रियाशील हैं । कार्यबाहुल्य के कारण उनके पास समय की कमी होती है । तो भी, इस विषय के बारे में स्थित उनकी आसक्ति के कारण, विशेष ध्यान देते हुए हर शब्द को पढ़ कर, सुधार कर लौटा दिया है । साथ ही, यह प्रश्नोत्तरी रूप वाला यह ग्रंथ शीघ्रातिशीघ्र जनसामान्यों तक पहुँचाइए, ऐसा आग्रह भी किया है ।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के परमपूजनीय सरसंघचालक श्री मोहन जी भागवत ने अपना शुभसंदेश भेजकर हमे अनुग्रहीत किया है । अत: हम उनके प्रति अपनी भक्तिपूर्ण कृतज्ञता प्रकट करते हैं ।

इस प्रकार ख्यातनाम, धीमान ऐसे अनेक वरिष्ठों के समर्थन, सहयोग के रक्षाकवच ने हमारे अंदर शक्ति भर दी है । साथ ही, देश के कोने-कोने में प्रवास करते हुए, अपनी विद्युल्लतासमान वाक्शक्ति से अपने श्रोताओं में स्फूर्ति-प्रेरणा का संचार करने वाली वृंदावन के वात्सल्य धाम की दीदी माँ नाम से ही प्रख्यात रही साध्वी ऋतंभरा जी की आशीर्वाद पर प्रस्तावना भी इस ग्रंथ को प्राप्त हुयी है ।

इस प्रकार, अनेक वरिष्ठों के सतत श्रम, अवलोकन, संशोधन के कारण इस ग्रंथ को अपना ही एक आकार, तेज प्राप्त हुआ है । इस प्रकार का यह अमूल्य ग्रंथ सुंदर बनना चाहिए; सामान्यों के लिए भी सुलभ क्रयमूल्य में उपलब्ध होना चाहिए - इस सोच से सहकार

देने वाले अनेक हैं ।

यह पुस्तक परिपूर्ण नहीं है । इस ग्रंथ को भारतीय चिंतन का उत्तुंग शिखर भी नहीं कह सकतें। तथापि इसे भारतीय चिंतन की पहली सीढ़ी (पहला सोपान) तो अवश्य मान सकते हैं। जैसे हमारा भारत एक अत्यंत विशाल देश है, उसी प्रकार यह विविधता में भी अग्रणी है। भाषा-बोलियाँ, वेशभूषा, रीतिरिवाज, पूजा पद्धतियाँ, जात-पात, श्रद्धा-विश्वास आदि सब वैविध्यपूर्ण हैं; वैशिष्ट्यपूर्ण हैं। लेकिन ये सारी विविधताएँ भिन्नता नहीं है । इसीलिए हमारे देश के बारे में बोलते समय कहा जाता है : विविधता में एकता, भारत की विशेषता।

इसीके साथ, दुनिया भी अब बहुत तेजी से बदल रही है । उसका प्रभाव अपने जीवन पर पड़ना भी अपरिहार्य है । अत: यदि किसी भी पाठक को लगता है कि इस ग्रंथ में समाहित कोई भी विषय समग्रता से परिपूर्ण नहीं है, सही नहीं है, तो वे तुरंत प्रकाशक को सूचित करने का कष्ठ उठा के हमें उपकृत करें । उसी प्रकार, यदि कोई विषय इस पुस्तक में शामिल करना जरूरी लगे, तो वह भी सूचित करें; उसे अवश्य ही समुचित स्थान प्रदान किया जाएगा।

हम आशा करते हैं कि इसमें प्रस्तुत बातें धीरे-धीरे अपने घरों में भी प्रकट होती जाएगी । लेकिन उसके लिए आतुरता न हो । सभी घर वाले मिल कर सहमति से कोई भी एक बात घर में क्रियान्वित करने का तय करने के उपरान्त एक महीने तक उसकी आदत लगा कर ही दूसरे विषय का चयन करना अच्छा रहेगा । हौले-हौले शीघ्रता कीजिए (Hasten slowly) यही हमारा जीवनसूत्र बने । घरों में भी प्रति दिन एक प्रश्न लिख कर रखने की आदत भी परिणामकारी साबित होगी । इसमें समाहित प्रश्न और उत्तरों का कोई पार नहीं है । कालौघ में इसमें और भी कुछ विषयों का समावेश होगा और कुछ बातों का विक्षेप भी । अत: इस पुस्तक की मौलिकता बहते नदी की भाँति सदैव गतिशील ही रहेगी । पाठक इस पुस्तक का पठन करें; इन विचारों को आत्मसात करें । आपके और हमारे सभी घर परमात्मा के वासस्थान बनने चाहिए । हम सभी को सच्चे भक्त बनना चाहिए । शांति-तृप्ति-समाधान की शीतल वायु हमारे घरों में सदा बहती रहे । सब ओर से हमारे लिए अच्छी हवाएँ प्रवाहित होती रहे; लेकिन हमारा घर मात्र सुदृढ रहे - यही प्रार्थना है।

प्रकृति में भी एकरूपता नहीं है; विविधता ही है । इस विविधता को मान कर, उसका गौरव करते हुए बढ़ते गए, तो द्वेष कम होता है । उसके फलस्वरूप चिंतन अधिक होता है ।

कन्नड़ संस्करण के प्रकाशक,

-टी. एन. प्रभाकर






दीदी माँ
साध्वी ऋतम्भरा जी
अधीष्ठात्री

वात्सल्य ग्राम

'दीदी माँ' साध्वी ऋतंभरा का संदेश

किसी भी राष्ट्र की जीवन्तता उसमें रहने वालों के संस्कारों में, संस्कार संस्कृति में और संस्कृति उसके साहित्य में निहित होती है। जब राष्ट्र का साहित्य व्यवहारों में आकर आदत बन जाता है, तो वही आदतें राष्ट्र का स्वभाव बन कर उसका अघोषित एवं अप्रत्यक्ष संचालन करती हैं। राष्ट्रीय साहित्य उसके सह-अस्तित्व में निहित होता है। देशान्तर दर्शन को मान भी लिया जाए, तो लोग जब पशु से मनुष्य होने की प्रक्रिया में रत थें, उस समय यह देश मनुष्यत्व से देवत्व की यात्रा कर चुका था। निश्चित रूप से यह उसकी उन्नत साहित्य सम्पदा का परिणाम था। शेष विश्व जब धरती के अज्ञात भागों की खोज का प्रयास कर रहा था; (यदि उनकी विकास परम्परा को मान लें), तो उसके हजारों साल पहले ही हम सौर मण्डलों, तारा मण्डलों की गति, मति, स्थिति और शक्ति से परिचित हो चुके थें और हमारी विकास परम्परा के अनुसार तो वेदों की लिखित उपलब्धता काल अर्थात् ऋषिकाल के लाखों वर्ष पूर्व से यह ज्ञान अलिखित रूप से परम्परा बना रहा है। शेष विश्व जब 'आखेट युग' की विकास परम्परा के अनुसार स्वयं की क्षुधा मिटाने को संघर्षरत था, तब भारतीय साहित्य 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का उद्‌घोष करके प्राणि मात्र को अभयता प्रदान कर रहा था। मानव शरीर प्राप्त करके भी जब, लोग इन्सान बनने का प्रयास कर रहे थें, तब भी यह राष्ट्र इन्सानियत का पाठ उन लोगों के लिए तैयार कर चुका था। विश्व की तमाम सभ्यताओं में मैथुनी सृष्टि के विस्तारक माने जाने वाले जब पानी में स्वयं के प्रतिबिम्ब को निहार कर सशंकित थें, तब भारतीय मनीषा जल के सामर्थ्य को अपनी अंजुलि में तोल कर, उसे देव

मथुरा वृन्दावन मार्ग, पोस्ट प्रेम नगर, वृन्दावन -281003, उ0 प्र0 दूरभाष : 0565-2456888
मुख्य कार्यालय : लव-102 - 103, अग्रसेन आवास, 66, इन्द्रप्रस्थ विस्तार, दिल्ली -110092
दूरभाष : 011-65260557 टेलीफैक्स : 91-11-22238751
e-mail : vatsalyagram@hotmail.com Web : www.vatsalyagram.org

पद पर अभिसिक्त कर चुकी थी। जब इतर विश्व स्वयं से अनभिज्ञ था, तब भारत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश का अनुसंधान करके, मनुष्यता के लिए आवश्यक आवश्यकताओं के मानदण्ड स्थापित कर चुका था।

भारतीय साहित्य का आध्यात्मिक पक्ष यहीं के आम मानवी जीवन में 'त्यागपूर्वक भोग' की स्थापना में सफल रहा, तो भौतिक पक्ष जीवन के सूक्ष्मतम व्यवहारों, क्रिया–कलापों एवं चेष्टाओं में विज्ञान को दैनिक जीवन में संस्कार के रूप में रोपित करने में। यह सब इतनी [illegible] तापूर्वक हुआ [illegible] यहाँ के जीवन का संगीत बन गया; जिस[illegible] हुआ और [illegible] भी।

कालान्तर में किसी चूक, सजगता के अभाव या [illegible] कला पक्ष तो प्रभावी रहा; किन्तु भाव पक्ष का अभाव हो गया। लेकिन, [illegible] भारतीय 'मीमांसा' ही थी, जिसने कई बार डगमगाती नाव की 'जिजीविषा' [illegible] कर उसे डूबने नहीं दिया।

प्रस्तुत ग्रंथ 'मंगल भवन अमंगल हारी' उसी 'जिजीविषा' का उत्कृष्ट प्रमाण है। इसमें मानव जीवन के छोटे से छोटे व्यवहार पर पैनी दृष्टि डाली गयी है। हम कैसे नित्यकर्म, नैष्ठिक कर्म, नित्य व्यवहार समुचित बना कर स्वयं के साथ–साथ समाज का अभीष्ट सिद्ध कर सकते हैं। हम कैसे प्रतिकूल परिवेश में भी सिद्धान्तों का पालन करते रह सकते हैं। रूढ़ियों, प्रवंचनाओं, सांस्कृतिक प्रतिस्पर्धाओं तथा आधुनिकता की चकाचौंध से बचते हुए भी, हम कैसे अपनी पहचान को बनाए रखते हुए, वैश्वीकरण की चुनौतियों का सामना कर सकते हैं। हम मनुष्य ही नहीं, प्राणि मात्र के शुभ चिंतन व हित करके कैसे ईश्वरत्व की अनुभूति कर सकते हैं। हम कैसे 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भावेत्॥' के भारतीय उद्घोष को प्रासंगिक रख सकते हैं। ऐसी अनन्त युक्तियों, मंत्रों व स्थितियों में परिपूर्ण यह ग्रन्थ निश्चित ही सम्पूर्ण विश्व का 'मंगल भवन अमंगल हारी' ही हो, इस कामना के साथ मै सम्पूर्ण सम्पादक मण्डल को कृतज्ञता पूर्वक बहुत–बहुत साधुवाद देती हूँ।

साध्वी ऋतंभरा

('दीदी माँ' साध्वी ऋतंभरा)

वात्सल्य धाम, वृन्दावन



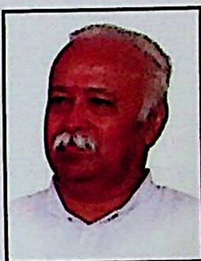


राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

सरसंघचालक: मोहन म. भागवत ■ सरकार्यवाह: सुरेश (भय्या) स. जोशी

युगाब्द: ५११३
प्रधान कार्यालय: डा. हेडगेवार भवन, महाल, नागपूर-440 032
दूरभाष: 0712-2723003, 2720150, (2721589 फैक्स)
email : hedgewarbhavan@rediffmail.com

पत्र क्रमांक: तिथी: आश्विन कृ. १ दिनांक: १२.१०.२०११



शरीर की प्रत्येक कोशिका शरीर की न्यूनतम इकाई होने के साथ-साथ शरीर का छोटासा प्रतिरूप होती है। समान उत्कटतासे समान भावभावना व क्रियाकलाप दोनों में पारस्परिकता का नाता उत्पन्न करती है। समाज के वातावरण में परिवारों का चालचलन ढ़लता है वैसे ही परिवार के उदाहरण से समाज का वातावरण बदलता है। भारतवर्ष जिस धर्मप्रवण संतुलित संतोष व शांति से परिपूर्ण जीवन की थाती है उस जीवन को विश्व में प्रदान करने का समय सन्निकट है। भारतवर्ष के परिवारों को भारत को सन्नद्ध बनाकर खड़ा करना पड़ेगा। भारतीय परंपरा व संस्कृति की विशिष्टतायें युगानुकूल जीवनशैली व सभ्यता में साकार करनी पड़ेंगी। यह कार्य प्रत्येक परिवार सरलता से सफल कर सके इस हेतु विधिविधान की संभाव्य रूपरेखा को रोचक व सरल ढंग से प्रश्नोत्तर के रूप में 'मंगलभवन अमंगल हारी' में प्रस्तुत किया गया है। चिंतन व कृति को साध्र्यक्य व प्रेरणा प्रदान करनेवाला यह संवाद प्रत्येक परिवार में इस पुस्तक के माध्यम से पहूँचे, सत्यं शिवं सुंदरं पारिवारिक जीवन के संस्कारों में उत्कृष्ट व्यक्ति, उन्नत देश व सुंदरतम सृष्टि विश्व में खड़ी हो, यही इस पुस्तक के विचारों के आचरण का शुभ व कल्याणकारी परिणाम होगा।

(मोहन भागवत)



प्रवेश के पहले

१. कुटुंब याने क्या?

कहते हैं कि विश्व के प्रारंभ में केवल देव ही था । बताते हैं कि उसमें बहुत बनने की इच्छा उत्पन्न हुयी जैसा, 'एकोऽहं बहुस्याम' । इसीलिए उसने अपने जैसों का निर्माण करने के लिए कुटुंब बनाया ।

यह केवल मात्र कथा है या वास्तव, इसकी चर्चा में न जाते हुए, कोई एक जीव ईश्वर बनने के लिए अपने जैसे अन्य जीवों के साथ रहते हुए, मैं नामक छोटेपन को पार करते हुए, हम बनने के लिए साकार की हुयी व्यवस्था ही कुटुंब है । व्यक्ति का शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्मा के विकासार्थ ही अपने ऋषियों ने निर्माण किया हुआ, इस दृढ़ संबंध को हम मानेंगे ।

अर्थात्, कुटुंब याने व्यक्तियों का एक समूह, घटक है । इन सबके जन्म-एकत्व आदि सब रक्त संबंधों से जुड़ा हुआ होता है । एक ही माता के बच्चे एक ही जगह मिल कर रहें; अथवा पति-पत्नी-बच्चे आपसी प्यार-दुलार के साथ सबके सुख-दु:खों को बाँट लेते हुए जीते रहने वाला घटक ही कुटुंब कहलाता है। यह एक संस्कार, सुरक्षा, पोषण प्रदान करने वाला केंद्र है । साधारणत:, कुटुंब के न्यूनतम लोग याने माता-पिता तथा बच्चे हो सकते हैं । किन्तु यह अगली पीढ़ियों के आश्रयस्थान के रूप में भी माता/पिता, सगेसंबंधी, बच्चे, पोते-पोतियाँ आदि सबको अपने में समा ले सकता है । कुटुंब अनेक पीढ़ियों से अथवा एक ही पीढ़ी से युक्त हो सकता है ।

२. क्या कुटुंब मानव जीवन के लिए अनिवार्य है?

जहाँ जीव है, वहाँ सामूहिक जीवन आवश्यक होता है । हम पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, कृमि-कीटों में समूह जीवन, परस्परावलंबन देखते हैं । आहार, आपसी सुरक्षा, पोषण, वंश निरंतरता के लिए परस्पर पूरक रूप में जीने वाली एक संकुलीय वृत्ति भी देखते हैं । जैसे-जैसे यह विकसित होते जाता है, कुटुंब की आवश्यकता अनुभव में आने लगती है ।

मनुष्य के लिए तो आहार, निद्रा, भय आदि को पार करते हुए, उत्तम संस्कारों की जरूरत होती है । स्वयं जीकर, शेष अन्यों को जिलाने, दूसरों के लिए परिश्रम, त्याग करने की दृष्ठि एवं शक्ति भी आवश्यक लगने लगती है । एकाकी रहने वाले को यह अवसर नहीं मिल पाता । अत: किसी भी व्यक्ति को उत्तमता के साथ साकार करने वाले कुटुंब को आद्यता मिल जाती है ।

कुटुंब याने केवल चार दीवारें मात्र नहीं, वहाँ स्वत: का उत्थान चाहने वाले, गलतियाँ सुधारने वाले, संतुष्ठि में सहभागी होने वाले, दु:ख में सांत्वना देने वाले, जीने की प्रेरणा प्रदान करने वाले, उपलब्धियों के लिए बल प्रदान करने वाले, सब रहते हैं । प्राणियों के लिए केवल खाना, भय व संतान की चिंता होने के कारण, वे इकठ्ठा जीते हैं। किन्तु मनुष्य केवल इतने भर के लिए नहीं जीता । अत: धर्म की प्रतिष्ठापनार्थ, कर्तव्य के परिपालनार्थ, संस्कृति के उत्थानार्थ संस्कार प्रदान करने वाले अत्युत्तम केंद्र के रूप में घर होने के कारण, कुटुंब अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । इसीलिए आप्त-बांधव प्रमुख होते हैं । मैं, मेरा की सीमाएँ लाँघ कर, हम, हमारा नामक वरिष्ठता अंकुरित होती है । अधिकारों के बारे में चलने वाला चिंतन न रुकते हुए, कर्तव्य भी अनुभव में आने लगते हैं । अत: कुटुंब से ही व्यक्ति अपने संबंध में आने वाले सबको अपना मानने वाला समष्टि-जीवी बन जाता है ।

३. संयुक्त या अविभक्त कुटुंब याने क्या?

कुटुंब याने माता-पिता व बच्चे। बच्चे बड़े होते हैं, उनका विवाह होता है, उनको भी बच्चे होते हैं; तब हम स्वयं ही अलग होकर रहते हैं ऐसा कह कर दूर न होते हुए, एकत्रित जीते हुए, तीन-तीन पीढ़ियाँ इकठ्ठा जीने को ही संयुक्त कुटुंब कहते हैं ।

एक और पद्धति भी है । चार-छ: बच्चे, उनकी भी शादियाँ हुयी हैं, अत: उनमें परस्पर पूरकता बढ़ी है । घर आयी बहुओं को भी एकत्रित जीना सिखा दिया है ।

एकत्रित रहते समय अनेक कष्ट, तकलीफें, मानसिक दबाव आदि सबका अनुभव करते हुए, अन्यों के साथ मेल-मिलाफ से रह कर, खुद भी बढ़ते हुए, अपने बच्चों को बढ़ाते हैं । यह भी एक प्रकार का अविभक्त कुटुंब ही है।

दूसरा एक प्रकार भी है ।

आज विश्व छोटा बन गया है । संपर्क-साधन भी विपुल प्रमाण में हैं । अध्ययन, नौकरी, उद्योग, व्यापार आदि नाना कारणों से बच्चे घर से दूरस्थ शहरों या अन्यान्य देशों में बसते हैं । किन्तु, इस घर का संबंध, अभिमान मात्र नहीं छोड़ते । यहीं के चाल-चलन का ही अनुसरण अपने-अपने स्थानों पर भी करते रहते हैं । बच्चों का नामकरण, विवाह आदि सभी काम मूल घरों में ही संपन्न करने की योजना बनाते हैं । यह भी एक रीति से अविभक्त कुटुंब ही होता है।

अर्थात्, यहाँ घर का विभाजन नहीं हुआ है । घर का विस्तार हुआ है; Partition नहीं, Extention हुआ है । घर में लोगों की संख्या अधिक होते ही, दो कमरें अथवा दो मंजिलें अधिक होने जैसा यहाँ वासस्थान अलग, पर हृदय एक ऐसा ही रहते हैं ।

इस प्रकार, अविभक्त कुटुंब कहते ही व्यक्तिगत सुख-सुविधाएँ, दुःख-दर्द आदि का सहज स्वीकार करना होता है । बच्चों में कर्तव्य प्रज्ञा, हम सब एक है का भाव, उसके कारण स्वार्थ कम होकर दूसरों की सहायता करने की बंधुता, धीरज आदि बढ़ता है । इन सबसे बढ़ कर, बड़े बच्चे छोटे बच्चों को प्यार से लालन-पालन करते हुए, सिखाते हुए, बढ़ाने की अन्योन्यता आकर, मैं चाहे जो कुछ हासिल कर सकता हूँ – ऐसा आत्मविश्वास वृद्धिगत होता है ।

फिर भी, अनुभव में ऐसा ही आता है कि एकत्रित कुटुंब सफल बनाने के लिए बड़े भाइयों, बड़ी भाभियों को विवेकी, उदार बन कर, सबको अपना मानते हुए व्यवहार करने पर ही यह संभव हो सकता है।

४. कुटुंब में सबका आचरण कैसा होना चाहिए?

कुटुंब में सबमें सबके बारे में प्यार, चिंता रहनी चाहिए । प्यार, चिंता रही, तो ही सबकी बोल-चाल सबके लिए हितावह रहती है । जहाँ देकर खाने, बाँट कर खाने की आदत होती है, वहाँ वस्तुएँ कम हो, तो भी उनका आनंद के साथ अनुभव करने की शक्ति प्राप्त होती है । घर से बाहर जाते समय, बता कर जाना, बच्चों, पति, पिता के लिए बचा कर रखके सब मिल कर भोजन करना । बाहर कहीं पर कोई अच्छी वस्तू मिलने पर, घर लाकर देते हुए, सबके साथ आनंद का अनुभव करना। घर में

किसीको बीमारी आते ही, उनकी सेवा करना, उनको तकलीफ न हो, इस तरह अपनी गतिविधियों पर नियंत्रण रखना आदि छोटी-छोटी बातें भावना-संबंधों के धागों को मजबूती देने में सहायक होती हैं ।

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, अतिथि देवो भव आदि अवधारणाएँ बड़ों के आचरण से ही छोटों में प्रतिबिंबित होती है । आज के गतिमान जीवन में भी साफसफाई की ओर ध्यान देना; क्या सही? क्या गलत? इसका चिंतन करते हुए केवल सही बातें ही करना; गलत बातें नहीं करने का विवेक तथा मनोस्थैर्य बढ़ता है ।

घर में हर एक की दिनचर्या भिन्न होने पर भी कुटुंब की दिनचर्या के कुछ बातों से तो समायोजन कर लेना चाहिए । बड़ों के बारे में गौरव-श्रद्धाभाव, छोटों के बारे में प्यार-दुलार का भाव सामान्य तौर पर अनुभव में आना चाहिए । घर के सभी काम सब कर सकते हैं, ऐसा विश्वास बढ़ना चाहिए । ईश्वर भक्ति, समाज निष्ठा आदि बातें बड़ों से छोटों को प्राप्त होते रहनी चाहिए । दान करना, गरीबों व संकटग्रस्त लोगों की मदद करने का सबका स्वभाव बनने का यत्न करना चाहिए।

इस प्रकार घर के सब एक व्यक्ति के रूप में उत्तम होने पर, पूरा कुटुंब ही श्रेष्ठ बनता है । तब सब सज्जनों को भी लगता है कि इस घर में वे बार-बार आते रहें ।

आज के संदर्भ में, एक विषय के बारे में सतर्कता बरतनी चाहिए । मन में किसी के बारे में भी तिरस्कार-द्वेषविरहित हितकारी बातें ही सबके साथ करने की ओर विशेष ध्यान देना जरूरी है । क्योंकि, आज जाति, भाषा, प्रांत, धन, विद्या, स्थान-मान आदि सबके बारे में भी उच्च-नीच, चाहिए-नहीं चाहिए नामक अंतर का भाव भरा है । अपने परिजनों में किसी के बारे में भी द्वेष, तिरस्कार, हिंसा का भाव उत्पन्न न हो, ऐसे उत्तम विचार ही बोलते हुए, उत्तम विचार ही सुन कर – उत्तम ही देखना चाहिए। केवल उत्तम बातें ही करने जैसा वातावरण रहें । यदि समस्याएँ हों, तो केवल संबंधित लोग ही उसकी चर्चा करते हुए मार्ग निकालें । सबके सामने बुराइयों या समस्याओं की चर्चा न करें ।

५. घर में ही देने योग्य संस्कार कौनसे हैं?

घर याने केवल इमारत, आश्रयस्थान, उपहारगृह, भोजनालय या विश्राम धाम नहीं है । घर याने वहाँ वास करने वालों को उत्तम बनाने वाला एक संस्कार केंद्र है। बड़ों की बातें सुनते हुए, उनका आचरण देख-सुन कर, बच्चे स्वयं उनकी आदतें लगा लेते हुए, प्रयोग करते हुए, संवर्धित होने का संस्कार केंद्र है । वैसा घर ही कुटुंब होता है ।

संस्कार याने उत्तम बनाने की प्रक्रिया है । पशुओं की भाँति रहने वाले मनुजों को मानव बनाने के लिए तथा मानव को देवत्व तक ऊँचा उठाते हुए, उसमें माधव बनने की सुपात्रता संवर्धित करना केवल संस्कारों से ही संभव है । इसलिए घर के बुजुर्ग बच्चों को कालानुकूल प्रदान करने योग्य अति अमूल्य धरोहर याने ये संस्कार होते हैं ।

अपने प्राचीन ऋषियों ने मानव जीवन में मानव को माधव बनाने हेतु १६ संस्कारों की परिकल्पना की है । उनमें ऐसा कहा है कि जन्म के पहले तीन, जन्म के बाद १२ तथा मरणोपरान्त एंक, ऐसे जीवन में १६ संस्कार प्राप्त करने चाहिए ।

जन्म के पहले तीन : गर्भादान, पुंसवन, सीमान्तोन्नयन ।

जन्म के बाद १२ : जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, निष्क्रमण, कर्णविध, चौल, विद्यारंभ, उपनयन, वेदारंभ, केशान्त, समावर्तन व विवाह।

मृत्यु के बाद एक : अंत्येष्ठि ।

इस प्रकार ये १६ संस्कार हैं । आधुनिक जमाने में सब संस्कार प्रदान कर सकने वाले आचार्य पुरुष नहीं हैं । अत: १६ के केवल नामों का ही यहाँ उल्लेख किया है । उनमें से कुछ का अनुसरण हमने किया तो भी हमारा जीवन उदात्त होगा, इसी भाव से यहाँ उल्लेख किया है ।

नामकरण : जन्म लेने वाले हर बच्चे को एक आकर्षक, अन्वर्थक नाम रखना चाहिए । उनको नाम से पुकारने पर बुलाने वालों को भी आनंद देने जैसा और बुलाए गए व्यक्ति में भी श्रेष्ठता का भाव उत्पन्न होने जैसा नाम रखना चाहिए । नामकरण में जन्मे बच्चे का नक्षत्र, वंश, माता-पिता की इच्छा आदि विभिन्न बातों का ध्यान रखते हुए, नाम का चयन किया जाता है । इस प्रकार के नामकरण में यही सदाशय होता है कि वह बच्चे को अपने वंश, परंपरा के बारे में आगे का प्रकाश प्रदान कर सकने वाला हो ।

विद्यारंभ : बच्चा जन्म से ही, जन्म के पहले ही अनेक बातें माता से, कुल से, परिसर से सीखना शुरू कर देता है; तो भी किसी एक शुभ मुहुर्त पर बच्चे का औपचारिक विद्यारंभ करा देना चाहिए । विद्यारंभ में अक्षराभ्यास भी एक कड़ी है। उससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह बच्चे के हाथ, आँखें, मुख, मन सब कुछ एक काल में काम करने की शुरुआत करने का साहस होता है । इसे तीसरे अथवा पाँचवें वर्ष में करते हुैं । ॐ से प्रारंभ होकर नम: से अंत होने वाले किसी भी मंत्र को चावल या गेहूँ के ऊपर लिखवाते हैं । घर का बुजुर्ग व्यक्ति सुस्नात होकर, बच्चे को अपनी गोद में बिठा कर, स्वयं पूर्वाभिमुखी बैठ कर, लिखावट कराते समय बच्चे के मुख से

भी कहलवाते हुए लिखवाता है । सामान्यत: यह संस्कार घर में ही दे सकते है। फिर भी मंदिरों या तीर्थस्थलों में जाते हुए भी किया जा सकता है ।

विवाह : श्रेष्ठ संतति निर्माण करने हेतु घराने के आशय को आगे जारी रखने के लिए, परिवारों को जोड़ते हुए, समाज को शक्तिशाली बनाने का संस्कार ही विवाह है । नर–नारी दोनों अपने जीवन में परस्पर पूरक बन कर समूचे जीवन भर में एकत्रित जीवन यापन करते हुए, वंश व वंश की परंपराओं को आगे जारी रखने का सत्संकल्प करने का संस्कार है यह । यह केवल स्वत: के सुखार्थ या कामपूर्तता के लिए मात्र नहीं; तो उसके विपरीत, नयी जिम्मेदारी स्वीकारने, धर्मनिष्ठा, कर्तव्य भाव वृद्धिगत करने का प्रसंग होता है । यह दो परिवारों व समाज के बुजुर्गों के सम्मुख दोनों व्यक्ति द्वारा एक व्रत स्वीकारने का संदर्भ होता है । यह व्यक्तियों के जीवन में अति महत्त्वपूर्ण ऐसा मुहूर्त है ।

अंत्येष्ठि : संसार में जन्मने वाला हर कोई मरता है । यहाँ कोई भी प्राणी या वस्तु शाश्वत नहीं है । यह मनुष्य को भी लागू है । मानव शरीर से प्राणों का निर्गमन ही मरण, मृत्यु है । मरण सहज व निश्चित है । अत: मृत्यु को घबराना नहीं, यह अनुभव की बात है । निष्प्राण शव कचरे के समान, असहनीय होता है । वैसा न हो, इसलिए हर परिवार को अपने घराने से संबंधित शवों को गौरवपूर्वक विसर्जित करना चाहिए । पंच महाभूतों से बने इस शरीर को पंचभूतों में से किसी एक के जरिए पंचभूतों में विलीन करना चाहिए । अतीव गौरव से करना चाहिए । दहन, दफन, प्रवाहित करना या किसी अति ऊँची जगह पर पक्षियों के आहार के रूप में रखना ऐसी अनेक पद्धतियाँ हैं । सभी पद्धतियों के मूल में केवल अतीव गौरव–आदर भाव ही निहित होता है। कोई भी पद्धति हीन नहीं है । नीति यही है कि शवों को सम्मान के साथ विसर्जित करना है । सामान्यत: संबंधितों को ही अंत्यसंस्कार करना चाहिए । अपने धर्मशास्त्र कहते हैं कि अनाथों के शवसंस्कार करने वालों को सहस्त्र गो–दान करने का पुण्य प्राप्त होता है ।

इस तरह चार–छ: संस्कार तो हर एक को प्राप्त होने ही चाहिए। अपने समाज में १६ संस्कारों की बात करने वाले लोग जैसे हैं; वैसेही ६४ संस्कार हैं, ऐसा कहने वाले भी हैं । कुल मिलाके, संस्कारों की संख्या की तुलना में किस कुटुंब में कौनसे संस्कार प्रदान किए जाते हैं; उससे कैसे उत्तम परिणाम प्राप्त होते हैं, यही ध्यान देने योग्य बात है।

६. आपके कुटुंब में पारंपरिक रीति से चली आ रहीं विशेषताएँ क्या है?

बुजुर्गों के आशीर्वाद रूप में सत्संतान प्राप्ति होती है । उनकी सदाकांक्षा से ही हम बड़े हो जाते हैं । उनके मार्ग पर चलते रहना ही हमारा कर्तव्य है । जैसे-जैसे समय में बदलाव होता है, वैसे काम अलग हो सकते हैं । लेकिन विश्वास वही बना रहना चाहिए।

गाय को गोग्रास देने वाले घर में, गाय ही न होने पर, अपने विश्वास से गो-भक्ति का प्रकटीकरण कैसे करना इसकी सोच करनी चाहिए; अन्यथा होगा ही नहीं ऐसा कहकर हाथ पे हाथ धरे बैठना उचित नहीं ।

हर कुटुंब की अपनी ही विशिष्ठ परंपराएँ होती हैं । कालानुसार कुछ नए आयाम उनमें जोड़ सकते हैं । हमें इस वंश/कुटुंब के उत्तराधिकारी के रूप में इत:पूर्व की सभी परंपराओं को बचा कर रखना, उनको संवर्धित करना, यह छोटों के नाते हमारा कर्तव्य ही है ।

कुछ लोगों के घर में देवकार्य, रथोत्सव, अन्नदान, संतर्पण, पानीयपूजा, शिवपूजा, शनिकथा, भजन, हरिकथा आदि बातें पारंपरिक रूप में आयी हुयी होती हैं । उसी प्रकार कलापोषक के रूप में शिल्प, संगीत, नृत्य, वाद्य, अभिनय आदि भी आए हुए होंगे । परिसर के चिंतन से पेड़ों को बचाना, अरण्य बढ़ाना, जीव/जीवों का संरक्षण करना आदि बातें भी परंपरा से चली आयी होंगी ।

हमें अपने वरिष्ठों के इन आदतों का निरीक्षण करना चाहिए, उनमें सहकार करना चाहिए, उनका परिपालन करना चाहिए । आगे की पीढ़ियाँ भी इसका अनुपालन करें, ऐसी प्रेरणा जगानी चाहिए ।

यदा-कदा हमें उनमें से किसी के बारे में जानकारी न रही, तो किसी दूसरों से पूछ कर समझ लेना चाहिए अथवा नई परंपरा का प्रारंभ करते हुए, उसे संवर्धित करना चाहिए । घर के सभी लोग इन क्रियाकलापों में जुट जाने जैसा किया तो वही एक परंपरा बन जाती है।

७. क्या विवाह जरूरी है? बच्चे क्यों चाहिए?

कहते हैं कि विवाह की ८ विधाएँ हैं । स्त्री-पुरुष विवाह करके ही एकत्रित जीवन चलाएँ, यही धर्म का सार है । विवेकी लोगों का यह सार्वकालिक कहना है कि बिना विवाह का सहजीवन व्यक्ति, कुटुंब, समाज के लिए हितकर न होकर, वह समस्याओं का ही कारण बनता है ।

प्राणियों में कहाँ शादियाँ होती हैं? क्या वे अच्छे नहीं होतें? ऐसा तर्क उठ सकता है । लेकिन मानव में बुद्धि है, विवेक है । अत: उसे सहज-प्रवृत्ति (Instinct) के अनुसार ही नहीं जीना चाहिए । पशु-पक्षी वैसे जी सकते हैं । उदा. पशु-पंछी केवल भूक लगने पर ही खाते हैं । लेकिन मानव? क्या खाना चाहिए? कब खाना चाहिए? इसकी सोच करके ही उसे खाना चाहिए ।

उसी प्रकार ही नर-नारी का संबंध होता है । मानव को इस विषय में तो पशुओं की भाँति नहीं चलना चाहिए । स्मरण रहें कि पशुओं को एड्स जैसा रोग नहीं होता । उन पर प्रकृति की रोक है । मानव को विवेक होना चाहिए । यदि विवेक हो, तो अपने हित व लोगों के हित के लिए मुझे क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए, इसकी सोच करके ही चलना चाहिए ।

पशुओं की भांति, केवल अपने लिए ही जीने के बदले, स्वयं बढ़ कर, अपने परिवार, देश, धर्म के संवर्धनार्थ, संपोषणार्थ जीना चाहिए। केवल उत्तम संतानों से ही धर्म, देश बच सकते हैं । विवाह ही उत्तम संतान प्राप्ति व विकास की एकमात्र व्यवस्था है।

८. घर आएं लोगों का स्वागत कैसे करते हो?

'अतिथिदेवो भव' ऐसा वेदों में कहा गया है । अतिथि याने ईश्वर । आये हुए व्यक्ति को हाथ-पैर धोने के लिए पानी देकर, बैठने के लिए आसन प्रदान कर, दूध-फलों से सत्कार करते हुए, उसके योगक्षेम की पूछताछ करना ही पूजा है । यह पूजा इस देश की परंपरा है । भक्त के घर भगवान अपने निज रूप में नहीं आतें। वे अतिथि के रूप में आ सकते हैं ।

उसी प्रकार, हमें भी घर आएं लोगों के बारे में प्यार-आदर दिखाते हुए, अंदर बुलाके बिठा कर उनके साथ बातचीत करनी चाहिए। हर एक देवतास्वरूपी भगवान ही होता है । इसीलिए उसकी जाति से हमे क्या लेना-देना है? आगंतुक व्यक्ति कौन है? किस जाति का है? किस भाषा, प्रांत, समुदाय का है, इसका विचार न करते हुए, उनका गौरव से सत्कार करना चाहिए । उनका, उनके परिजनों का कुशल-मंगल पूछ कर, उनका सत्कार करना चाहिए । भूल कर भी हमें उनको जाति के कारण से दर्द-पीड़ा पहुँचाने वाली बातें नहीं करनी चाहिए । आए हुए अतिथि को आनंद हो, ऐसा बर्ताव करना चाहिए ।

९. **अस्पृश्यता हमारे समाज के लिए एक कलंक है। यह कलंक अपने घर को न चिपके ऐसी कौनसी सावधानी बरतते हो?**

अस्पृश्यता एक घोर पाप व मानवता के प्रति द्रोह है । उसका उद्‌गम कथित उच्च वर्णियों के मन में है । अत:, उसे अपने मन से उखाड़ के फेंकना चाहिए। वैसा करने के लिए, जातीय भाव दूर होना चाहिए । जाति को भूलना चाहिए । जाति का निर्मूलन करेंगे, ऐसा कह कर संघर्ष करने निकलने के बदले, जाति को भूल जाइए। उसकी गणना ही न करते हुए, आचरण कीजिए । तब हम अपने जन्म से आयी जाति के बारे में यदि कोई भी आलोचना करता है, तो हमें दु:ख नहीं होगा । हमारी छोड़ कर, किसी दूसरी जाति की आलोचना होती है, तो हमें पीड़ा होना चाहिए। क्योंकि, उससे द्वेष बढ़ कर, समाज में फूट पड़ती है, ऐसा लगना चाहिए।

उसीके अनुसार, अस्पृश्यता का कलंक अपने घर को न लगे, इस बारे में यदि हमें दृढ़ विश्वास हो, तो किसीकी भी पहचान हमें उसकी जाति से नहीं करनी चाहिए। जाति समझने के लिए प्रयास मत करिए । अपने घर आने वाले, हमारे साथ रहने वाले सभी लोग हिंदू हैं; हमारे ही बंधु हैं, ऐसा हृदय से मानते हुए आचरण कीजिए। अपने घर के लोग भी इसी प्रकार का बर्ताव करें, ऐसा उन्हें प्यार से समझाइए ।

साथ ही, खान-पान में सबको समान रूप से देखते हुए, उनके साथ खाना खाइए। अपना घर सबके लिए खुला होना चाहिए । हमें भी सबके घर जाते-आते रहना चाहिए।

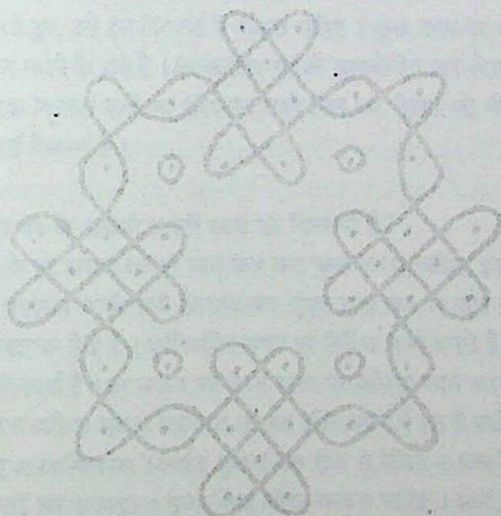
विषयसूची

व्यक्ति

कुटुंब

समाज, समष्टि

व्यक्ति



दिनचर्या, उपवास, अभ्यंजन, संकल्प

१. क्या आपके घर की कोई दिनचर्या है?

दिनचर्या याने हर दिन करने योग्य हमारे कामों का क्रम । उसे हम दैनंदिन समय-सारणी भी कह सकते हैं । कौनसा काम किस क्रम से करना चाहिए, इसका निर्धारण करते हुए, उसे इस दिनचर्या में जोड़ना चाहिए । कुछ काम घर के सब लोगों को मिल कर करने के होते हैं । उसके लिए सबको समायोजित कर लेना जरूरी होता है । कुछ एक न्यूनतम बातों का परिपालन सबने मिल कर किया, तो भी इसका अर्थ यही है कि वहाँ दिनचर्या है ।

२. क्या घर के सबकी अपनी स्वयं की दिनचर्या है?

घर के हर सदस्य को भी स्वयं कब क्या कुछ करना चाहिए, इसका निर्धारण करते हुए, तद्नुसार अपने सभी क्रियाकलाप सुसूत्र चला कर ले जाने के लिए यह दिनचर्या आवश्यक होती है । पूर्वनिर्धारित समय पर निर्दिष्ठ काम करते हैं, इसका अर्थ यही है कि दिनचर्या है । हर सदस्य को किस समय पर कौनसा काम करना है, इसका निर्धारण करना चाहिए। सबको महाभारत की यह उक्ति ध्यान में रखनी चाहिए कि *'सर्वं हि न स्यात् अनवस्थितस्य'* (अर्थात् सुव्यवस्थित रीति से जीवन न चलाने वाला कुछ भी हासिल नहीं कर सकता) । सुव्यवस्थित जीवन चलाना चाहिए । स्वयं की दिनचर्या के कुछ एक कामों का समायोजन घर की दिनचर्या के साथ करना अपेक्षित होगा ।

३. दिनचर्या चलाने वालों का जीवनसूत्र क्या है?

स्वास्थ्यवर्धन अर्थात् शरीर का निरंतर संपोषण । संपोषण केवल आहार सेवन मात्र नहीं है । रोग निरोधक शक्ति बढ़ाने के लिए कुछ आचरण आवश्यक है । वह है नित्य स्नान, नित्य ध्यान व नित्य व्यायाम। इनके साथ-साथ सप्ताह में एक बार अभ्यंजन, पखवाड़े में एक बार उपवास, महीने में एक बार विरेचन कराना आवश्यक है । ऋतुओं के अनुसार अपना जीवनक्रम चलाने से ऋतुओं के अनुसार ही हर महीने में एक बार हमारे जीवन का क्रम बदल जाना चाहिए। हमारे हर दिन के अभ्यासों के साथ, किसी एक प्रेरणास्थली, शांति प्रदान करने वाले स्थान पर जाना चाहिए । उसके लिए साल में एक बार प्रवास करना चाहिए।

४. क्या घर के सभी लोग हर दिन स्नान करते हैं? क्या आप दिन में स्नान करते हैं? या रात में?

स्नान यह एक अति विशिष्ठ संकल्पना है । हर क्षण हमारा शरीर मलिन होता ही रहता है । इसीलिए मलिनता को धोना ही चाहिए । अन्यथा वह शरीर के लिए घातक बनता है । अत: इस देश में स्नान नामक संस्कार की कल्पना करते हुए, हर दिन स्नान करने का नियम बनाया गया है । एक सुभाषित के अनुसार 'स्नानेन शुद्धिः न तु चन्देनेन' अर्थात् चंदन से नहीं, बल्कि स्नान से ही शुद्धि होती है । इसीलिए हर दिन स्नान करना चाहिए । सामान्यत: रात में सो जाने पर शरीर जड़ हो जाता है । प्रात: तरोताजगी पाने के साथ-साथ हमारे दैनंदिन कार्यक्रम में चुस्ती भरने के लिए सुबह स्नान करना अच्छा रहता है । कुछ लोग रात में स्नान करते हैं। पसीना बहुत आता है, तो रात में भी स्नान कर सकते हैं । लेकिन रात में स्नान कर ही रहा हूँ, इस बहाने सुबह का स्नान नहीं टालना चाहिए ।

५. क्या आपको अभ्यंजन या तेल-मालिश मालूम है? कितने दिनों में आप अभ्यंजन करते हैं?

आयुर्वेद के निर्देशानुसार, 'अभ्यंग आचरेत् नित्यं' - हर दिन कोई भी वनस्पतिजन्य तेल (अरंडी, तिल या खोपरे का तेल आदि) लगा कर स्नान करना चाहिए। हफ्ते, पखवाड़े या महीने में न्यूनतम एक बार तो संपूर्ण शरीर को तेल लगा कर, शिकाकाई चूर्ण या चने के आटे से रगड़ कर, स्नान करना वांछनीय है । इससे शरीर के सभी अंग सम उष्णता पाकर तन-मन सभी स्फूर्ति से भर जाते हैं और आरोग्यवर्धन भी

होता है । इससे चर्म की अंगभूत शक्ति बचा कर, सूर्यशक्ति का स्वीकार करते हुए, शरीर में शक्ति भरने का काम अच्छे ढंग से होता है। इससे बालों को भी शक्ति प्राप्त होती है । इसके कारण चिकित्सा पद्धति के अनुसार Vasculo Dialation संभव होता है ।

६. **क्या अपनी मातृभाषा में महीना-वार-दिन बता सकोगे?**

'भारतीय कालगणना पद्धति' समूचे विश्व को भारत की अपूर्व देन है । भूमि, चांद, नक्षत्रों के संचार के आधार पर, वैज्ञानिक रीति से तिथि, वार, महीनों का निर्धारण होता है । यदि हम उनकी जानकारी प्राप्त करते हैं, तो हम सब उसीका प्रयोग कर सकते हैं । यदि वैसा होना है, तो घरेलू व बाहरी जीवन निर्णयं? में भी भारतीय पद्धति के महीने, तिथि, वार आदि का प्रयोग करने का निर्णय हम सबको करना चाहिए । उसका प्रारंभ घर से ही होने दो । पश्चिमी कालगणना को नकारने की जरूरत नहीं है । जहाँ आवश्यक हो, उसका उपयोग कीजिए । लेकिन हमारे समाज की सभी गतिविधियाँ हमारी भारतीय कालगणना पद्धति के अनुसार ही चलती रहें। उदाहरणार्थ : हर दिन बच्चों को महीना, पक्ष, तिथि, वार का अभ्यास कराना, जन्मदिन का आचरण तिथि अथवा नक्षत्रानुसार करना आदि पद्धति का अनुसरण हम करते जाएं, तो बच्चों को भी उसीकी स्वभाव हो जाता है। आज भी किसान इसका ध्यान रखते हैं कि जुताई, बुवाई करने के लिए योग्य दिन-तिथि कौनसी है? क्योंकि, हमारे किसानों का अनुभव रहा है कि इस कालगणनानुसार किए काम फलदायी होते हैं ।

७. **क्या आप के यहाँ विरेचन करा लेने की पद्धति है? कितने दिनों में एक बार करा लेते हो?**

शरीर पोषण तथा आरोग्यवर्धन के लिए उसे केवल आहार देना मात्र नहीं, तो उसके अलावा शरीर से विषकारक बातों को बाहर फेंकना भी उतना ही आवश्यक है । इसीलिए आयुर्वेद में 'विरेचन' (दस्त कराना) नामक विशिष्ठ प्रयोग का उल्लेख किया गया है । अत: महीने में एक बार विरेचनार्थ समुचित औषधि का सेवन करते हुए, शरीरस्थ सभी त्याज्य वस्तुओं को बाहर फेंक देना चाहिए ।

८. **क्या सभी लोग थोड़ा समय तो व्यायाम करते हैं?**

जड़ता की ओर खींच ले जाना शरीर का स्वभाव है - अर्थात् मांसपेशियाँ संकुचित ही रह जाती है, अस्थियाँ फैलती नहीं है आदि। यह आरंभ में सुखकारक लगा

तो भी, धीरे-धीरे यही रोग का मूल कारण बन जाता है । लोग सजग हो चुके हैं कि आज के अनेक रोगों का कारण sedentary life style (बैठे रहने की जीवन शैली) ही है। अत: यह शरीर जड़ता की ओर न फिसल जाए ऐसी जागरूकता हमें बरतनी चाहिए । इसीलिए सभीको प्रात:काल अथवा सायंकाल में व्यायाम, या शारीरिक क्रियाएँ करना अनिवार्य है ।

९. क्या अपने स्वयं के काम अपने आप ही करने का स्वभाव आपके यहाँ है?

हर मनुष्य को चाहिए कि वह अपने काम स्वयं ही करे । यह केवल आज की बात नहीं है । यह अनेक वर्षों से विकसित हुई परिपाटी है । प्रारंभ में यह थोड़ा कष्ठप्रद रहा, तो भी स्वभाव होने पर कष्ट नहीं होती । स्वतंत्र होने के पश्चात्, हर एक को अपने काम करने के लिए परावलंबी होने की अवश्यकता क्या है? बच्चों को भी स्वावलंबन की शिक्षा देनी चाहिए। प्रारंभ से ही उनके कामों का परिचय करा देने से, दूसरों की शिकायत, चुगली आदि करने के दुर्गुण उनमें नहीं आएंगे । तब बच्चों का विकास सहज ही अच्छे ढंग से होता है । उदाहरणार्थ : अपनी थाली स्वयं ही धोनी चाहिए, अपने कपड़े स्वयं धोने-सुखाने चाहिए आदि ।

१०. क्या बड़ों का काम करने का गुण-उत्साह छोटों में है? आप उस प्रकार के कौनसे काम करते हो?

महाभारत कहता है :

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।। (उ.३९-७४)

अर्थ: हर दिन वयोवृद्धों को अभिवादन करते हुए उनकी सेवा करने वालों में विद्या-आयु-यश-बल इन चारों की वृद्धि होती है । वयोवृद्ध लोग घर की शोभा होते हैं । उनके आशीर्वाद, पालन-पोषण से ही हम बढ़ कर बड़े हो जाते हैं । इसीलिए बच्चों को प्रारंभ से ही घर के वयोवृद्धों के सम्बंध में आदर करने का स्वभाव सिखाना चाहिए । साथ-साथ हमारा व्यवहार भी वैसा ही होना चाहिए । उनके प्रति हमारी श्रद्धा-गौरव के कारण हम उनके अनुग्रह के पात्र बन कर, उनके अनुभवों से जीवन में और भी अधिक संस्कार पा सकते हैं । यह केवल दिखावटी विषय न होकर, प्रेमभाव से ही करते रहना चाहिए । वयोवृद्धों द्वारा बतायी गईं वस्तुएँ उनको लाकर देना, उनके अस्वास्थ्य के समय उनकी शुश्रूषा करना, उनकी अपेक्षानुसार अपना

व्यवहार करते रहना, उनके साथ आनंद से रहना, वे किसी अन्य स्थान जाने के लिए निकलते तथा वहाँ से लौटते समय उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करना आदि सब बातें हमें करते रहना चाहिए ।

११. क्या आप समय-समय पर उपवास (किसी भी आहार का स्वीकार न करना) करते हो?

पोषण याने केवल पेट में डालते ही रहना नहीं । शरीर के अंगों को थोड़ासा विश्राम देना भी स्वास्थ्य के लिए पूरक रहता है । इसीलिए धीरे-धीरे हफ्ते में एक बार, यदि वह न हो सका तो पखवाड़े में एक बार उपवास (कुछ भी न खाना) करना चाहिए । आरंभ में लघु आहार सेवन करते-करते, क्रमश: संपूर्ण उपवास करना स्वास्थ्य के लिए अपेक्षित है।

१२. क्या आपको पता है कि आपके घर के प्रमुख पर्व कब आते हैं?

भारत पर्वों का देश है । हर दिन कोई न कोई पर्व होते ही रहता है । मुख्य रूप से त्योहारों के दो प्रकार हैं । एक, व्रत; तो दूसरा, जयंति अथवा साधना के संकेत रूपी पर्व । लेकिन दोनों का उद्देश्य आत्मसंस्कार ही हैं । अपने मन को ईश्वर के सान्निध्य में ले जाते हुए, समाज को समुचित मार्ग पर चलाने वाले संस्कार । पर्व याने केवल स्वादिष्ट रसोई का सेवन मात्र नहीं है । अर्थात् वह भी आवश्यक है । साथ में आत्मसंस्कार भी चाहिए । भोजन उसका केवल एक भाग मात्र है । अत: हर एक पर्व कब आता है? उसकी विशेषताएँ क्या हैं? आदि सब समझ कर, हमें उनका आचरण करना चाहिए । यदि त्योहारों की तैयारी में घर के सभी की सांझेदारी हो, तो सबको सब कामों का पता चलता है और श्रद्धा बढ़ती है ।

१३. बच्चों को पाठांतर के रूप क्या कुछ सिखाया है?

अपने सांस्कृतिक विषय यदि हम अपने बच्चों को नहीं, तो क्या दूसरों को सिखाएंगे? हर दिन, विशेषकर, सायंकाल के समय हम अपनी हिंदू पद्धति के अनुसार तिथि अथवा दिन, पक्ष, महीना, ऋतु, वर्ष, नक्षत्रों का नाम, योग, करण, दिक्पालकों के नाम, पर्वों के नाम, उनके मनाए जाने के दिन, कुछ देवताओं के श्लोक, वचन, उक्तियाँ, सुभाषित, भगवद्गीता, प्रेरणा प्रदान करने वाले विषय आदि अवश्य समझा देने चाहिए ।

१४. क्या हर दिन संकल्प करते हो? क्या सबको संकल्प आता है?

मनुष्य को स्वयं काम करने के प्रदेश, समय, परिवेश आदि की जानकारी रहनी चाहिए। उसी प्रकार हमारे विश्व के बारे में शाश्वत सत्य का ज्ञान भी होना चाहिए। इस तरह व्यक्ति को देश-काल के साथ जोड़ते हुए, उसका ज्ञान, दायित्व आदि बता कर, उसकी क्षमता को बढ़ाने हेतु हमारे ज्येष्ठ ऋषियों द्वारा संरचित विधा ही संकल्प है। यह मनुष्य को हर दिन अपनी दिनचर्या प्रारंभ करने से पहले, विना नागा किए, आचरण करने योग्य मंत्र है। यदि घर के वयोवृद्ध इसे स्वयं कहते हुए, बाकी लोगों को भी बताते हुए, उनको विकसित करते गए, तो सबमें हम सब एक ही परंपरा के हैं यह भाव प्रकट होकर सबकी क्रियाशीलता बढ़ती है।

संकल्प:

प्रणवस्य परब्रह्म ऋषि: परमात्मा देवता, देवी गायत्रीच्छन्द:, प्राणायामे विनियोग:। ॐ भू: ॐ भुव: ॐ स्व: ॐ मह: ॐ जन: ॐ तप: ॐ सत्यम्। ॐ तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो न: प्रचोदयात्। ॐ आपो ज्योतिरसो अमृतं ब्रह्म, भूर्भुवस्वरोम्।

शुभतिथौ शोभने मुहूर्ते अद्य ब्रह्मण: द्वितीयपरार्धे श्वेतवराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे कलियुगे प्रथमपादे जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे मेरो: दक्षिणे पार्श्वे श्रीरामक्षेत्रे, अस्मिन् वर्तमाने व्यावहारिके चान्द्रमासेन अस्य प्रभवादि षष्ठि संवत्सराणां मध्ये श्रीमत् ....नाम संवत्सरे ....अयने ....ऋतौ ....मासे .... पक्षे ....शुभतिथौ मम उपात्तसमस्तदुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थम् अस्माकं सहकुटुंबानां क्षेमस्थैर्यविजयवीर्यआयुरारोग्य ऐश्वर्यादिसमस्त अभ्युदयार्थं ....कर्म करिष्ये।

स्नान-ध्यान-पूजा

१. क्या हर दिन स्नान करते हो? ठंडे पानी से? या गरम पानी से?

हर दिन स्नान करना चाहिए। ठंडे पानी से स्नान करना अधिक लाभप्रद होता है। यथासंभव उष्ण व ठंडा पानी दोनों भी समप्रमाण में मिला कर शरीर की ऊष्णता के समान उष्ण पानी से स्नान करना चाहिए।

२. क्या आप घर में हर एक को यह सिखाते हो कि कैसे स्नान करना चाहिए? क्या यह भी समझाते हो कि स्नान के समय क्या कुछ स्मरण करना है?

हर कर्म का एक क्रम होता है । स्नान से शरीर के सभी अंगों को शुद्ध कर लेना चाहिए। बैठ कर स्नान करना वांछनीय है । मत्स्य पुराण में बताया गया है कि नदीस्नान करते समय महासंकल्प का उच्चार करना चाहिए । लेकिन सामान्य दिनों में स्नान करते समय,

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।।

हे गंगा, यमुना, सरस्वती, सिन्धु, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी आदि सभी नदियों! आप सभी इस जल में समाहित हो जाइए – इस अर्थ का उपरोक्त श्लोक दोहरा कर स्नान करना चाहिए। साथ ही पैरों के तलुवे, काँखें इत्यादि भली भाँति रगड़ के धोने चाहिए । यह सभीको समझाना चाहिए ।

३. क्या स्नान करते समय साबुन का उपयोग करते हो? या शिकाकाई चूर्ण, चने का आटा आदि जैविक वस्तुओं का?

शिकाकाई चूर्ण, चने का आटा, रीठे, कस्तूरी, हल्दी आदि जैविक वस्तुएँ स्वास्थ्यप्रदायक हैं । साबुन में KOH नामक प्रत्याम्ल तथा अन्य रासायनिक प्रयोगों के कारण, चमड़ी की हानि होता है। किन्तु जैविक वस्तुओं के प्रयोग से कोई भी विपरीत परिणाम नहीं होते । शरीर की कांति बढ़ जाती है।

४. स्नान के पश्चात् क्या गीले कपड़े वहीं पर छोड़ आते हो? या उनके लिए कोई अलग व्यवस्था है?

गीले कपड़े स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं । अत: यथासंभव उसी समय उसी स्थान पर उन्हें धो डालना वांछनीय है । यदि संभव नहीं, तो उन्हें धोने के स्थान पर अथवा निर्धारित पात्र में डाल कर रखना चाहिए। फिर भी गीले कपड़ों को वैसे ही लंबे समय तक नहीं रखना है । उन्हें तत्काल धोकर सुखाना चाहिए । यदि वैसा नहीं करते हो, तो कपड़े को हानि होती हैं; स्वास्थ्य भी बिगड़ता है ।

५. क्या आपको त्रिकाल (दिन में तीन बार) स्नान करने की कल्पना विदित है?

हमसे अपेक्षा है कि दिन में तीन बार ईश्वर की आराधना करनी चाहिए । इसीलिए अनुकूलता के अनुसार तीनों संध्याकालों – प्रात:, मध्याह्न तथा सायं समय – में स्नान करने की आदत डाल लेनी चाहिए।

६. क्या आपको विदित है कि स्नान करना यह हमारे ही देश की विशेषता है?

विश्व के अन्य देशों की तुलना में केवल भारत में ही स्नान की संकल्पना आरंभ हुई और यह बात आज-कल की नहीं, हजारों वर्षों के पहले से, विश्व के अति प्राचीन सभ्यताओं के भी पूर्व से यह पद्धति प्रचलन में आयी है । सामाजिक, धार्मिक कार्यक्रमों के पहले मंगलस्नान करना, यह भारत की ही विशेषता है । यह श्रद्धा भी भारत में ही है कि नदियाँ पवित्र हैं; तीर्थक्षेत्र हैं और उनमें स्नान कर पवित्र होना चाहिए ।

७. स्नान से बाहरी शरीर स्वच्छ होता है। क्या आपको शरीरांतर्गत भाग स्वच्छ करने का मार्ग विदित है?

स्नान का उद्देश्य है शरीर की शुद्धि । लेकिन बाह्य शरीर ही सर्वस्व नहीं है ।

उसे महात्माओं की उक्ति ऐसा बताती है : ''स्नान करिए दिव्य तीर्थ में, 'मैं-तू' का अहंकार त्याग कर । मातृ-पितृसेवा एक स्नान है, तो सत्कार्य ही दूजा स्नान है ।।'' आदि। कर्नाटक के संत बसवेश्वर का वचन उल्लेखनीय है : ''चोरी न करो; हत्या न करो; झूठ न बोलो; स्वयं का बखान मत करो: सामने निंदा न करो; क्रोध न करो; अन्यों को असहय न बनो; यही है अंतरंग शुद्धि; यही बहिरंग शुद्धि ।'' स्नान से शरीरशुद्धि होती है । रामानुजाचार्य का उपदेश भी स्मरणीय है कि ध्यान-सद्विचार-सदाचार से आंतरिक शुद्धि होती है ।

८. क्या आपके घर में किसीको ध्यान करने का स्वभाव है?

बाहरी दृष्ठि से हम बहुत काम करते रहते हैं । लेकिन एक बात अनेक लोग भूल गए हैं कि उनका कुल उद्देश्य चंचल मन को एकाग्र रखना तथा अपने आत्मसंस्कार के लिए ही होता है । अत: आत्मसंस्कार हेतु हर दिन, 'मैं कौन हूँ?' 'कहाँ से आया हूँ?' 'यहाँ क्यों आया हूँ?' 'इस विश्व का रहस्य क्या है?' 'सृष्ठि के पीछे कौनसी शक्ति है?' इसका सदैव चिंतन करना चाहिए । चिंतन यानी केवल प्रश्न खड़े करना नहीं है । मन को अपने नियंत्रण में रखते हुए, सृष्ठि के भीतर झाँक कर देखने का यह एक अति विशिष्ठसा विधान है । ज्ञानी लोग इसे 'ध्यान करना' कहते हैं । सबको प्रति दिन अवश्य ध्यान करना चाहिए ।

९. क्या आपको ध्यान करने की पद्दति मालूम है?

ध्यान का अपना ही एक विधान है । पहली बात याने हमारे ध्यान करने की जगह परिशुद्ध होनी चाहिए । शुचितायुक्त स्थान में बहुत ऊँचा भी नहीं और बहुत नीचे भी नहीं ऐसी जगह पर चटाई, पीढ़ा, अथवा कपड़े का आसन बिछा कर उस पर सुखासन अथवा पद्मासन में सीधे बैठना चाहिए । बैठते समय पूर्व की ओर अथवा उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठना उत्तम होता है । हल्केसे आँखें मूंद कर, पूरे मन को साँसों के ऊपर केंद्रीकृत करते हुए, श्वासोच्छ्वासों का अवलोकन करते हुए अंतर्मुखी बनना चाहिए । मन व अंतरंग दोनों भी नियंत्रण में रहने चाहिए । न्यूनतम दो-तीन मिनट तक तो इस स्थिति में रहना चाहिए । अभ्यास होता जाता है, वैसा अधिकाधिक समय ध्यानावस्था में ही रहने की आस जगती है । आनंद भी मिलने लगता है । प्रमुख रूप से मन की आँखों से देखने की शक्ति प्राप्त करने का एकमात्र मार्ग ध्यान ही है । प्रारंभ व अंत विशिष्ठ होता है; याने आरंभ ॐकार से और अंत शांति मंत्र से करना चाहिए ।

१०. नाम, रूप, मंत्र, गुण इनमें से आपको अच्छी लगनेवाली ध्यान की रीति कौनसी है?

नाम, रूप, मंत्र, गुण इनमें से कोई भी हो, उसपर ध्यान करना चाहिए । नामध्यान में ईश्वर का एक नाम बार-बार उच्चारते हुए, मन ही मन में उसका स्मरण करने की प्रक्रिया रहती है । रूपध्यान में प्रभु के रूप की कल्पना करते हुए, निरंतर उसीका ही स्मरण करना चाहिए । मंत्रध्यान में भगवान के स्तोत्रस्वरूपी मंत्रों का निरंतर उच्चारण करना होता है । गुणध्यान में जगन्नियंता के गुणों का स्तवन करते हुए, उसका पालन करना होता है ।

११. क्या आपके घर में हर दिन पूजा होती है? क्या अगरबत्ती जलाते हैं? यदि हाँ, तो नैसर्गिक या रासायनिक?

पूजा अपने नित्यकर्म का क्रम बनना चाहिए । उसमें प्रयोगित हर वस्तु भी जैविक/नैसर्गिक होनी चाहिए । जलाने का कपूर आदि सब वस्तुएँ प्रकृति के पूरक रहनी चाहिए । इसीलिए अगरबत्ती भी जैविक है या नहीं, यह देख कर ही लानी चाहिए । जैविक अगरबत्ती उपलब्ध न हो, तो धूप, सांब्राणि इत्यादि उपयोग में लाना होगा । पूजा करने के लिए जाति, लिंग, भाषा आदि का भेद नहीं होता । सभी श्रद्धालु लोगों को अपने घर में पूजा करनी चाहिए ।

१२. क्या पूजा केवल अकेले करते हो? या सब मिल कर?

ईश्वर ने सबका सृजन किया है । वह सबके पिता जैसा है । अत: उसकी आराधना सबको करनी चाहिए । यह काम किसी अकेले का नहीं है; वह सबका है । अपने-अपने अनुकूल समय, अनुकूल रीति से कर सकते हैं । फिर भी घरों में आरती तथा प्रसाद के समय, सब एकत्रित होते हैं, तो घर की संस्कृति, शक्ति दोनों वलवती होती है।

१३. एक पूजा करता है, तब क्या बाकी लोग उसकी सहायता करते हैं?

पूजा करना सबका कर्तव्य है । पूजा करने वाले को फूल, फल, दुर्वा, तुलसी, बिल्वपत्र, नैवेद्य, जल - आदि लाकर देने में मदद कर सकते हैं । कुछ लोग मंत्र व सेवा के माध्यम से, तो कुछ दूसरों को स्वच्छता आदि अन्य काम करने के द्वारा सहयोग करना चाहिए । पूजा में कोई भी वाधा न आए, ऐसा बरतना भी सहयोग ही होता है । पूजा में सहयोग करना भी पूजा ही होती है ।

१४. क्या आप सबको पता है कि पूजा के लिए क्या-क्या तैयारियाँ करनी पड़ती हैं?

पूजा याने अंतरंग में घटने वाली एक भक्तियुक्त अर्चना होती है। उसके पूरक अनिवार्य ऐसे बाह्याचार हैं । बाह्याचार ही सर्वस्व नहीं है । फिर भी वह एक अनिवार्य भाग है । सामान्यत: किए जाने वाली पूजा के औपचारिक आधार पर सब तैयारियाँ करनी चाहिए । स्थानशुद्धि, पात्रशुद्धि, पूजाद्रव्यों की शुद्धि, वहाँ के परिसर की शुद्धि – इनके साथ-साथ हल्दी, कुंकुम, अक्षत, पुष्प, फल, धूप, दीप, नैवेद्य आदि वस्तु कब उपलब्ध कराना है, इसे समझ कर, ठीक उसी समय उनको उपलब्ध कराना होगा ।

१५. क्या पूजाघर हर दिन साफ रखते हैं?

उसकी शुद्धता एक नित्यकर्तव्य ही है । क्योंकि, हमारा सृजन करने वाले की, इस जगत् के अधिपति की अर्चना हमें शुद्ध मन, शुद्ध तन से करनी चाहिए । इसीलिए, वह स्थान भी नित्य ही शुद्ध रखना होगा ।

१६. क्या आपको पूजा के मंत्र, श्लोक आदि विदित है? क्या पूजा करने की रीति जानते हो?

'मननात् त्रायते इति मन्त्र:' (अर्थ: मंत्र उसे कहते हैं, जिसके मनन से हमारी रक्षा होती है) श्लोक, मंत्र आदि का शब्दरूप में उच्चार करना चाहिए । इस प्रकार उसे पूर्णत: समझ लेना चाहिए । यदि विदित नहीं है, तो जानकारों से समझ लेना होगा । हर बात को समझ कर तद्नुसार आचरण करना चाहिए । यह अनिवार्य नहीं है कि मंत्र, श्लोक आदि संस्कृत में ही हो । अपनी-अपनी भाषाओं के उत्तम भावमय शब्दसंपदा से युक्त पदावलि का प्रयोग करते हुए, हम पूजा कर सकते हैं। वचन, अभंग, ओवी, दोहा, त्रिपदी, चौपदी, तिरुप्पावै, नालायिरं, गुरुबानी आदि का प्रयोग करते हुए ही पूजा चलती आयी है ।

१७. क्या साल में एक बार तो आपके घर में विशेष पूजा का आयोजन करते हुए सगे-संबंधियों तथा बंधु मित्रों को आमंत्रित करते हो?

हिंदू सभ्यता की परंपरा में उत्सव-पर्वों, तीज-त्योहारों, जन्मदिन आदि के अवसर पर भगवान की आराधना करने की पद्धति है । उसी दिन विशेष पूजा-पाठ आदि किया जाता है । उस दिन बुजुर्ग, बंधु-मित्र, पड़ोसी, सहयोगी आदि सबको आमंत्रित करने से हमें श्रेयप्राप्ति होती है तथा अन्यों को भी प्रेरणा मिलती है ।

१८. पूजा करने के उपरांत (जल, फूल आदि) शेष बची वस्तुओं का उपयोग कैसे करते हो?

पूजा संपन्न होने के बाद की व्यवस्थाएँ आरंभ से भिन्न होती हैं। बिना उपयोग की हुई सभी वस्तुएँ निर्माल्य बनती हैं । उनको ऐसे स्थान पर या पेड़ के तले डालना चाहिए, जहाँ उन्हें कोई भी पैरों तले रौंद न सके । पूजा के उपरांत, बिना-पूजा के फूल तथा पूजा किए प्रसादरूपी फूल दोनों भी अलग-अलग कर के रखना चाहिए । तीर्थ-प्रसाद स्वीकृति के बाद, बचे फूलों का समुचित रीति से उपयोग करना चाहिए । स्नानघर के नाली आदि में नहीं फेंकने चाहिए । पंचवाल, पंचपात्र आदि समुचित स्थान पर रखना चाहिए । बलिहरण, बची हुयी अक्षत आदि सब भक्तिपूर्वक पक्षियों को डालना चाहिए । पूजास्थान को झाडू आदि से साफ न करते हुए, किसी साफसुथरे कपड़े से शुद्ध करना चाहिए । फूल आदि द्रव्यों पर अपने पैर न पड़ें ऐसी सावधानी बरतनी चाहिए ।

१९. क्या घंटा-शंख-ताल आदि पूजावाद्यों का उपयोग करते हो?

पूजा सामग्री के साथ-साथ, खास कर मंगलारती के समय घंटा, शंख, ताल, भेरी, नगाड़ा आदि उपलब्ध सभी मंगल वाद्यों का प्रयोग करना चाहिए । हमारे प्रभु वेदप्रिय भी हैं; नादप्रिय और भक्तिप्रिय भी हैं। इसीलिए इन सभी वाद्यों का प्रयोग वांछनीय है । ईश्वर पूजा के पश्चात्, गंध-फूल-अक्षत आदि चढ़ा के इनकी भी पूजा करते हुए, समुचित स्थान पर रख देना चाहिए।

२०. क्या आपके घर के सामने तुलसी वृंदावन है?

भारत के सभी कुटुंबों में तुलसी, तुलसी-पूजन निरंतरता से चला आ रहा है।

यन्मूले सर्वतीर्थानि यन्मध्ये सर्वदेवता: ।
यदग्रे सर्ववेदाश्च तुलसि त्वां नमाम्यहम् ।।

'जिसकी जड़ें सब तीर्थों का, मध्य सब देवताओं का व अग्र सर्व वेदों का वासस्थान है, ऐसी हे तुलसी! मैं तुम्हें वंदन करता/करती हूँ '- ऐसा कहते हुए, घर की सभी महिलाएँ तुलसी-पूजन करती हैं ।

तुलसी समुद्र मंथन के दौरान प्रकट हुई वनस्पति है । अत: यह 'ओज़ोन' से भरी हुयी एक वनस्पति है । सभी रोगों का निवारण करती है । जहाँ पर यह है, वहाँ रोग नहीं होतें । इसके ऊपर से बह कर आने वाली हवाओं से मानव की आयुर्वृद्धि होती है ।

देवपूजा में भी तुलसी को प्राधान्य है । तुलसी दल के जल का तीर्थ के रूप में स्वीकार किया जाता है ।

इसके पत्ते विष्णु को प्रिय हैं । श्रीविष्णु की प्रतिमा को तुलसी-माला चढ़ा के लोग आनंदित होते हैं । वर्ष में एक बार कार्तिक मास में दीपोत्सव मनाते समय तुलसी वृंदावन के सामने दीपक जलाए जाते हैं। देवोत्थान द्वादशी को तुलसी वृंदावन की पूजा करते हैं।

२१. तुलसी की पूजा क्यों करनी चाहिए?

तुलसी सर्व रोगहारी वनस्पति है । वह कफनिवारक है; पाचन शक्ति बढ़ाती है । उससे प्राणवायु व ओज़ोन का उत्सर्जन होता है । जहाँ तुलसी होती है, वहाँ रोगाणु नहीं रहते । यह अपनी सुगंध से वातावरण को शीतल बनाती है । शालीग्राम की पूजा करने वाले तुलसीपत्र का उपयोग करते हैं । फिर भी, ये सारे बाहरी कारण हैं ।

प्रमुखता से भाव ही पूजा का कारण है । तुलसी सभी देवताओं का वासस्थान है। यह श्रीविष्णु की भार्या है । अत: जगद्रक्षक, पालनकर्ता श्रीविष्णु की सहचारिणि इस नाते तुलसी की पूजा करते हैं।

जैसे शंख से आने वाला जल ही तीर्थ होता है; वैसे ही दान करते समय तुलसी-पत्र चाहिए। इस प्रकार, पूजा-दान आदि के लिए तुलसी अनिवार्य है।

२२. तुलसी से होने वाले उपयोग क्या हैं?

तुलसी की पूजा करो, तुलसी-तीर्थ का सेवन करो, तुलसी का स्वीकार करो, तुलसी से बना कषाय, तुलसी-मिश्रित रस का पान करो।

आदि वाक्य, निर्देश भारतीय जीवन में बार-बार सुनायी देते हैं। मनुष्य को सामान्यत: होने वाली सर्दी-जुकाम, खाँसी, बुखार, उदरशूल, अमन आदि रोगों पर तुलसीपत्र, तुलसी का कषाय फलप्रद होता है । घाव पर तुलसी-रस का लेपन किया तो घाव जल्दी भर आता है और त्वचा ठीक होती है । तुलसी के पौधे से युक्त स्थान के आसपास कृमि-कीट कम होते हैं। सांक्रामिक रोगों का प्रसार नहीं होता ।

साथ ही तुलसी के कारण मन को शांति, संतोष मिलता है। इस प्रकार, तन-मन-बुद्धि को सांत्वन प्राप्त होने के लिए तुलसी का प्रयोग अतीव लाभकारी होता है।

२३. क्या आपको पता है कि जैसे फूलों से अलंकृत करते हुए देवता की पूजा की जाती है, वैसा पर्णों से भी पूजा करते हुए उनका अलंकार करते हैं?

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।

'जो कोई मुझे भक्ति से पर्ण (पत्तें), फूल, फल या पानी चढ़ाता है, उस भक्ति के नैवेद्य (भोग) का स्वीकार मैं संतोष के साथ करता हूँ'- ऐसा आश्वासन भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने दिया है। भगवान को भक्ति चाहिए । केवल भक्ति ही पर्याप्त है । उसे आडंबर नहीं चाहिए। सुलभता से प्राप्त होने वाले, रोगनाशक पर्णों (पत्तों)-फूलों से ही वह तृप्त होता है । तुलसी, दूर्वा, दौना, बिल्व, आक आदि पत्ते नाना संदर्भों में पूजाओं में पूजा के लिए प्रयोग होते हैं । गणेशजी को दूर्वा, शिवजी को बिल्वपत्र, विष्णुजी को तुलसी, सूर्य भगवान को आक, इस प्रकार संबंधित देवताओं के लिए प्रिय रहे पत्तों को चुनके लाकर पूजा करते हैं । कार्तिक मास में खाने के पानों का अलंकार देवताओं के लिए अतीव प्रिय होता है । इस प्रकार फूलों जैसे ही पत्तें भी देवताओं को अर्पित करते हैं।

२४. बिल्वपत्र की विशेषता क्या है?

तीन पान वाला थोड़ासा खुरदरा बिल्वपत्र पत्तों में विशेष होता है। यह शिवजी को अतीव प्रिय होता है ।

त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रियायुधम् ।
त्रिजन्म पापसंहारं एकबिल्वं शिवार्पणम् ।।

'तीन पत्ते, त्रिगुणाकार, शिवजी की तीन आँखों जैसा, त्रिशूल जैसा रहा, तीन जन्मों के पापों का परिहार करने वाला एक बिल्वपत्र शिवजी को समर्पित कर रहा हूँ'- ऐसा एक ध्यानश्लोक भी है ।

शिवरात्री में शिवजी की बिल्वार्चना अनिवार्य है । बिल्वपत्र की ही माला तैयार कर, शिवजी को पहनाते हैं । साथ ही, बिल्वपत्र, बिल्वफल औषधि के रूप में भी उपयोग में आता है । पित्त, रक्तचाप आदि रोगों में बिल्वपत्र के सेवन से परिहार प्राप्त होता है । बिल्वफल से पेय-पानीय बनाते हैं । कहते हैं कि इससे पित्त कम हो सकता है।

२५. अग्निहोत्र याने क्या है?

अग्नि में किए जाने वाले होम - अर्थात् अग्नि में घी, समिधा, चावल अर्पित करने

को ही 'अग्निहोत्र' कहते हैं ।

विशेष कर, सूर्योदय-सूर्यास्त समय के ठीक क्षण में गायत्रि मंत्र हो या ''अग्नये स्वाहा, अग्नये इदं न मम'' इस मंत्र का उच्चारण करते हुए, अग्नि को घी-समिधा-चावल समर्पित करने के विधान को ही अग्निहोत्र कहते हैं।

इस प्रकार संध्या समय में निरंतर अग्निहोत्र करने हेतु तांबे से बनाए गए होमपात्र में - प्रात: पूर्व दिशा तथा सायंकाल पश्चिम दिशा की ओर मुख करते हुए बैठ कर, ठीक उसी क्षण को मंत्रोच्चार करते हुए द्रव्य समर्पित करने चाहिए।

इस होम का आचरण पुरुष, महिलाएँ, बच्चे, चाहे जो कोई, कर सकता है । ठीक उसी समय पर करना चाहिए ।

२६. अग्निहोत्र से होने वाले लाभ क्या है?

इसका आचरण करने से करने वालों की बुद्धि-विवेक संवर्धित होती है। अच्छी संतान प्राप्त होती है । तेज-कांति बढ़ती है । परिसर शुद्ध होता है । आसपास के कृमि-कीट अंदर नहीं आ सकतें । भोपाल के यूनियन कार्बाइड कारखाने में घटित विषैले वायु के रिसाव से सैंकडों की मौत हुयी; लाखों लोग दु:ख-दर्द से पूरी आयु के लिए बाधित हो गएं । लेकिन सबके अचरजभरे अनुभव की बात याने अग्निहोत्र करने वाले घरों में रहने वालों को कुछ भी नहीं हुआ।

किसान अपनी खेती में यदि अग्निहोत्र करते हैं, तो उत्तम फसल प्राप्त होती है । समय-समय पर बारिश होती है । अग्निहोत्र करने वालों को श्रद्धा, मेधा (विवेक), सफलता, प्रज्ञा, विद्या, ऐश्वर्य, शारीरिक बल आदि सब कुछ प्राप्त होता है ।

इससे आयु, आरोग्य, तेज बढ़ता है । अब विज्ञानियों ने भी इनका प्रयोग करके, यह साबित किया है कि ये सब कुछ अनुभवसिद्ध सत्य है ।

दीप, नंदादीप

१. क्या देवता के सम्मुख दीप जलाते हो? हर दिन, या कभी-कभार?

जगदाधारक की आराधना याने ज्ञान की आराधना है । ज्ञान का संकेत है प्रकाश। जहाँ भगवान है वहाँ ज्ञान है । इसीलिए हमें ईश्वर आराधना के संदर्भ में दीप जलाना चाहिए । अत: हर दिन नियमपूर्वक प्रभु के सामने दीप जलाना चाहिए । इसीलिए अपेक्षा यही है कि देवता के सम्मुख दीप सदैव जलते रहना चाहिए । न्यूनतम दिन में प्रात: व सायं दोनों समय दीप अवश्य जलाना ही चाहिए ।

२. दीप जलाने का कोई निश्चित समय है क्या?

हर बात के लिए एक समुचित समय निर्धारित किया है । सूर्य-चंद्र दोनों जगत् के नेत्र जैसे हैं । सूर्य का उदयास्त ही सामान्यतया दीप जलाने का समय होता है ।

३. क्या हर दिन दो बार इस प्रकार दीप जलाते हो?

हर दिन प्रात: व सायं काल दीप जलाने की पद्धति है । दोनों समय भी संध्या से ही संबंधित हैं । उस संदर्भ में सुबह की वेला में अग्नि जगत् की जिम्मेदारी सूर्य को तथा सायं की बेला में सूर्य वही जिम्मेदारी अग्नि को सौंपते हैं । इसीलिए उसी समय दीप जलाना चाहिए ।

४. क्या आपने निरंतर जलने वाला दीप अर्थात् नंदादीप देखा है?

न नंदने (बुझने) वाला दीप ही नंदादीप है । उसे चौबीसों घंटे जलते रखना ही उसकी एक विशेषता है । कुछ स्थानों पर अनेक दिन, अनेक महीनों, अनेक वर्षों तक जलते रहने

वाले नंदादीपों की योजना रहती है । कर्नाटक के हासन में हासनाम्बा देवालय वैसे स्थानों में एक है।

५. निरंतर दीप जलते रहने चाहिए, ऐसी अपेक्षा होने परभी , वैसा न कर सकने के कारण कौनसे होते हैं? क्या इसका एक कारण यह भी है कि व्यय बहुत होता है?

इसके लिए होने वाला खर्चा कितना हो सकता है? नंदादीप का उद्देश ही यह है कि देवता के सम्मुख निरंतर प्रकाश होना चाहिए । ताकि, उसका दर्शन हमें निरंतर होता रहे । अत: हमारे मन पर पड़ने वाला संस्कार महत्वपूर्ण है । विशेष उत्साह, आस्था के साथ उसकी रक्षा करनी चाहिए । यदि व्यय से भी अधिक इसके प्रति जागरूकता व श्रद्धा हो, तो यह संभव हो सकता है ।

६. दीप जलाने की आवश्यकता ही क्या है?

दीप हमें प्रकाश देता है । वह त्याग का संकेत है । उससे हमें एक मार्गदर्शनात्मक उदाहरण मिलता है कि हमें भी दूसरों के लिए अपना जीवन-दीप जलाना चाहिए । ज्ञान के संज्ञान के लिए दीप की जरूरत होती है । इसीलिए कार्यक्रम के पहले तथा घरों में हर दिन दीप जलाना चाहिए।

७. देवता के सामने दिया जलाने के लिए कौनसे तेल का उपयोग करना चाहिए? कौनसा नहीं करना चाहिए?

हमारे यहाँ परंपरा से आया हुआ तिल, करंजा, मूँगफली, खोपरा, अरंडी आदि का तेल अथवा घी का उपयोग करना चाहिए । इन सबको मिला कर भी उपयोग कर सकते हैं।

८. विवाहादि मंगलकार्यों, त्योहारों में दीप क्यों जलाया जाता है?

दीपज्योति: परब्रह्म दीपज्योति:परायणे ।
दीपेन हरते पापं दीपदेवि नमोऽस्तु ते ।।

हर कार्यक्रम के पीछे एक आध्यात्मिक उद्देश्य अवश्य होता है। विवाह याने दो कुटुंब मिल कर, समाज को और भी बलवान बनाने के लिए एकत्रित आने का समारोह होता

है । उसके द्वारा श्रेष्ठ संतति की उत्पत्ति भी उसके पीछे का एक निहित उद्देश्य होता है । इसीलिए यहाँ पर भी ज्ञानयुत चक्षुओं के प्रतीक के रूप में दीपों की आवश्यकता होती है ।

९. दीप बुझाना उचित है क्या? बुझाने का कोई पर्व भी है क्या?

हमारे यहाँ ऐसा विश्वास है कि दीप को बुझाना अशुभ होता है और उससे अकल्पित संकट आता है । इसीलिए हमारे किसी भी कार्यक्रम में दीप बुझाने की प्रक्रिया है ही नहीं. । लेकिन परानुकरण के कारण आज-कल इस अशुभ काम को जन्मदिन जैसे शुभ कार्यक्रम में सम्मिलित किया गया है ।

दीप बुझाना याने प्रकाश नष्ट करना । कोई भी जीवन में अंधेरा नहीं चाहता । इस कारण, भगवान के सामने दीप जलाना याने उनसे प्रकाश अर्थात् ज्ञान का प्रकाश माँगने का संकेत है।

व्यायाम

१. **क्या आप ''शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनं'' (सुदृढ शरीर ही धर्मकार्य का प्रथम साधन है)को मानते हो ? क्या आपके घर के सब लोग अपना-अपना इच्छित व्यायाम न्यूनतम ३० मि. तो करते हैं?**

यह शरीर याने अस्थियों का घोंसला है । उसी के ऊपर मांस आदि है । उनके ऊपर चमड़े का खोल है । ये मांसपेशियाँ हमारी हलचल में सहायता करती हैं; तो उनका आधार बनती हैं अस्थियाँ । जहाँ हड्डियाँ जुड़ जाती है, उसे संधि कहते हैं। इस प्रकार की शरीर-रचना धर्मकार्य का साधन है ऐसा कालिदास ने उपरोक्त उक्ति में बताया है । याने इस शरीर द्वारा अवश्यमेव साध्य करने लायक बात है धर्म । धर्म के लिए हर एक को अपने शरीर को सुदृढ अवस्था में बनाए रखना चाहिए । अनेक लोगों को लगता है कि पर्याप्त आहार सेवन अथवा अति भोजन करना व अच्छा विश्राम करने से ही शरीर का पोषण होता है । परन्तु केवल उतने से शरीरपोषण नहीं हो सकता । शरीर के सभी अंगांगों को सही ढंग से संस्कारित करना चाहिए । इसीलिए हर दिन बाहर से शरीर सुंदर तथा अंतरंग में स्वास्थ्यपूर्ण रखने के लिए व्यायाम करना जरूरी है । पूरे दिन के सभी कार्यक्रम सफलतापूर्वक संपन्न करने के लिए दिन में न्यूनतम आधा घंटा तो पसीना आने तक व्यायाम करना चाहिए । तभी शरीर सघन, कार्योन्मुख होकर उल्लसित तथा रोगरहित रहता है ।

२. क्या आपके घर के सभी लोगों को पता है कि धीमी गति से श्वासोच्छवास करना वांछनीय है ? क्या वे उसका अभ्यास करते हैं ?

हमें पता है कि इस शरीर में अनेक प्रकार के कार्य चलते रहते हैं । उनके लिए प्राणवायु की आवश्यकता सदैव होती है । अत: नाक के द्वारा शरीर के अंदर प्रवेश करने वाला यह प्राणवायु श्वासकोष में जाता है । हमारे रक्त में स्थित सभी विषैले वायु व इस प्राणवायु के बीच विनिमय होकर, शुद्ध रक्त हृदय के द्वारा शरीर के सभी भागों तक पहुँचता है । यह कार्य श्वासकोषों की सहायता से हुआ, तो भी इसका प्रमुख कारण हृदय होता है । हर मिनट ७२ बार स्पंदित होकर वह रक्त-संचालनकार्य का निर्वहन समुचित रीति से करते रहता है । यह हृदय मानव की मुठ्ठी के आकार का होकर, वह जन्म से मृत्यु तक कार्यशील रहता है । दीर्घश्वसन की क्रिया हृदय के लिए अत्यंत अनुकूल है । अत: अपने यहाँ प्राणायाम करने का नियम है । हर दिन उसका अभ्यास करना चाहिए। दीर्घ साँस लेकर धीरे-धीरे ॐकार के साथ छोड़ने से मन को आनंद की अनुभूति होती है । इनके साथ, पुरातन उल्लेखों व आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के अनुसार, हृदय भी इतने समय में इतनी बार स्पंदित होना चाहिए इस नियम से मेल खाता है । इसीलिए धीमी-धीमी श्वसनक्रिया करने से हृदय को शक्ति प्राप्त होकर आयुर्वर्धन होता है । अत: सबके लिए वांछनीय है कि वे दीर्घश्वसन करते रहें।

३. क्या आपको पता है कि रीढ़ की हड्डी सीधी रख के चलने-बैठने से शरीर को शक्ति मिलती है ? क्या घर के सब लोग थोड़ा समय तो इसका अभ्यास करते हैं ?

रीढ़ की हड्डी हमारे समूचे देह को एक आकार, एक मंडप प्रदान करने वाली अस्थियों की एक विशिष्ट संरचना है । इसे 'मेरुदंड' भी कहा जाता हैं । यह हमारे चापल्य को सहयोग करने वाला एक विशेष भाग है । यह हमारे शरीर की स्पंदनशक्ति तथा चपलता को भी प्रवृत्त करता है । इसीलिए हमारी पीठ को सीधा रखते हुए सभी काम करते रहने के कारण हमारा स्वास्थ्यवर्धन होता है । लेकिन हमें उसकी आदत नहीं रहती। हमारी पीठ हमारे अनजाने ही यंत्रवत् झुक जाती है । अत: शुरु में थोड़ा समय सीधा बैठने का अभ्यास करते हुए, उससे प्राप्त शक्ति का संपूर्ण दिन में उपयोग करना चाहिए ।

आयुष्कर्म

१. कितने दिनों में एक बार दाढ़ी बनाते हो?

हर दिन दाढ़ी बनाने वाले लोग हैं। वैसे ही १५-२० दिनों के बाद ही दाढ़ी बनाने वाले लोग भी हैं। इसका कारण संबंधित लोगों की वृत्ति-प्रवृत्ति ही है। आधुनिक लोगों का कहना होता है कि हर दिन दाढ़ी करने से जीवकोशिकाएँ, केश आदि सब का साफसुथरे होकर मुँह सुंदर दिखाई देता है।

२. क्षौरकर्म करते समय किन बातों का ध्यान रखते हो?

तिथि, वार, नक्षत्र आदि हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। सहभागी होने योग्य धार्मिक कार्य भी ध्यान में लेने पड़ते है। दिन की पूजा संपन्न करने के वाद भी दाढ़ी/क्षौरकर्म कर लेने वाले लोग हैं। सामान्यत: स्नान करने से पहले दाढ़ी/क्षौरकर्म करते हुए, तुरंत स्नान करना वांछनीय है। रसोई या भोजनकक्ष में दाढ़ी नहीं बनानी चाहिए। अन्यत्र बना सकते हो।

३. क्षौरकर्म करने के लिए दिन देखते हो क्या?

दाढ़ी/क्षौरकर्म करना एक आयुष्कर्म है। बताया गया है कि इससे आयु की वृद्धि होती है। अत: दिन-नक्षत्र आदि देख कर, अनुकूल दिन तय कर लेना चाहिए। आयुर्वर्धन होने के लिए समुचित नक्षत्र वाले दिन ही व शक्तियुक्त दिनों में ही क्षौरकर्म कर लेने का नियमसा बन गया है।

४. किस दिन दाढ़ी/क्षौरकर्म करते/कराते ही नहीं ?

कुछ लोग कुछ वर्जित दिन दाढ़ी/क्षौरकर्म करते/कराते ही नहीं जैसा कि मंगलवार, शनिवार, अमावस, संक्रमण, ग्रहण, व्रत, दीक्षा के दिन, बीमारी में दाढ़ी न करने/कराने वाले लोग हैं । पूर्वजों के श्राद्धादि दिन भी इनमें सम्मिलित हैं । कई लोग कोई सगा या बंधु मृत हुए बगैर एक ही दिन दाढ़ी/हजामत नहीं बना लेते । इस प्रकार के नियमों के कारण नैतिक स्थिरता बढ़ कर मन:शांति प्राप्त होती है ।

५. दाढ़ी/क्षौरकर्म करने के बाद स्नान करते हो क्या ?

हाँ, यह आवश्यक है । दाढ़ी/क्षौरकर्म करने/करा लेने पर हमारे पूरे शरीर के ऊपर (खास कर कंधे, पीठ, सीना आदि पर) कटे बाल गिरते हैं । बिना स्नान के उनको पूरा निकालना संभव नहीं है । स्नान से ही सिर पर गिरे छोटे-छोटे बाल एक ही दम में निकल जाते हैं । अत: वे हमारे ऊपर हो या कपड़ों के ऊपर बार-बार गिरते/झड़ते नहीं । कुछ लोग स्नान के लिए तेल, शिकाकाई का उपयोग करते हैं । इनके कारण और भी अधिक शुचिता संभव हो सकती है ।

६. क्षौरकर्म करा लेने के बाद पहने हुए कपड़े बदलते हो क्या ?

ऐसा करना होशियारी का लक्षण है । क्षौरकर्म के बाल कपड़ों में घुस जाते हैं । बहुतसे बाल गिरने के कारण एक ही बार पूरी सफाई संभव नहीं होती। कार्यालय के कपड़े, पूजा के लिए उपयुक्त कपड़े, नए कपड़े आदि का उपयोग न करते हुए, कोई अन्य कपड़े पहनने से कोई समस्या नहीं होती। आधुनिक लोग जैसे सोने के लिए अलग कपड़े उपयोग करते हैं, वैसेही क्षौरकर्म के लिए भी प्रत्येक कपड़े रखते हैं।

७. शुचिता के लिए क्या करते हो ?

सिर-मुँह को तेल का मर्दन कर स्नान करने की विधा है । उष्ण पानी से स्नान व शिकाकाई चूर्ण परिणामकारी है । क्षौरकर्म के कपड़े पानी में भिगो कर, खंगाल कर, स्वच्छ करना जरूरी है । तुलसी की मिट्टी का लेपन करते हुए नहाना, नदी में स्नान करना अत्यंत प्रशस्त व शास्त्रोक्त भी है । बताया गया है कि स्नानोपरांत शरीर को चंदन का लेपन तथा केशमुंडन के बाद, सिर को गंधलेप लगाना चाहिए । चंदन का लेप घाव की औषधि ही नहीं, वह उष्णताशामक भी है।

अ. क्षौरकर्म किए स्थान से थोड़ा दूर खिसक कर, सिर हिलाते हुए सिर के बाल वेग से कंघी से सीधे-साफ कर लेना ।

आ. छोटे कपड़े की सहायत से सिर, पीठ, कंधों, बाहुओं आदि को हल्के से झटकना।

इ. सिर को तेल लगा कर, शरीर में तैलमर्दन करना । खोपरे का तेल एक अच्छा विषापहारी (Antiseptic) है । खरोंच-घाव होने पर यह एक उत्तम औषधि भी है।

ई. पानी उँडेल कर स्नान करना ।

उ. तुलसी के इर्दगिर्द की मिट्टी में औषधि अंश होने से स्नान के समय उसे लगा लेना चाहिए।

८. क्या नाखून काटते समय कुछ नियमों का पालन करते हो?

यह बताते है कि शाम होने के बाद नाखून नहीं काटना चाहिए। यह भी कहते हैं कि घर के अंदर, उसमें भी बीच वाले तथा पिछवाड़े के कक्ष में कभी भी नहीं काटना चाहिए । जहाँ नीचे गिरे नाखून पर पैर रखना, या उन्हे लाँघना संभव ही नहीं ऐसी जगह ही इस काम के लिए प्रशस्त होती है । साथ ही संक्रमण पर्व, अमावस, मंगलवार, शनिवार, ग्रहण के दिन इसके लिए निषिद्ध हैं ।

९. क्या आपको/आपके घर वालों को यह पता है कि बाल, नाखून आदि सब विषैले होने के कारण इनकी मिलावट खाद्यपदार्थों में नहीं होनी चाहिए?

यह घर के सभी लोगों को विदित होना चाहिए । अत: रसोई घर में तथा उसके समीप केश सँवारना, नाखून काटना अच्छा नहीं है । कंघी करने पर बाल झड़ते हैं, तब उनको उठा कर बाहर फेंक देना चाहिए। नाखून भी घर के बाहर ही काटना अधिक अच्छा है । घर में काटना हो, तो कटे नाखून किसी कागज अथवा अन्य किसी आधार पर ही गिरने की व्यवस्था करें; तत्पश्चात् उनको बाहर फेंकना उचित रहेगा । इसके बारे में घर में सभी को समझाना चाहिए।

१०. क्या आपके ध्यान में आया है कि उपरोक्त सभी प्रश्न स्वच्छता, आरोग्य रक्षा के लिए ही हैं?

हाँ, इन सभी प्रश्नों का उत्तर स्वच्छता ही है । दाढ़ी, क्षौरकर्म, कंघी करना, नाखून काटना इत्यादि सुंदर दिखने के लिए ही करते हैं । स्नान, कपड़े बदलना आदि सब स्वच्छता की दृष्टि से ही हैं । स्वच्छता-स्वास्थ्य के लिए ही खाद्यपदार्थों में बाल-नाखून न पड़े, इसकी सतर्कता बरतनी चाहिए ।

भजन, देशभक्ति गीत

१. **क्या आपको भजन, भावगीत, देशभक्ति गीत, बालगीत के बीच का अंतर मालूम है?**

समग्र, सर्वतोमुखी विकास ही शिक्षा का उद्देश्य व विशेषता है। हमारे चिंतन के अनुसार, शिक्षा याने केवल पाठ-प्रवचन ही नहीं, वह व्यक्तित्व विकास का मार्ग है । केवल एक विषय पढ़ाने के बजाय, जीवन के लिए पूरक अनेक विचार घर में बता देने चाहिए । ईश्वर, सृष्टि, प्रकृति, विधि-विधान, घरेलु काम, खेल, संगीत, नृत्य, कला ऐसे विविध आयामों में उनके मनोविकास का ही प्रयास है । उनमें संगीत भी वैशिष्ट्यपूर्ण है ।

संगीत के भी प्रकार हैं । स्थूल रूप से शास्त्रीय संगीत तथा सुगम संगीत ऐसे दो प्रकार हैं । (अपनी चर्चा केवल भारतीय संगीत तक ही सीमित है) । शास्त्रीय में कर्नाटिक व हिंदुस्थानी ऐसे दो प्रकार हैं । इसके लिए साधना, अध्ययन, गुरु आदि की आवश्यकता होती है । लेकिन गले की शक्ति का उपयोग करते हुए कोई भी सहजता से सुगम संगीत गा सकता है । ऐसे गीत आत्मा व परमात्मा की संतृप्ति के लिए ही होते हैं, न कि किसी दूसरे को संतुष्ठ करने के लिए । अत: यह सुगम संगीत सबके लिए सहज साध्य होता है । उसमें भी अनेक प्रकार है । अब हम एक-एक कर के उन सबका चिंतन करेंगे ।

१. भजन: यह केवल परमात्मा का स्तवन है । यहाँ आत्मा-परमात्मा के बीच सीधा संबंध होता है । भक्ति ही यहाँ का रस है । यहाँ ईश्वर के साथ तन्मयता पाने का अवसर है ।

न केवल नामस्मरण, बल्कि यहाँ उसके स्तवन के रूप में भाषातीत, भाववश होकर भक्ति के परे जाकर, प्रभु की आराधना का क्रम है । यहाँ उसका स्मरण-गुणगान करते हुए, हमें स्वयं को ही भूलना होता है । श्रोताओं पर भी आनंदलहरी बरसाने वाला गीत ही भजन कहलाता है । ये भजन कभी-कभी पागलसे बना कर नचाते भी हैं । कभी-कभी ताल, चुटकी, तबला, ढोल, तालियाँ, अन्य अनेक वाद्यों का भी उपयोग किया जाता है । कुल मिला कर भक्तिरस उत्पन्न करने का सरल साधन है भजन । दासवाङ्मय, वचनसाहित्य, उगाभोग, दोहे, त्रिपदी, चतुष्पदी, चौपाइयाँ, अभंग आदि भजन संगीत में शक्ति भर देते हैं ।

२. *भावगीत:* यह एक भावप्रधानात्मक काव्य रूप है । यहाँ कवि की भावना ही प्रधान है । भजन भक्तिप्रधान होता है, तो यह भावप्रधान होता है । इसे आजकल सुगम संगीत नाम से भी संबोधित करते हैं। कवि की भावना को समझ कर, गायक द्वारा श्रोता को उसका आस्वादन कराने के संगीत का प्रकार है भावगीत । यहाँ वैसे स्तवन कम ही होता है । कवि को जो लगता है, उसे व्यक्त कर सकने वाला राग-तालबद्ध शब्दपुंज है । यहाँ केवल ईश्वर ही विषयवस्तु न होकर, कवि के लिए दुनिया में जिसका भी अस्तित्व है, वे उसके काव्यविषय हो सकते हैं । स्नेह, प्रेम, आदर्श, निसर्ग, गुण, प्रेरणा आदि प्रकट करने वाला काव्य प्रकार यदि भावप्रधान हो, तो वह भावगीत विभाग में समाविष्ठ होता है ।

३. *देशभक्ति गीत:* यहाँ भक्ति ही प्रधान होते हुए भी, इसे आदर्श, प्रेरणा, श्रेष्ठता आदि का स्पर्श भी रहता है । यहाँ देश की श्रेष्ठता के लिए अपना सारसर्वस्व समर्पित हुआ होता है । इसमें देश की महिमा-गरिमा, उपलब्धियाँ, इतिहास, गतवैभव, श्रेष्ठता, उसके विशिष्ट विचार बिंबित होते हैं । देश के महापुरुष, वर्तमान स्थिति, उनके प्रति हमारी आवश्यक भक्ति, श्रद्धा, चिंतन, राष्ट्रकार्य करने की प्रेरणा, देश के लिए जीने वालों का आदर्श – इस प्रकार सभी विषयों-विचारों से ओतप्रोत ऐसे गीतप्रकार के शब्दपुंज होते हैं ये देशभक्ति गीत । कभी-कभी राष्ट्र की समस्याएँ, उनके निवारण-उपायों का उल्लेख भी इसमें होता है । राष्ट्रभक्ति जागरण में गीतों व राष्ट्रभक्ति गीतों का स्थान अनन्य है । क्योंकि, जब भी कोई व्यक्ति भावविभोर होकर गाता है, तब समूचा शरीर रोमांचित होना स्वाभाविक है । वह व्यक्ति आनंदसागर में तैरने लगता है । उसी प्रकार राष्ट्रभक्ति का उद्दीपन करने वाले भक्तिभावपूर्ण गीतों का गायन जब होता है, तब होने वाली अनुभूति अविस्मरणीय होती है । इससे हम श्रेष्ठ वंश के पुत्र हैं, हमें राष्ट्रकार्य करना चाहिए, राष्ट्र के लिए जीना चाहिए, हमारे देश की विशेषताओं को जानना चाहिए, उनके संरक्षण-संवर्धन हेतु मेहनत करनी चाहिए - आदि सभी

विचारों का जागरण होता है । समाज के लिए जीना चाहिए, आवश्यक हो तो राष्ट्र के लिए मरने के लिए भी तैयार रहना चाहिए, ऐसी मानसिकता बढ़ाने का काम केवल राष्ट्रभक्ति गीतों से संभव हो सकता है ।

विचारणीय बात यह है कि मधुर आवाज वाले लोगों द्वारा उसका उपयोग कैसे होता है ? क्या वे अर्थहीन बातें ही बनाते हैं ? अथवा चित्र-विचित्र गाने गाते हैं ? या ईश्वर को अर्पित करते हैं ? या भावातीत होते हैं ? अथवा राष्ट्रकार्य की प्रेरणा प्रदान करने इसका प्रयोग करते हैं ? – इसकी चिंता अवश्य करनी चाहिए । सबके पास ऐसा भाव, बुद्धि होनी चाहिए कि उन्होंने अपने हर कार्य के जरिए कौनसी श्रेष्ठ साधना की है ?

४. लोरी : एक सूक्ष्म कोश कितनी मात्रा में विकसित हो सकता है, इसका मानव शरीर ही एक उदाहरण है । इस प्रकार केवल शरीर मात्र विकसित नहीं होता, उसके साथ बुद्धि, मन, ज्ञान, अनुभव, विवेक – ये सभी भी प्रवर्धमान होते हैं । केवल शिक्षा-संस्कारों से ही ऐसा संवर्धन होता है । अत: बच्चों को हमारी ओर से देनेयोग्य शिक्षा-संस्कारों के बारे में सोचते समय, ऐसे गीतों की भूमिका भी प्रमुख होती है । शिशुओं को पालने (Cradle) में झुलाने के साथ ही गीत गाने की पद्धति है । सामान्यत: ये लोरियाँ जनपद शैली या बोली भाषा के या सरलता से अर्थ लगा सकने वाली होती हैं । कुछ बार पशु-पंछी भी इसमें होते हैं । उदा. गाय के गीत किसी भी तरह के बालक समझ सकते हैं । लेकिन बच्चों के गीतों का कुल उद्देश्य याने शिक्षा-संस्कार, नीति, आदर्श, बुद्धिवर्धन ही होता है, तो कुछ बार केवल मनरंजन । इस तरह ध्यान में लेना होगा कि गीतों में भी चार-छ: प्रकार हैं । माँ की आवाज बच्चों की सुरक्षा सुनिश्चित करती है । माँ कैसे भी गाएं, वह बच्चों को अवश्य ही भाता है । इसीलिए ही माताओं का काम करते समय गाते रहना, यह हमारे जीवन की एक विशेषता है।

२. ऐसा एकाध गाना तो आपको आता है क्या ?

आज के बच्चों तथा युवा-युवतियों को गीत याने केवल फिल्मी गाने ही याद आते हैं। अब तो गीत कहते ही मन में केवल नृत्य अथवा नाचते हुए गाए गए गाने ही सामने आते हैं । लेकिन वास्तव में अनेक लोगों को उत्तम गीतों की संकल्पना ही नहीं होती । इसीलिए हर घर में भी सुबह उठते ही टी.वी. चालू करने के बदले, हमें ही भक्तिगीत गाने चाहिए । प्रात: उठने के परवान् केवल ये भक्तिगीत ही कहना चाहिए, सुनना चाहिए । भजन किसी

भी समय गा सकते हैं । फिर भी, सामान्यत: स्नान करने के बाद व शाम दिया जलाने के संदर्भ में भजन आदि गाना समुचित रहेगा । देशभक्ति गीत सुनने व गाने के लिए समय की कोई भी पाबंदी या नियम नहीं है । लेकिन गाते समय, उससे मन को प्रेरणा मिलनी चाहिए। केवल तभी गाने से परिणाम हो सकता है ।

बच्चों के खेलते समय बालगीत गाने चाहिए । बच्चों को सिखाने की दृष्टि से छोटी–छोटी कहानियाँ गीत के रूप में हों तो, उन्हें देख–देख कर उनका अभिनय करने से बच्चों का मन प्रफुल्लित होता है । इससे हम उनको अपने द्वारा बतायी गयी बात तत्काल सुनने की मानसिक अवस्था में ला सकते हैं । हमारा कथाकथन और गीतरचना सामर्थ्य बढ़ते जाता है । हमारा मन भी प्रफुल्लित होता है ।

इसीलिए हमें इन सब बातों का अभ्यास करना चाहिए । हमारे अभ्यास के द्वारा ही बच्चों को सिखाना सरल होता है । सुनते–सुनते ही वे भी गीत गाने लगते हैं । अत: बड़ों को इस प्रकार के गाने सिखाने का अभ्यास करना चाहिए ।

३. कितनी भाषाओं में ऐसे गीत गा सकते हो ?

भाषा एक भावसंवहन का माध्यम है। भाव प्रकट करने के लिए जरूरी *'शब्दरूपभूयिष्ठ भाषा'* भारत में हजारों भाषा–उपभाषाएँ हैं। भाषा कोई भी होने से क्या फर्क पड़ता है ? वेश कैसा भी हुआ तो क्या ? हम सब हिंदुपुत्र हैं, यह भाव बिंबित करना ही आज की आवश्यकता है । अय्यप्पास्वामी के भजन तमिळ–मलयाळम भाषा में हैं, कन्नड़ में भावगीत तथा तेलगु–मराठी भाषा में अनगिनत भक्तिगीत हैं। यह केवल दक्षिण भारत तक ही सीमित न होकर, सब दूर इसका प्रचार होने योग्य विषय है। हिंदी चौपाइयाँ, दोहे, बघेया, शेरोशायरी सुनना अतीव मधुर होता है। आज हिंदी गीत कहते ही केवल फिल्मी गाने व दृश्ययुक्त आयटम–गीत ही याद आते हैं। हमें यह भी पता चला है कि इन आयटम–गीतों में भी केवल प्रेम–काम भड़काने वाले गाने ही अधिक होते हैं। कुछ बार ऐसे भी उदाहरण देखने को मिलते हैं कि जहाँ चित्रगीतों का साहित्य भी अद्भुत होता है। अत: बिना किसी भाषा बंधन के, सब भाषाओं से सभी प्रकार के प्रेरक गीत स्वीकारने की मानसिकता, अभिप्सा हमारे अंदर आनी चाहिए।

४. गीतों के साथ ही, क्या आपको उनके रचनाकारों की जानकारी भी पता होती है ?

सभी गीतों के कोई न कोई रचनाकार होते ही हैं । कई बार अनेक भी हो सकते हैं ।

लेकिन वास्तविकता यह है कि रचनाकार अवश्य होते हैं। परंतु सामान्यत: हमें इन कवि/रचनाकार के बारे में बहुत कम जानकारी होती है। ध्वनिमुद्रिकाओं या पुस्तक/कविता संग्रहों के द्वारा कवि का नाम प्राप्त करना चाहिए। तत्पश्चात् उस कवि का अंतरंग, उसका जीवन, जन्म आदि के बारे में जानकारी लेनी चाहिए। कुछ बार उस कवि द्वारा उस गीतरचना के पीछे स्थित भाव-भावना समझने के बाद होने वाला अनुभव अद्भुत होता है। उदा. श्रीमति सुभद्रा कुमारी चौहान के खूब लड़ी मर्दानी, वह तो झाँसी वाली रानी थी। इस गीत की कहानी का पता चलते ही आँखें नम हो जाती हैं; बाहुएँ स्फुरण पाती हैं। हिंदी भाषा के जाने-माने कविवर रामधारी सिंह दिनकर, निराला जी, हरिवंश राय बच्चन, अटलजी आदि दिग्गज कवियों की कविताएँ हमारे अंदर कवि-भावना को स्पंदित कर सकती हैं।

५. क्या आपके घर में सब मिल के कभी-कभी गाने गाते हैं?

प्रैक्टिस एँन्ड प्रीच नामक एक अंग्रेजी कहावत है। स्वयं अभ्यास किया तो हम उसके बारे में अन्यों को प्रेरणा दे सकते हैं। संगीत, गानों की बात भी वैसी ही है। घर में गीत गाने वालों को सुन कर, हमें भी गाने का उत्साह मिलना स्वाभाविक है अथवा बाहर से गाना सुनके आकर, घर में भी वही गुनगुनाते रहते हैं। अर्थात्, सब में प्रेरणा अवश्य आती है। लेकिन समयभिन्नता नहीं होनी चाहिए। परंतु कुछ लोग भय या संकोच के मारे गीत गाने में हिचकिचाते हैं। इसीलिए घर में इस तरह की आदत डालने के बारे में विचार कर सकते हैं। हर घर के लिए जैसे कोई देवता गृहदेवता के रूप में रहता है, उसी प्रकार हर घर के लिए गानों, स्तोत्रसमूह का चयन करते हुए, सब लोग उसका गायन करने का निश्चय करते हुए गाते रहना चाहिए। साथ ही यथासंभव दिन, सप्ताह या महीने में एक बार सबको एकत्रित आकर गाने के बारे में सोचना चाहिए। उसी तरह, बच्चों के कारण शांतिभंग होती है, इस धारणा से बच्चों को बाहर भेज कर, नहीं गाना चाहिए। इसके विपरीत, बच्चे सोए हों, तो भी उन्हें गोद में सुला कर ही गायन में सहभागी होना चाहिए। चाहे जो हो, इन गीतों का गायन करते समय कोई भी रुकेगा नहीं, यह बात सबके ध्यान में आने के बाद, उस संदर्भ में बच्चे भी अपने आप चुप होकर, गानों की ओर ध्यान देने लगते हैं।

६. क्या आप बाहर से गायकों को बुला के गवाते हो?

गीत मन को एकाग्र करने का एक शक्तिशाली साधन है। इसीलिए हमारे यहाँ संगीत

को 'वेद' कहा गया है । इससे न केवल नादसमृद्धि होती है, बल्कि, हमारी बुद्धि का समुचित विकास भी होता है। हमारे श्वास-निश्वासों का वर्धन होकर स्वास्थ्य भी बढ़ता है । हमारी एकाग्रता पुष्ठ होती है । इसीलिए सदैव गुनगुनाते रहने से मन प्रफुल्लित होता है । हर दिन के अभ्यास से कुछ लोगों में सहज ही एकतानता आती है । कुछ लोग कूपमंडूक भी होते हैं और कुछ लोगों को और अधिक जानने का कुतूहल हो सकता है । दूसरों का गायन सुनना, यही इसकी औषधि है । इसका पालन चाहे जिस तरह से कर सकते हैं । स्वत: उनके घर जाना अथवा उनको अपने घर बुलाना, यही सबसे अधिक अनुकूल हो सकता है । यह बात अति प्रख्यात अथवा गण्यमान्य गायकों के लिए लागू नहीं है । तथापि अपने अड़ोस-पड़ोस में जो अनेक संगीत के जानकार विद्वान रहते हैं, उनको अपने घर बुलाने का प्रयत्न करना चाहिए । कोई भी सुश्राव्य गीत गा सकते हैं । इसमें संगीत ही अधिक महत्त्वपूर्ण है । इसीलिए किसी न किसी कारण उनको घर बुलाना चाहिए । अपने पड़ोसियों को भी इस कार्यक्रम के लिए अपने घर बुलाइए । उदा. रामनवमी, नृसिंह जयंति, जन्माष्ठमी, गणेशचतुर्थी, दुर्गापूजा, अनंत चतुर्दशी, त्यागराज, पुरंदर, कनकदास आदि संगीतकोविदों के जन्मदिन या आराधना महोत्सवों में अपने पड़ोसियों के साथ इस प्रकार का एक संगीत कार्यक्रम आयोजित करना चाहिए । इससे उनको प्रोत्साहन मिलता है । अपना हृदय-मन दोनों भी विशाल बनाने का अवसर मिलता है । अपनी परंपरा को बलवति करते हुए, आदर्शमय जीवन जीना सरल होता है । उन्हें गौरवादर अर्पित करने से, हमारे बच्चों में सत्संस्कारों का वर्धन होता है ।

७. क्या आपके घर के विशेष कार्यक्रमों में गीतों को स्थान है ?

वर्ष में एक बार घर/कुटुंब/परिवार के सभी सदस्य एकत्रित होने चाहिए । इस प्रकार का एक धार्मिक कार्यक्रम आयोजित करने की अच्छी परंपरा अनेक कुटुंबों में होती है। विवाह, उपनयन आदि कार्यक्रम, तीज-त्योहार, सत्यनारायण पूजा, होम-हवन, जन्मदिन, साधना दिन आदि पर कार्यक्रमों का आयोजन कर सकते हैं । तब घर परिवार के सभी गायक सदस्य भी गा पाएंगे, ऐसा प्रबंध करना चाहिए । कुटुंब के लोग हमेशा एकत्रित न होते होंगे। लेकिन तीज-त्योहार आदि पर्वों पर पड़ोसी मित्र-संबंधियों को आमंत्रित करते हुए, उन सबके साथ न्यूनतम आधा घंटा तो इस तरह का कार्यक्रम करना चाहिए । पहले इसकी व्यवस्था इतनी अच्छी रहती थी अर्थात् देवता की अष्टविध उपचारों से सेवा की जाती थी । उसे अष्टांग सेवा अथवा अष्टावधान सेवा कहा जाता था । उसमें संगीत भी एक प्रकार की सेवा थी । गायकों को केवल अपने गृहदेवता के लिए ही गवाने का आमंत्रण देना चाहिए ।

८. **क्या आपको, आपके परिजनों को जाने-माने गायकों का परिचय है?**

हर व्यक्ति का जीवन मार्गदर्शक ही होता है । क्योंकि, उनके गुण-अवगुणों से हम सबक ले सकते हैं । साधकों की बात ही अलग होती है । वास्तव में वे भी हमारी तरह ही आँख, कान, हाथ, पैर आदि से युक्त होते हैं । पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण व इस जन्म के परिश्रम से उनको उन्नति प्राप्त हुयी होती है । उनके जीवन के अनुभवों से हमें प्रेरणा मिल सकती है । कुछ विषयों में समानता भी हो सकती है । जितने कष्ट उन्होंने उठाए, उतने हमें उठाने नहीं पड़ें हैं – हमें इसका संज्ञान होते ही, हमारा आत्मविश्वास बढ़ सकता है कि हम भी वह प्राप्त कर सकते हैं । उसे परिश्रमपूर्वक हासिल करने की ज़िद्द हमारे अंदर निर्माण हो सकती है । उदा. एस. पी. बालसुब्रह्मण्यम् का जीवन चरित्र, संगीत क्षेत्र में उनके पदार्पण की विधा, पं.भीमसेन जोशी, पं.हजारिका, पी.बी.श्रीनिवास, गंगूबाई हानगल, येसूदास, एम.एस.सुब्बुलक्ष्मी, एम. एल.वसंतकुमारी, पं:जसराज आदि दिग्गजों के जीवन का क्रम अनुसरणीय होता है । इसीलिए गायन के उपरांत, या उनकी समीपता मिलते ही, या उनके जीवन-चरित्र से उनका परिचय कर लेना चाहिए ।

९. **यदि आप स्वयं गायक हों, तो क्या आपने दूसरों के घर में कभी गाया है?**

गायन यह कानों द्वारा होने वाला संस्कार है । देवालयों या भगवान के सानिध्य में गाते समय, मन में प्रभु से निकटता/सायुज्यता पाने का उद्देश्य होता है । उसका स्तवन या अपने व्यक्तित्व विकसन के रूप में संस्कार हो सकते है । दूसरों के घरों में जाने पर गाने का अनुरोध आते ही, अपना अहंकार दूर रखते हुए, लज्जा आदि छोड़ कर, आनंद के साथ गाने की हमारी मानसिकता होनी चाहिए । ***कर्मण्येवाधिकारस्ते*** (केवल कर्म करने के तुम अधिकारी हो) इस उक्ति के अनुसार, केवल सुश्राव्य मधुरता से गाना मात्र हमारा काम होना चाहिए । वह केवल हमारे तथा उनके आनंद एवं कर्णसंस्कारों के लिए ही होता है; होना चाहिए । इन दो कारणों को छोड़ कर, किसी अन्य कारण के लिए गाने की आवश्यकता भी नहीं होती; तथा इन दोनों की अनुपस्थिति में गाने की अनिवार्यता भी नहीं होती ।

दूसरों का घर हुआ तो क्या हुआ ? हमें स्तवन तो करना है उस परमपिता का ही न ? इसीलिए हम कहीं भी जाएं, किसी के भी घर जाएं, यही सद्भाव सदैव हमारे अंदर रहें कि हमें केवल अपने तथा अन्यों के आनंद, कर्णसंस्कार तथा आत्मोन्नति के लिए ही गाना है ।

गोलक

१. क्या आपके घर में गोलक है? कितने हैं? कौन-कौनसे हैं?

हर दिन बचत करने की दृष्टि से जमा की हुयी राशि ही गुल्लक (हुंडी) होती है। यह कुछ घरों में गलतीसुधार दक्षिणा की डिब्बी भी हो सकती है । बचत के उद्देश्य अनेक होते हैं । कुछ लोग आपात् काल के लिए बचत करते हैं, तो अन्य कुछ लोग भविष्य निर्वाह के लिए बचत करते हैं । और भी कुछ लोग दान करने हेतु करते हैं, तो कई और लोग देवालय या किन्हीं सामाजिक कार्यों के लिए गोलक (हुंडी) में धन संग्रहित करते हैं । गोलक याने पैसा संग्रहित करने के लिए तथा उससे निकाल सकने के लिए (निकालना कष्ठसाध्य होता है) निर्धारित एक डिब्बा या कलश आदि होता है । इसके एक जगह में धन डालने की व्यवस्था होती है । शेष सभी भाग बंद होते हैं । वह पूरा भर जाने के बाद, उसे फोड़ कर, उसमें जमा हुआ धन उपरोक्त जिस किसी कार्य के लिए उपयोग/विनियोग करना है, उसके लिए करना चाहिए ।

इससे बचत का स्वभाव पड़ता है; साथ ही अनावश्यक व्यय न करने स्वभाव भी बनता है । प्रौढों द्वारा बच्चों को दिया हुआ पैसा, अथवा दी हुई दक्षिणा, पुरस्कार के रूप में प्राप्त हुए पैसे भविष्य के किसी अनामिक उद्देश्य के लिए रखने का स्वभाव इस गुल्लक की संकल्पना द्वारा सीख सकते हैं । ऐसा होते हुए भी, हमारे घर के गोलक में जमा हुयी राशि का विनियोग समाज के लिए, दान-धर्म के लिए, जहाँ अत्यावश्यक है, वहाँ होता है, तो अच्छा है ।

२. क्या प्रति दिन गुल्लक में न्यूनतम एक मुद्रा तो डालते हो ?

गोलक याने जब पर्याप्त पैसा होता है, तब भर रखने की वस्तु नहीं है । इसके विपरीत, प्रति दिन हमें उसका अभ्यास होना चाहिए । देवालय जाने पर वहाँ थोड़ा-बहुत धन देने के उद्देश्य से भगवान के सम्मुख, शुद्ध, स्वच्छ स्थान पर एक गोलक की स्थापना करते हुए, यथाशक्ति एकाध मुद्रा/रुपया उसमें डालना ही चाहिए । डालनेयोग्य पैसों की न्यूनतम राशि तय क़रते हुए, अत्याधिक का विचार भी न करते हुए, गोलक में धन डालते रहना चाहिए।

३. क्या आप संग्रहित धन का विनियोग उसी उद्देश्य के लिए करते हैं ?

जो भी वस्तु या धन जिस उद्देश्य के लिए होता है, उसका इस्तेमाल उसी उद्देश्य के लिए करना चाहिए । अपरिहार्यता की पराकाष्ठा तक गोलक-स्थापना का जो उद्देश्य था, उसी उद्देश्य के लिए उस धन का विनियोग करना चाहिए । गोलक यदि बचत करने के उद्देश्य से ही स्थापित हुआ है, तो वहाँ पर भी संयम बरतना जरूरी है ।

४. दूसरे उद्देश्य के लिए उसका उपयोग किया हो, तो क्या प्रायश्चित्त करना चाहिए?

त्रृटि का समाधान प्रायश्चित्त से ही होता है । इससे दोष दूर न हुयी तो भी, त्रृटि न करने की बुद्धि हममें जाग जाती है । कुछ लोग गोलक का धन उपयोग में लाने के पश्चात्, उससे निकाले गए धन से भी एक रुपया अधिक दंड के रूप में डालते हैं । कुछ लोग उसमें उससे ५ रुपये, १० रुपये अधिक अथवा उससे दुगुना धन डालते हैं । कुछ लोग शारीरिक दण्ड के रूप में अपने ही गालों पर थप्पड़ मार लेते हैं, मौन आदि के रूप में प्रायश्चित्त कर लेते हैं ।

लिखा-पढ़ी की भाषा : मातृभाषा

१. क्या आपके घर में सब लोग मातृभाषा में ही बोलते हैं?

'भाष्यते इति भाषा ।' भाषा अपौरुषेय है । प्राणियों में भी इसी प्रकार शब्दार्थसूचक ध्वनिसंकेत होते हैं । प्राय: वे ही भाषा के रूप में प्रयोगित होते रहते हैं । लेकिन मानव की भाषा उनसे भी अधिक विपुल, समृद्ध, भावसूचक, सांदर्भिक होती है । आदि काल में मनुष्य केवल अपने प्राणरक्षणार्थ इस भाषा का प्रयोग करता रहा होगा । लेकिन जैसी-जैसी सभ्यता क्रमश: विकसित होती गयी, भाषाएँ भी विकसित हुयीं । नए-नए शब्दों, नयी-नयी सभ्यताओं, संस्कृतियों की उत्पत्ति होती गयीं । इन भाषाओं से संस्कारित बना मानव अनेक लोगों के संपर्क में घुल-मिल जाते हुए, नित्य नया-नया सृजन करता ही गया । उसी प्रकार, क्रमश: अन्यान्य देशों में स्थित जनमनों के आधार पर स्थानीय भाषाएँ विकसित होती गयीं । इस तरह अभिवर्धित भाषाओं का प्रयोग केवल मनुष्य से ही होना चाहिए न? भाषा के कारण ही इसका पता लग सकता है कि अमुक-अमुक लोग अमुक-अमुक सभ्यता से जुड़े हैं । उसीसे यह संभव होता है । अत: अपनी मातृभाषा के बारे में प्यार-अभिमान दोनों उत्पन्न होने चाहिए। उसे बचाते हुए उसकी अभिवृद्धि करना, यह हम सबका कर्तव्य है । वह सब दूर फैलनी चाहिए । उसका प्रारंभ बच्चे की प्रथम पाठशाला में होना चाहिए । अत: घर के सभी सदस्यों को भी अपनी मातृभाषा में ही बोलना चाहिए।

२. **आपको दूसरी कौनसी भाषा विदित है ? बोल सकते हो क्या ?**

मनुष्य समाजजीवी है । अपने आसपास का परिसर, प्रकृति, जनमानस आदि से पृतक जीवन चलाना असंभव है । अत: वह प्रकृति के आसपास के अपने क्षेत्र का परिवीक्षण करते ही रहता है । अनिवार्य रूप में हो, या कुतूहल के कारण, वह उनकी प्रशंसा करते रहता है । अपने जीवन में भी उसे स्थान देता है । ऐसे अनेक विषयों में एक है भाषा की पढ़ाई । मातृभाषा के साथ-साथ अन्य भाषा भी सीखना एक अच्छी बात होती है । इतना ही नहीं, कुछ लोगों को अपने व्यवहार के लिए भी इस भाषा की आवश्यकता होती होगी । अत: बहुभाषी विद्वान होते हैं । वे केवल व्यवहार के लिए ही नहीं, तो उनका अध्ययन करने के लिए भी उन भाषाओं में रचना करने उद्युक्त होते हैं । देश घूमो, कोष पढ़ो इस कहावत के अनुसार अनेक देशों में संचार करते हुए, वहाँ की सभ्यताएँ, भाषाएँ समझ लेनी चाहिए । यदि वह संभव न हो सका, तो अपने घर में तो भाषाएँ सीखने का काम अवश्य होना चाहिए ।

३. **क्या मातृभाषा का तिरस्कार न करते हुए, अधिक भाषाएँ सीखने के लिए प्रोत्साहन देते हो ?**

अपनी सभी वस्तुएँ, कल्पनाएँ, विचारों के बारे में हमें आदर होना चाहिए । उसी प्रकार दूसरों के बारे में अनादर, दुर्भावना, तिरस्कार भी नहीं होना चाहिए । ऐसा कह कर कि कोई अन्य भाषा सुलभ है अथवा किसी अन्य कारणों से कोई दूसरी भाषा अच्छी लगने पर, अपनी मातृभाषा की ओर निरादर भाव से भी न देखें । मातृभाषा याने इस भूमि पर हमने रखे हुए पाँव की भाँति होती है । यदि वह स्थिर रहा, तो ही दूसरा पैर उठा के रखना सुलभ होता है । इसका ध्यान नहीं रखा गया, तो अपना पतन सुनिश्चित है । लेकिन केवल हमारी भाषा ही श्रेष्ठ; उसे छोड़ कर दूसरी भाषा सीखूँगा ही नहीं, प्रयोग भी नहीं करूँगा, इस कथन में भाषा दुरभिमान की दुर्गंध आती है । इसीलिए जो कोई हमारी मातृभाषा जानता है, उसके साथ उसी भाषा में बोलना चाहिए । भाषाओं के बीच शत्रुभाव नहीं, तो स्नेहभाव रहना चाहिए । अत: मातृभाषा के साथ अन्य भाषाएँ भूलना भी नहीं चाहिए, बिना बोले रहना भी नहीं चाहिए ।

४. **क्या दूसरों को ऐसा लगता है कि आपके घर में अंग्रेजी का अनावश्यक आकर्षण है ?**

अपना भारत देश अनेक सदियों तक उपनिवेशवादी प्रशासन के अधीन कराहता रहा । उस मध्य उन्होंने हमारे ऊपर बलात् थोपे गए उनके अनेक शिष्टाचारों ने हम पर प्रभाव डाला ।

उसी प्रकार वे यहाँ से जाने के उपरांत, तो वे सभी आचरण अर्थहीन बन कर, पहले वाले शिष्टाचार लौटने चाहिए थे । लेकिन, हमारी आत्मविस्मृति के कारण, वैसा नहीं हुआ । कुछ उल्टीपुल्टी बातें हमारे यहाँ पहुँच कर, उनका आचरण करना ही हमारे लिए अभिमान की बात बन गयी । इस अवस्था में अंग्रेजी भाषा का महत्व बहुत ही बड़े रूपमें बढ़ गया । यह इतनी मात्रा में हुआ कि हम अपने जन्मदाता माता-पिता को भी विदेशी भाषा में ही संबोधित करने लगे । घर में मातृभाषा का प्रयोग करना पिछड़ेपन का लक्षण माना जाने लगा । अपेक्षा तो है कि ऐसा न हो । अपनी मातृभाषा व मूलगामी चिंतन के बारे में निंदा का नहीं, बल्कि गौरव का भाव होना चाहिए । फिर भी, यदि अपनी भाषा में अंग्रेजी के पर्यायवाची सूक्त शब्द न होने की स्थिति में, अंग्रेजी का प्रयोग करना उपयुक्त हो सकता है । क्योंकि, कुछ अंग्रेजी शब्दों के लिए भारतीय शब्द उपलब्ध न होने की स्थिति हो सकती है । उदा. Motor, Washer, Gasket, Rubber- आदि । इनको व इन जैसे शब्दों को इसी रूप में प्रयोग करना अनुचित नहीं होगा । लेकिन इनके लिए पर्यायवाची शब्दों की खोज करने व सूक्त पारिभाषिक शब्द सुझाने की अन्वेषक बुद्धि भी होनी चाहिए । लेकिन अपनी भारतीय भाषा के ही मूल शब्द होने पर भी, उनका प्रयोग करने में लज्जा अनुभव करना ठीक नहीं है । और अपनी भाषा में शब्द होते हुए भी, उनके प्रयोग के संदर्भ में अंग्रेजी शब्दों का ही प्रयोग करना कितना उचित होगा? एक कहावत के अनुसार, *बातें काल बताती हैं* । हमें अपनी श्रेष्ठ संस्कृति की भाषाओं का ही प्रयोग करना चाहिए, उनका त्याग नहीं करना है । आग्रहपूर्वक अपनी मातृभाषा में ही व्यवहार करना चाहिए, आगंतुकों को अंग्रेजों की भाँति अंग्रेजी आतिथ्य नहीं प्रदान करना चाहिए ।

५. 'आपपर अंग्रेजी का प्रभाव है' ऐसा कहते ही क्या आपको गर्व महसूस होता है? या लज्जा?

''अंग्रेजी प्रभाव'' का अर्थ होता है – अपनी मातृभाषा से अधिक अंग्रेजी भाषा का प्रेम होना तथा प्रयोग करना । अपनी मातृभाषा हमारे लिए अपने पुरखों की भाषा, संस्कृति, परंपरा का श्रेष्ठ आकर, आसरा होती है । अत: वह एक बड़ी शक्ति-संपदा है । लगता है कि उस संपदा के महत्व से अनजान होकर हम उसका तिरस्कार भी कर रहे हैं । यदि वैसा रहा, तो लज्जा से सिर झुकाना चाहिए । पुत्र के नाते माता, मातृभूमि, मातृभाषा का हमेशा ध्यान रखना व सम्मान करना हमारा कर्तव्य है । यह समझ कर, हमें तत्काल अंग्रेजी के मोहक प्रभाव से बाज आना चाहिए।

६. आप कितनी भाषाएँ लिख सकते हैं?

भाषा का उपयोग विविध प्रकार से होता है। बोलीभाषा संपर्क का माध्यम है। उसमें पढ़ाई, लिखाई भी आती है। लेकिन सभी भाषाओं की लिपियाँ नहीं हैं। हमारे देश में बिना लिपि की भाषाएँ ही बहुत हैं। उदा. कोंकणी की लिपि नहीं है। लेकिन वह भाषा समृद्ध है; उसका साहित्य भी है। मलयाळम, कन्नड़, मराठी, गुजराती, हिंदी में उस भाषा का साहित्य निर्माण हो रहा है। कोंकणी साहित्य रोमन लिपि में भी प्रकाशित हुआ है। कोंकणी की तरह ही तुळु, डोग्री, मैथिली भाषाएँ भी स्थानिक लिपियों द्वारा ही अपना साहित्य समृद्ध कर रही हैं। ब्राह्मी, पाली लिपियों की भाँति ही कन्नड़ लिपि का प्रयोग करते हुए, पुरातन प्राकृत भाषा विकसित हुयी है।

इन सबका विवरण प्रस्तुत करने का एक ही उद्देश्य है – भाषा का ज्ञान जितना बढ़ता है, मनुष्य का अनुभव–चिंतन–कल्पनाशक्ति भी बढ़ती है। अत: घर में अधिकाधिक भाषाएँ सीखने का वातावरण बनाना चाहिए। नाना भाषाएँ सुनते–बोलते–पढ़ते–लिंखते हुए संबंधित भाषा का उत्तम साहित्य समझने व साहित्य रचना करने की आकांक्षा बढ़ानी होगी। मातृभाषा के साथ २–३ अन्य भाषाएँ सीख–लिख कर बोलने की क्षमता प्राप्त की तो, हमारा जीवनं सार्थक होता है।

७. क्या बच्चे अधिक भाषाएँ बोल सकें ऐसा करने का आपके पास कोई विशेष विधान है?

मातृभाषा में बोलने का अभ्यास होने के उपरांत, बच्चों को अपने घर के चहुँ ओर निवास करने वाले अन्य भाषी लोगों की बोलचाल में आने वाले शब्दों की पहचान करा के, उनका उच्चार, लेखन करने की प्रेरणा देनी चाहिए। सामान्यत: बच्चे स्वप्रेरणा से ही नए शब्दों को पहचान कर, उनका उच्चार भी करते हैं। तत्पश्चात शब्दपुंज, वाक्य सीख कर, उस भाषा में बोलने का प्रयत्न करते हैं। उन प्रयत्नों में उन्हें प्रौढ़ों का भी समर्थन, प्रोत्साहन व सहायता मिलनी चाहिए। त्रुटि होने पर, उनका उपहास या आलोचना न करते हुए, शुद्ध बोलना सिखाना चाहिए।

इनके साथ ही हिंदी में बोलने के लिए प्रेरित करना चाहिए। अब टी.वी., धारावाही, समाचार, हर तरह के संवाद आदि सुलभता से देख–सुन सकते हैं। अत: हर भारतीय अब हिंदी सीखने की अपनी आकांक्षा की पूर्ति सहज ही कर सकता है।

हमारे भाषाज्ञान के साथ, संस्कृति का ओज-तेज पाने के लिए संस्कृत भाषा का ज्ञान सहायक होता है । व्यक्ति की बातचीत में संस्कृत श्लोक, ध्येयवाक्य, सुभाषित आदि का उल्लेख आते ही, उसके बारे में गौरव उत्पन्न होता है। संस्कृत में ही बोलने वाले, संस्कृत में ही संभाषण करने वाले व्यक्तिओं का आत्मसम्मान भी बढ़ जाता है । इसीलिए घर में संस्कृत में बोलने की अवधि तय करते हुए, उस समय संस्कृत में ही बोलने का प्रयत्न कर सकते हैं।

इस प्रकार अधिक भाषाओं का ज्ञान, विविध भाषाओं के शब्दों की तुलना, भिन्नताओं की समझ, हर भाषा के उत्तम शब्दों का चयन व उपयोग जैसे-जैसे बढ़ते जाता है, व्यक्ति संभाषणचतुर बनता है व नयी भाषाएँ सीखने की जिज्ञासा भी विकसित करता है ।

लेकिन, यह सावधानी बरतना जरूरी है कि चाहे जितनी नईं भाषाएँ सीखने पर भी मातृभाषा में व्यवहार करना कभी नहीं भूलें ।

८. क्या आप/बच्चों को अपनी भाषा के सभी अक्षरों का उच्चारक्रम पता है? वर्णमाला बता सकते हैं?

मातृभूमि की भाँति, मातृभाषा भी आदरणीय है । क्योंकि, शिशु प्रारंभ से ही अपनी मातृभाषा तत्काल सीखता है । भारत के हर राज्य की अपनी-अपनी राज्यभाषा है । अपनी भाषा में कितने मूलाक्षर हैं? इसका ज्ञान होना चाहिए । अपने बच्चे बोलना सीखते समय, हमें उन्हें अपनी भाषा के अक्षरों का उच्चार सिखाना चाहिए ।

९. क्या आप अल्पप्राण-महाप्राण वर्णों का अंतर जानते हैं?

छोटे बच्चों को बोलते अथवा लिखते समय, अल्पप्राण-महाप्राण वर्णों के बीच का अंतर पता नहीं होता । बड़े होने पर अपने आप समझ जाएंगे, ऐसा सोच कर उदासीन न रहें । उदा. 'भारत को बारत', 'घन को गन', 'धन को दन', 'छल को चल' आदि भेद न जानते हुए ही उच्चार करते हैं, तब प्रौढ़ों को चाहिए कि वे उनके सम्मुख खड़े होकर अक्षरप्रयोग की पद्धति का सावधानी से हावभाव के साथ समझा कर, इन्हीं के अनुसार और भी अनेक शब्दों के उच्चार करने व बोलने-लिखने का अभ्यास कराएँ।

१०. क्या घर के सब लोग अक्षर पढ़लिख सकते हैं?

अधिकांश भारतीय भाषाओं में संयुक्त अक्षरों का बहुत महत्व है। इसीलिए सबको अक्षर व संयुक्त अक्षर का अंतर समझना जरूरी है। इस तरह के अंतर भेद पड़ने वाले शब्दों

का संयोग कैसे करना होता है, इसे अवश्य बता देना चाहिए । तभी ज्ञानार्जन के साथ-साथ खेलकूद का आनंद भी मिलता है ।

११. भाषा-उच्चार अच्छा होने के लिए क्या करते हो ?

भाषा उच्चार सही होने के लिए, संस्कृत श्लोक-स्तोत्रों का पाठन अत्युत्तम है । छोटे बच्चों को ऐसे श्लोक मुखोद्गत कराने से भाषा उच्चार अच्छा होता है । इसके अलावा, पादबद्ध कठिन शब्द, संयुक्ताक्षर, अल्पप्राण, महाप्राण युक्त शब्दों की रचना कैसे करते हैं-यह सब बच्चों को समझा दिया तो, पढ़ाई भी खेल बन जाती है और बच्चे भी तत्काल ग्रहण कर सकते हैं । साथ ही उच्चार करते समय बच्चे गलती करें, तो प्रौढ़ों को तत्काल उसे सुधारना चाहिए । वे स्वयं भी स्पष्ठ, सरल ढंग से बोलते रहें, तो बच्चे भी सही शब्दप्रयोग सहजता से सीख सकते हैं।

१२. आपका हस्ताक्षर (Signature) किस भाषा में है ? मातृभाषा ? संस्कृत ? या अंग्रेजी ?

अपनी माता से हम जितना प्यार करते हैं, उतना ही अपनी मातृभूमि व मातृभाषा से करना चाहिए । हमें अपनी भाषा में ही बोलना व लिखना चाहिए । हमारे प्रतिदिन के काम तथा व्यवहार के कागजपत्रों में भी अपनी भाषा का ही प्रयोग करना चाहिए। अपना हस्ताक्षर भी अपनी भाषा में ही होना चाहिए । चाहें, तो देवनागरी में हस्ताक्षर कर सकते हैं ।

१३. क्या आप मातृभाषा अच्छी बोल-लिख सकते हैं ?

बच्चों को प्रारंभ से ही पहले मातृभाषा में ही बोलना-पढ़ना-लिखना सिखाना चाहिए। पश्चात् में अन्य भाषाओं का अभ्यास कराना अच्छा रहता है । घर में दूरभाष पर संभाषण करते समय, अभ्यागत आने पर बच्चों को मातृभाषा या अपनी प्राचीन संस्कृत भाषा का उपयोग करना सिखाना चाहिए । दूरभाष पर 'हरि ॐ', किसी के आगमन पर स्वागतम्, विदाई के समय 'धन्यवाद', 'शुभम्' आदि का प्रयोग करना चाहिए । किसी कारण से भी घर में विदेशी भाषा का प्रयोग न हो, इसकी सीख देनी चाहिए । दैनिक की बोलचाल में गूँथे गए अंग्रेजी शब्दों के स्थान पर अपनी भाषा के समुचित पर्यायवाची शब्द बच्चों को सिखा कर, उन्हीं का उपयोग करने की शिक्षा उनको देनी चाहिए । यदि मातृभाषा पढ़नी नहीं आती, तो अपने आसपास की

संस्कृति को समझ पाना कष्टप्रद बनता है । क्योंकि, संस्कृतिवाचक शब्द केवल अपनी मातृभाषा में ही होते हैं ।

१४. आपके द्वारा पठित पुस्तकों में मातृभाषा की कितनीं हैं ? अंग्रेजी की कितनीं ? अन्य भाषाओं की कितनीं ?

हर लिपियुक्त भाषा में भी साहित्यरचना होती ही रहती है । इसीलिए उसकी साहित्य-संपदा, कला, संस्कृति अपार होती है । अत: हर व्यक्ति को पहले विपुल प्रमाण में अपनी-अपनी मातृभाषा में उपलब्ध साहित्य-संपदा का अर्जन करने के पश्चात् ही, अपनी ज्ञानतृष्णा का शमन करने हेतु, अन्य भाषा अथवा अंग्रेजी भाषा की पुस्तकों का पठन करना उचित रहेग़ा । अपनी प्रत्येक बात निरर्थक व विदेशियों का सब कुछ श्रेष्ठ इस धारणा का त्याग कर; अपना सब कुछ श्रेष्ठ है ऐसा विचार करते हुए; अपनी श्रेष्ठता को पहचान कर; हंस-क्षीर न्यायानुसार, सद्विचारों का ग्रहण करना उचित रहेगा । इस दृष्ठि का अभाव या कमी, जो पराधीनता मनोभाव का द्योतक है, भारत के एक छोटे से समूह तक ही सीमित है ।

१५. क्या आप पत्र लिखते हो ? कितनी भाषाओं में लिख पाते हो ?

अपनी भावनाएँ अपने आत्मीय लोगों के साथ बाँट लेने के माध्यमों में पत्र-व्यवहार भी एक उत्तम उपाय है । जो बातें हम सामने, मुख पर सीधे बता नहीं पातें, ऐसे अनेकों विचार पत्रों द्वारा पहुँचा सकते हैं । अक्षर रूप में अंकित किएं अपने भीतर के सुख-दु:ख, संतोष-पीड़ाएँ आदि सभी वाचकों के मन तक पहुँचा सकते हैं । अत: पत्र-व्यवहार करते रहने की आदत हर व्यक्ति में होनी चाहिए ।

आज के टेलिफोन, फैक्स, विश्वव्यापी आंतरजाल आदि आधुनिक संपर्क-साधनों के आविष्कार के परिणामस्वरूप, पत्र लिखना कम हो गया है । यह सच है कि प्रतिदिन के व्यवहार के लिए, समाचार बताने, शीघ्र काम निपटाने के लिए टेलिफोन व विश्वव्यापी आंतरजाल बहुत उपकारी बने हैं । इस तरह से व्यावहारिक रूप में बहुत अनुकूलकर होने पर भी पत्र लिखते या पढ़ते समय होने वाली आत्मीयता की अनुभूति व आनंद का वर्णन करना संभव नहीं है । पत्रों को एक बार पढ़ने के पश्चात् निकाल के रख कर, फिर से एक बार पढ़ने से आत्मीयता और बढ़ती है । एक बार पढ़ कर, सभी घर वालों को दिखाने से कुतूहल की वृद्धि होती है ।

इसीलिए पत्र लिखने की परिपाटी अच्छी होती है । अधिकांश पत्र मातृभाषा में ही लिखे जाते हैं । लेकिन जिनको पत्र लिखना है, उनको ज्ञात भाषा में लिखना उचित होता है । भारतीय भाषाओं में संबोधन करने की रीति वैविध्यमय होती है । नये-नये शब्दाविष्कार का अवसर होता है ।

कभी-कभी भाषा अलग व लिपि अलग ऐसे पत्र भी हो सकते हैं। संस्कृत भाषा कन्नड़ लिपि, हिंदी भाषा रोमन लिपि आदि होने पर भी आत्मीयता भरे ऐसे प्रयोग व्यक्तियों को बहुत समीप लाते हैं ।

आत्मीय जनों के संग्रहित पत्र अनेक दिनों के पश्चात् पढ़ कर, पुन:प्रत्यय का आनंद पाने का स्वभाव अनेकों का होता है । स्वामी विवेकानंद, पूजनीय श्रीगुरुजी आदि महापुरुषों के पत्र आज भी हजारों लोगों को प्रेरणा देते हैं ।

लिखने वालों की प्रतिभा, अनुभव, व्याप्ति आदि का अनुसरण करते हुए, पत्रों की भाषा, लिपि, विषय आदि के सम्बंध में विविधता बिंबित होती है । इससे न केवल पत्र पाने वाले व्यक्ति, अपितु उनके साथियों को भी स्नेहसिंचन, जीवनोत्साह प्राप्त होता है ।

इसलिए पत्र लिखते रहना चाहिए । विविध भाषाओं में पत्र लिखने की क्षमता विकसित कर लेनी चाहिए । आए पत्रों को चुन कर सुरक्षित रखने चाहिए । बीच-बीच में उन्हें पढ़ते रहने का अपना स्वभाव बनना चाहिए, ऐसी अपेक्षा है ।

१६. क्या मातृभाषा का महत्वपूर्ण साहित्य आपके यहाँ है ? कौन-कौन पढ़ते हो ?

रामायण-महाभारत यह हमारे हिंदू समाज के पवित्र ग्रंथ हैं । ये हमारी सभी भारतीय भाषाओं में उपलब्ध हैं । इनके पठन-मनन से व्यवहार ज्ञान, आस्तिकता, सुसंस्कृति आदि सब कुछ प्राप्त होता है । इसलिए हर हिंदू कुटुंब में रामायण, महाभारत, भागवत, भगवद्गीता, स्वाधीनता संग्रामवीरों के चरित्र, हिंदू धर्म की प्राचीनता का परिचय कराने वाली पुस्तकें आदि होनी चाहिए । घर के हर सदस्य को समय-समय पर उन्हें पढ़ना चाहिए; उनके बारे में चर्चा करनी चाहिए; उनमें प्रस्तुत सिद्धांतों के बारे में जिज्ञासा उत्पन्न होनी चाहिए; साथ ही समाजोद्धारकों, लोकचिंतकों के धर्मग्रंथों, दार्शनिकों की पुस्तकों का संग्रह तथा पठन आवश्यक है । इसलिए मातृभाषा की साहित्य संपदा का परिचय कराने के उद्देश्य से हर कुटुंब में एक छोटासा ग्रंथालय अवश्य रहना चाहिए।

१७. क्या आपके घर में भाषा-सामरस्य का कौतूहल है ?

अपने संविधान की रचना होने के कुछ वर्षों के पश्चात्, हमारे देश में भाषाधारित प्रांतों की रचना की गयी । यह कन्नड़िग, यह तमिळ, यह तेलुगू, यह गुजराती – इस प्रकार सबको प्रांतीय रूप में पहचानना शुरु हो गया । लेकिन वास्तव में हम सब भारतीय हैं, हमारा बंधुत्व भाषातीत है । सभी हिंदुओं के शरीरों में बहने वाला रक्त एक है, धर्म भी एक, नीति भी एक है । ऐसा होते हुए, भाषाधारित विषमता नहीं होनी चाहिए। तमिळ हमारी भगिनी भाषा; तेलुगू यह कन्नड़ भाषा का ही वर्गीकृत रूप है । हिंदी, कोंकणी, मराठी, बंगाली आदि सभी अपनी ही भाषाएँ हैं । अत: हमें सभी भारतीय भाषाएँ मान्य हैं । सभी भाषाओं के प्रति हमारे मन में एक ही आदर-गौरव का भाव हो तथा उनको सीखने की समान जिज्ञासा हो ।

१८. क्या किसीमें तो नयी भाषा सीखने का कौतूहल जगा है ?

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी यह श्रीराम की उक्ति है अर्थात् माता व मातृभूमि दोनों स्वर्ग से भी महान हैं । तद्नुसार, मातृभाषा भी उतनी ही पवित्र है । इसीलिए मातृभाषा का अध्ययन व अध्यापन अवश्य करना चाहिए । हमारे अड़ोस-पड़ोस की भाषाएँ भी हमें लिखनी-पढ़नी आनी/सीखनी चाहिए । इसीके साथ ही हमारी सभी भाषाओं की जननी तथा हमारी साहित्य-संस्कृति की आधारभूमि रही संस्कृत भाषा भी सीखनी चाहिए । उसी तरह विश्व की विविध भाषाएँ सीखने का उत्साह रहना चाहिए । भाषाएँ हमारी दृष्टि का विस्तार करती हैं ।

कौटुंबिक संबंधसूचक शब्द व गोत्र

१. आपको कितने संबंधसूचक शब्द ज्ञात हैं?

अपनी हिंदू संस्कृति की भाषाओं में हर एक संबंध अपनी ही एक अनूठी परिभाषा से युक्त है । शिशु-जन्म के क्षण से ही संबंधों की प्रारंभ होती है । हमारी भाषाओं में निर्दिष्ट संबंधों के लिए अपने ही वैशिष्ट्यपूर्ण शब्द व अर्थ हैं । उन शब्दों के उच्चार मात्र से वह संबंध हमारे ध्यान में आता है । दादा-दादी, नाना-नानी, ताऊ-ताई, माता-पिता, चाचा-चाची, बुआ-फूफा, दद्दू-भैय्या, दीदी-बहन-जीजू, ननद-सालेसाहब, बेटी-जमाई, बेटा-बहु, पोता-पोती, जेठ-जेठानी, देवर-देवरानी आदि शब्द उस बच्चे के साथ रहे संबंधों को दर्शाते हैं । भय्या, दद्दू, बहन, दीदी ये तो खान-पान तथा कपड़े आदि के सहचर; झगड़ा, मारपीट एवं उतने ही प्यार-दुलार की साकार मूर्तियाँ । रोने पर समझा-बुझाने वाली, थकने पर लालन करने वाली, गीत गा कर सुलाने वाली, उसका सर्वस्व याने माता; पिता याने हर बोलचाल में मार्गदर्शक के नाते श्रम उठाने वाला, बच्चों के विकास के लिए कष्ट झेलने वाला श्रमजीवी आप्त । इस प्रकार ये सारे बच्चों के संवर्धन के द्वारा श्रेष्ठ समाज की निर्मिति में सहयोग देने वाले होते हैं ।

२. क्या ऐसा भी है कि शब्द तो हैं; लेकिन उस प्रकार के संबंध नहीं हैं?

परिवारों में कुछ कम संतान वाले तथा कुछ अति संतान वाले; कुछ विभक्त कुटुंब तो कुछ संयुक्त कुटुंब होते हैं । अत: हर एक के लिए सब प्रकार के संबंधियों का होना संभव नहीं है । फिर भी उन गुणवैशिष्ट्यों तथा संबोधन के योग्य व्यक्तियों को इन आत्मीय शब्दों

से संबोधित करने पर ही, ये संबंध व समीपता बलवती होती है । उदा. आयु में हमसे बड़ी लड़की को दीदी व बड़े लड़के को दद्दू कहना वांछनीय है । उसी प्रकार बच्चे आस-पास की महिलाओं को दीदी, बुआ, मौसी तथा पुरुषों को दादा, मामा, चाचा आदि शब्दों से संबोधित करने पर, दोनों घरों के बीच आपसी बांधव्य उत्पन्न होता है । प्रौढ़ों को दादा, दादी, नाना, नानी ऐसा संबोधित किया, तो उनके वात्सल्य का माधुर्य हमें मिलता है । इस प्रकार बड़ों के संबंधों का अर्थ छुटपन में ही बच्चों को समझा कर, सिखाना चाहिए कि वे उन बुजुर्गों को समुचित संबंधसूचक शब्दों से ही संबोधित करते रहें ।

३. बच्चे संबंधों को समझ कर, उल्लेख करते हुए, बोल सकने का वातावरण है क्या?

आज की समाजव्यवस्था में सभी स्त्रियों को ऑन्टी तथा पुरुषों को 'अंकल' कह कर संबोधित करने की प्रथा चल पड़ी है । इससे बच्चों को यही समझ में नहीं आता कि वे अपने किस प्रकार के संबंधी हैं? इसीलिए बच्चों को दूसरों का परिचय कराते समय, अनिवार्य रूप से उनका संबंध समझा कर बताना होगा कि उनको किस शब्द से संबोधित करना चाहिए। यह घर के सभी बड़ों का प्रथम कर्तव्य है ।

४. संबंध सुदृढ़ बनाने के लिए आप क्या करते हो?

अब विभक्त कुटुंब अधिक होने के कारण आपसी संपर्क कम हो रहा है । फिर भी समय व संदर्भ मिलते ही, घर के बड़ों को संबंधियों से मिलते रहना, छुट्टियों के दिनों में उनको अपने घर बुलाना चाहिए । संतोषभरे समाचार होने पर प्रत्यक्ष भेंट करना, संभव हो तो, पत्र लिख कर समाचारों का विनिमय करना, शुभकामना-पत्र भेजना, दूरभाष पर शुभकामना सूचित करना - इस प्रकार संबंधों की निकटता बनायी रखनी होगी । उन पर कोई आपत्ति आते ही, हमें स्वयं वहाँ जाकर उनका धीरज बांधना, अपनी ओर से यथासंभव सहायता करना उचित होता है। इससे उनके साथ आपसी संबंध और समीपी तथा दृढ़ होते है ।

५. क्या आपको आपका गोत्र ज्ञात है? यदि हाँ, तो प्रवर पता है क्या?

अपनी हिंदू संस्कृति में सामान्यत: सभी का कोई न कोई गोत्र होता है । गोत्र का अर्थ है ऋषि-परंपरा । विश्वामित्र, जमदग्नि, भारद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य आदि

गोत्र प्रवर्तक हैं । हिंदू कुटुंब के सभी लोग इनमें से किसी न किसी ऋषि की परंपरा में आते हैं। इस ऋषि परंपरा में, तीन-पाँच-सात तक ऋषियों के नाम उन गोत्रों की परंपरा में आते हैं । इसे प्रवर कहते हैं । इसीलिए हर एक को अपने गोत्र तथा प्रवर की जानकारी अवश्य रहनी चाहिए।

६. गोत्र पता न होने पर, क्या उसे समझने हेतु कोई प्रयत्न किया है ?

हर एक का कोई न कोई गोत्र होता है । किसी कारणवश, अपने गोत्र का पता न हो तथा कहीं पर भी आधार प्राप्त न होता हो, तो उसे कश्यप गोत्र ऐसा समझना चाहिए । क्योंकि, यह समूचा मानवकुल ही कश्यप ब्रह्म की सृष्टि होने के कारण, यह प्रतीति है । इसीलिए गोत्र का पता न होने पर, उनको कश्यप गोत्र का अवलंब करना उचित होगा ।

७. 'हम ऋषियों के वंशज हैं' यह ज्ञात होने पर, क्या हमें गर्व का अनुभव होता है?

ऋषि का अर्थ है ज्ञानी, मंत्रज्ञ, जितेन्द्रियं, तपस्वी, शरणभाव जताने वाला व्यक्ति । हम सब इस ऋषि परंपरा में आते हैं, यह हमारे लिए गर्व की बात है । हर ऋषि अपने ही तपोबल, ज्ञान, वैराग्य आदि की निधिस्वरूप थे । इसीलिए, हमें अपने गोत्र-प्रवर्तक ऋषियों के ध्येय-आदर्शों का अवलंबन करते हुए, उस ऋषि परंपरा को आगे बढ़ाना चाहिए। वह हमारे लिए गौरव की बात है ।

८. अपने गोत्र व ऋषि के बारे में क्या ज्ञात है ?

हम सब के गोत्र-प्रवर्तक ऋषि ही हैं; वे सब अद्भुत तपोनिधि थे। हम हिंदुओं के लिए यह आवश्यक है कि हम उनके बारे में थोड़ी तो जानकारी रखें । वैसा समझने पर, हमें इस वास्तविकता का संज्ञान होता है कि हमारे समाज में सभी स्तरों पर, सब प्रकार के कार्यों में ऋषि कार्यरत थें, हम ऋषि के रूप में ही विकसित हुए हैं । इससे अभिमान बढ़ कर, श्रम ही स्वर्ग है (Dignity of Labour) - का विवेक बिंबित होता है ।

९. सगोत्र विवाह के बारे में आपका मत क्या है ?

गोत्र याने एक गो-समूह । धारणा यह है कि इस गोत्र समूह में समाविष्ट लोग एक ही

परिवार के होते हैं । इसीलिए ऐसी प्रतीति है कि उसी समूह में विवाह उतना श्रेयस्कर नहीं होता। इसके अतिरिक्त अन्यान्य गोत्रों के साथ संबंध बढ़ाने से सामाजिक संपर्क, विविधता, भिन्न संस्कृतियों का मिलन सब कुछ अनुकूल होता है । इसीलिए भिन्न गोत्रों के वीच विवाह संबंध बढ़ाना ही उचित माना गया है ।

१०. क्या सगोत्र विवाह दोषपूर्ण है ऐसा कहने का कोई कारण है?

हमें पता है कि सगोत्र याने एक ही ऋषि-मूल से आए लोग । इस प्रकार एक ही कुटुंब, एक ही मूलस्रोत, एक ही संस्कृति, एक ही परिसर में संवर्धित वधु-वर बंधू-भगिनी बन जाते हैं तथा बंधू-भगिनी का विवाह हानिकर, अनुचित होता है । वैसे संबंधों से उत्पन्न संतति दुर्बल होती है । अत: सगोत्र विवाह को गलत माना गया है ।

घरेलू खेल, कहावतें, मौखिक हिसाब, पहेलियाँ

१. क्या घर में खेल खेल सकते हैं? या नहीं?

खेलों के अनेक प्रकार हैं । कुछ खेल हाथ-पैरों से खेल सकते हैं, तो कुछ और मानसिक, बौद्धिक रीति से खेलने होते हैं । पहला प्रकार शरीर-प्रधान है, तो दूसरा अपने मन-बुद्धि से संबंधित है। इसीलिए कौऩसा खेल कहाँ खेलना है, इसकी चिन्ता/ जानकारी हो तो पर्याप्त है । अत: यह समझ-बूझ कर घर में खेलने पर कोई आपत्ति नहीं है । खेल की वस्तुएँ ऐसी होनी चाहिए, जो घर में यत्र-तत्र जा सकने वाली न हो, उनके कारण दूसरों को कष्ट न पहुँचें; घर की अन्य वस्तुओं को किसी भी प्रकार की हानि न पहुँचें । खेलों से सद्गुणों का निर्माण व उत्तम संबंध विकसित होते हैं । व्यक्ति के अंगांगों पर नियंत्रण, कल्पकता, आकलनशक्ति में भी वृद्धि होती है । सैंकड़ों घरेलु खेल भारतीय समाज जीवन की विशेषता है ।

२. क्या माँ को बच्चों के साथ खेलना चाहिए? या नहीं?

मन का उल्लास ही खेल की प्रमुख उपलब्धि है। घर में सभीके लिए सब प्रकार की व्यवस्था करने वाली उस त्यागमूर्ति को क्या मनोल्लास की जरूरत नहीं होती? अत: माँ के साथ खेलना बिलकुल ही दोषपूर्ण नहीं है । तदनुसार उसके साथ खेलने के कारण, खेलने की विधा, विशेषता, उसमें उसकी दृढता/निपुणता आदि का पता चलता है । साथ ही, इससे उसे भी आनंद मिलता है । इन सबसे अधिक, उसे आनंद, संतोष प्राप्त होता है । यदि वह स्वयं ही जीतती है, तो बच्चे को सहनशीलता से खेल की जानकारी देती है; हारती है, तो बच्चे

की शरण जाकर उसके मन में उल्लास भर देती है । जो भी हो, पुत्रात्/शिष्यात् इच्छेत् पराजयम् (बच्चे/शिष्य के हाथों हमारी पराजय हो) इसी आस को जगाए रखने वाला देश है न अपना ? सच यही है कि माता के साथ खेलते-खेलते ही बच्चे बड़े होते हैं । इससे बच्चों की मर्यादाएँ जान कर, उनको विविध बातें सिखाने में माँ को सहायता ही मिलती है ।

३. कौनसे खेल खेलने चाहिए? कौनसे नहीं ?

मन को संस्कार देने वाले कौनसे भी खेल खेलना दोषपूर्ण नहीं है। खेल में स्पर्धा रहे; लेकिन खेल के पश्चात्, वह स्पर्धा समाप्त हो । यदा कदा वह कोई बुद्धि को प्रेरित करनेवाला (Motivating) खेल रहा, तो खेल के पश्चात् उसके बारे में सोचे जाने पर भी वह स्पर्धा स्वास्थ्यप्रद ही रहनी चाहिए । वह अन्यथा द्वेष उत्पन्न करने वाली न हो । इनके साथ-साथ, घर में पैसे कमाने या स्पर्धा हेतु, बाजी जीतने, एक के बदले दूसरा, जीत के बाद पुरस्कार की आशा से खेल खेलना सर्वथा निषिद्ध होना चाहिए । ये अनेक बार घर वालों पर दीर्घकालीन, प्रगाढ़ परिणाम डालते हैं । ऐसे खेल किसी भी परिस्थिति में नहीं खेलने चाहिए।

४. आपको कितने मुहावरे ज्ञात हैं ?

मुहावरे मनुष्य के अनुभवजन्य बातों का सार-समुच्चय होते हैं । इनको लोकोक्तियाँ, कहावतें ऐसा भी कहा जाता है । ये सारे परंपरागत रीति से आए हुए होते हैं। ऐसा कोई नियम नहीं है कि उनका आविष्कार ही न हो । ये कहावतें कुछ ही शब्दों में कोई सघंन तत्व सूचित करती हैं । इनमें से कुछ व्यंग्य स्वरूप में भी हो सकती हैं । लेकिन इनका अंतिम उद्देश्य मनुष्य की आत्मोन्नति या श्रेष्ठता ही होता है । सोचना होगा कि *'माँ से बढ़ कर देवता नहीं; नमक से बढ़ कर स्वाद नहीं'* इस कहावत में कितने विचार निहित हैं ? उसी तरह, *'जितनी चद्दर, उतने ही पैर पसारो ।'* ऐसे मुहावरों का संग्रह हमारे जीवन के हर स्तर पर होते रहना चाहिए। तब व्यक्ति के अनुभव में भी वृद्धि होती है । उससे हम अपने जीवन के हर आयाम में श्रेष्ठता पा सकते हैं। अत: मुहावरों का अध्ययन और नए-नए मुहावरों का संकलन करना चाहिए । यदि संभव हो, तो उनकी रचना भी करनी चाहिए ।

५. क्या बच्चों को भी सिखाया है ?

इनको स्मरण कराना अति सुलभ है । इसलिए बच्चों को ये सब बहुत शीघ्र बता सकते हैं/देना चाहिए। हर दिन एक मुहावरा इस तरह इनका अभ्यास करा सकते हैं तथा

योग्य प्रसंगों पर उनका प्रयोग करना भी समुचित होगा। एक और बात ध्यान में रखनी होगी, बच्चों में कौतूहल जगाने का यत्न करते हुए, उनकी अभिरुचि को विकसित कर सकते हैं। कभी-कभार उनके बीच अथवा साथ स्पर्धा में उतर कर, उनको इसकी प्रेरणा भी दे सकते हैं कि अत्यधिक कहावतें कैसे उपयोग में ला सकते हैं या उनका संग्रह कैसे करना होता है।

६. क्या नये मुहावरों की रचना करते हो?

ज्ञान याने एक निरंतर प्रवाह की भाँति है । हम निश्चय नहीं कर सकते कि उसका उद्‌गम कहाँ व कैसे होता है? विख्यात कन्नड़ कवि सर्वज्ञ के अनुसार : 'क्या सर्वज्ञ गर्व की उत्पत्ति है? नहीं, सबसे एक-एक उक्ति सीख के । पर्वत ही बन गया सर्वज्ञ' ।। अत: आवश्यकता के अनुसार नये-नये मुहावरों का सृजन कर सकते हैं । 'मंगलसूत्र पहनाने की भी कूली माँगोगे क्या?' यह दहेजविरोधी आवाज देने वाला आधुनिक कन्नड़ भाषा का मुहावरा है । इस तरह निरंतर चिंतन से नई कहावतों का आविष्कार कर सकते हैं ।

७. आपको कितनी पहेलियाँ ज्ञात हैं?

पहेली याने मनुष्य का विवेक विकसित करने वाली प्रश्नार्थक पदावली होती है । बच्चों को या बड़ों को किसी वस्तुविशेष का वर्णन करते हुए बताते हैं । लेकिन उसे प्रश्न के रूप में गूँथ कर, चमत्कारयुत भाषा में जोड़ कर, प्रश्न उठा कर अपने कल्पना-लोक का विस्तार करना एक विशेषता होती है । इस प्रकार पता लगाना, एक बात; दूसरी याने प्रश्न के रूप में उसका चिंतन करना; तीसरी याने उसे चमत्कारयुक्त शब्दों में गूँथना; चौथी याने किसी दूसरे के सम्मुख उसे पूछना । इस प्रकार अपनी बुद्धि-चिंतन की विभिन्न मंजिलों को हम कसौटी पर लगा सकते हैं । इससे अपना मन सदैव चिंतन-लहरियों में ही अवगाहन करता है । यही विकास का लक्षण है । इसीलिए इन पहेलियों का संग्रह करना चाहिए ।

८. आपके बच्चों को कितनी ज्ञात है?

जीवन में हमारे सामने जो कुछ अच्छा या बुरा आता है, वह सब कुछ अपनी संतानों को प्रदान करना ही चाहिए । अच्छी बातों के कारण उनका जीवन और भी अधिक प्रकाशमान होता है, तथा बुरी बातें स्वयं को सदैव जागृत रहने पर बाध्य करती रहेगी । यहाँ

पर भी वैसा ही है। प्रारंभ में उत्तर रूपी वस्तु उनको दिखा कर, उससे संबंधित प्रश्न पूछ सकते हैं । उदा. नारियल दिखाकर, तीन नेत्र है पर शंकर नहीं; शिखा है पर पुजारी नहीं; पानी है पर कुँआ नहीं; तो वह क्या है ? ऐसा जोड़ सकते हैं । इससे और भी अनेक विषय हम उनको समझा सकते हैं । इस प्रकार हम उनकी कल्पनाशक्ति बढ़ा सकते हैं। इससे उनका सामान्यज्ञान व विवेक दोनों की वृद्धि होती है । हिंदी की एक पहेली – ''एक किला, चालीस चोर; शरीर सफेद, मुँह काला।''

९. क्या नयी पहेलियों का सृजन किया है ?

सृजन होता है प्रबल इच्छा शक्ति के कारण । इसलिए विश्व में दिखने वाली हर वस्तु के बारे में प्रश्नों की खोज कर सकते हैं । आकार की तुलना साड़ी के साथ करना, नक्षत्रों को लोक मानना यह कवि की सृजनशीलता ही होती है । उसी प्रकार हम भी सर्जन कर सकते हैं; प्रेरणा दे सकते हैं । उदा. उस नारियल के बारे में बताते हुए, 'भूरा पथरीला किला, श्वेत मोतियों का किला; निचले जलाशय का पानी पीने वाले को ही स्वास्थ्य का ऐश्वर्य मिलता है ।' ऐसी चमत्कृतियुक्त कल्पना करते हुए पूछ सकते हैं । कभी–कभी प्रारंभ में बचकाना लगा, तो भी हम यह देख सकते हैं कि जैसे–जैसे आगे बढ़ते जाते हैं, वैसे वह श्रेष्ठ बनते जाता है ।

१०. क्या आपको मौखिक लेखा ज्ञात है ?

भारत का गणितीय ज्ञान सबसे आगे है । पढ़ाई में वह सीधी तौर पर प्रकट नहीं हुआ, तो भी सामान्यत: ९९% लोग व्यवहार में गणित अच्छा जानते हैं । इसका कारण है मौखिक लेखा। बचपन की प्रारंभ में आँकड़ों को मौखिक रूप से गीतों के द्वारा बताना, जैसा 'एक–दो, बुरी आदत छोड़ दो...' आदि । आगे पहाड़े आदि कहलवाना, उसके बाद संख्याएँ आगे–पीछे करके बताना । घर में बाजार से वस्तुएँ क्रय कर लाते समय, लेखा करना: यह सब बता दिया जाता है; अभ्यास कराया जाता है ।

११. नये सिरे से कितना सीखा है ?

लेखा याने मूलत: जोड़ना, घटाना, गुणाकार व भागाकार ही हैं। फिर भी, मौखिक लेखा में इन चारों सामान्य नियमों के अतिरिक्त व्यावहारिक ज्ञान का भी उपयोग होना चाहिए।

उदा एक पेड़ पर सौ कौवे बैठे हैं । बंदूक से एक गोली पसाई । एक कौवा नीचे गिर गया। तो पेड़ पर कितने बचे ? इस प्रश्न का ९९ ऐसा उत्तर दिया, तो वह अशुद्ध होगा । एक भी नहीं यही सही व्यावहारिक उत्तर है । इसको ज्ञानमय हिसाब कहते हैं । ज्ञानमय हिसाबों का कोई अंत ही नहीं है। पत्रिकाओं में ऐसे प्रश्न आते ही रहते हैं । ऐसे लेखा सीखने वालों की बुद्धि तीक्ष्ण होती है; वैसे ही वे जनप्रिय भी होते हैं । इस प्रकार, नये ज्ञानमय लेखा सीखने की जिज्ञासा विकसित कर लेने वालों का तारुण्य चिरस्थायी होता है ।

१२. क्या लेखा बताने के लिए बच्चों को प्रोत्साहित किया जाता है ?

इन लेखों का अध्ययन करने के पश्चात् हमें बच्चों को बताने की प्रक्रिया आगे रखनी चाहिए । उनको समयबद्ध लेखा, पैसों से संबंधित लेखा बता देना चाहिए । दिनों का लेखा करना, दुकानों का व्यवहार आदि बताना चाहिए । हर दिन कुछ समय, बच्चों को विविध प्रकार के हिसाब तैयार करते हुए, उनका उत्तर देने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए ।

१३. मुहावरे–पहेलियाँ–ज्ञानमय हिसाबों के ज्ञाता आपके घर आवें, ऐसा आप करते हो क्या ?

हमारी संस्कृति याने एक निरंतर बहता प्रवाह है । हर व्यक्ति किसी न किसी क्षेत्र में साधना करते आया है, कर रहा है । उनको खोजने की दृष्ठि मात्र चाहिए । विश्व में अनेक लोगों को मुहावरे, पहेलियाँ आदि प्रवाह के रूप में बहती रहती हैं । वैसे लोगों को घर बुला के लाने से हमें (याने बड़ों को) वरिष्ठों का परिचय, मध्य आयु वालों व युवकों को एक उदाहरण व आदर्श मिलता है । बच्चों को एक प्रेरणा तथा स्वयं वैसे ही बनने का एक ध्येय मिलता है । अत: इन क्षेत्रों में परिश्रम करते आए लोगों को अपने घर आने का न्योता देकर, बच्चों से साक्षात्कार कराया गया, तो उनको नया प्रकाश मिलेगा और हमारा अहंदमन, अतिथिसत्कार का भाग्य व नवागतों का परिचय होता है ।

इस प्रकार आपसी परिचय से बच्चों की समष्ठि में स्वयं भी जुड़ने तथा सबके साथ घुलमिल जाने का भाव, कूपमंडूक वृत्ति का निवारण आदि सब बातें प्राप्त की जा सकतीं हैं।

गृह कार्य (होम वर्क)

१. विद्यालय में गृहकार्य बच्चों को देते हैं? या माताओं को?

अध्यापक द्वारा बच्चों को दिए जाने वाले होम वर्क का उद्देश्य यही होता है कि बच्चे घर आने के पश्चात् शाला में पढ़ाए पाठ को न भूल जायें और उनका पुन: अभ्यास करें । इससे अभिभावकों को भी यह पता चलता है कि शाला में कौनसे पाठ-प्रवचन आदि किए गए थे? तब वे बच्चों को उस पाठ के विविध प्रयोगों का पुनरध्ययन करा के उनका ज्ञान संवर्धित कर सकते हैं । लेकिन, इसमें माँ की भूमिका गौण रहनी चाहिए । माता का मुख्य उद्देश्य बच्चों में संस्कारप्रद विचार बढ़ाने का ही होना चाहिए । अन्यथा, गृहकार्य के कारण बच्चों में माँ के बारे में द्वेष भाव उत्पन्न न हो, इसकी सावधानी बरतनी चाहिए ।

२. माता ने नहीं किया, तो क्या हानि हो सकती है?

शाला में सामूहिक रीति से अध्यापकों द्वारा कराया पाठ बच्चा सही रूप में समझ नहीं पाता हो । शाला में अध्यापक को सभी बच्चों का ध्यान आकर्षित करना कष्टसाध्य है। अत: माता को बच्चे के सामने बैठ कर, अनबुझे पाठ का पुन: पुन: विवरण देने से बच्चा अच्छा समझ सकता है । इस प्रकार बचपन में माता के द्वारा अभ्यास करने वाला बच्चा अति शीघ्र ग्रहणशक्ति पा सकता है । माताओं ने नहीं किया, तो कुछ नहीं बिगड़ेगा । बच्चे स्वयं श्रमपूर्वक सीखेंगे ही ।

३. माताएँ कितने वर्ष गृहकार्य कर पाएंगी?

सदा काल संभव नहीं है । बच्चें ७-८ वर्ष के होने पर शाला में सीखा पाठ स्वयं ही समझ सकने का सामर्थ्य पाते हैं व अभ्यास में एकाग्रता आ जाती है । तदुपरांत, माता बच्चे को स्वतंत्र रूप से अभ्यास करने छोड़ सकती है । लेकिन उसके पश्चात्, भी यही करते रहना बच्चे व माता दोनों के लिए कष्टकर होगा । विशेष कर, ऐसे छात्र उच्च विद्यालय में अध्ययन करने के संदर्भ में तो, वह बहुत ही कष्टप्रद होता है।

४. क्या शाला का पाठ घर में पुनः कराने से बच्चे को कष्ठ नहीं होगा?

शाला जाकर आने के पहले बच्चे माता पर ही अधिक निर्भर रहते हैं । तब माँ अपने कामों से समय निकाल कर बच्चे के सभी प्रश्न, समस्याएं शांति से सुन कर, प्यार से, हँसते-खेलते, कभी-कभी बच्चों के पाठ-प्रवचन के रूप में भी सहायक होती है, तो माँ-बच्चों के संबंध बड़े मधुर बने रहते हैं । वैसे न होकर, शाला से आते ही घर में भी वही पाठ माता भी कराने लगेगी, तो बच्चों में माँ के प्रति द्वेष भाव जगने की संभावना रहती है अथवा यदि उनके खेल-कूद, पाठ, विनोद-विहार को ही प्रमुख मान कर, माँ ने बच्चों की ओर दुर्लक्ष किया, तो बच्चे बुद्धू होकर उनका भविष्य बिगड हो सकता है । इसीलिए माता प्रथम बच्चों की मित्र बनें, गुरु बनें और बच्चों को आगे बढ़ाए ।

५. बच्चों के शेष विकास की ओर कौन ध्यान देते हैं?

बच्चों के भविष्यनिर्माण कार्य में माता की भूमिका प्रमुख होती है। साथ ही उसमें पिता, वरिष्ठ गुरु भी पूरक शक्ति बनते हैं; बनना चाहिए। प्रसिद्ध पुरुषों के बचपन में माता-पिता-वरिष्ठ-अध्यापक आदि सब उनके मार्गदर्शक थें । इसीलिए बच्चे का गढ़न करने का काम केवल माता का है, यह धारणा न रखते हुए; पिता को भी बच्चे की आवश्यकताएँ, समस्याएँ आदि स्वयं समझ कर, उनकी पूर्ति तथा निवारण करना चाहिए। साथ ही, बच्चे के आचार-विचार कैसे हैं? इसका निरीक्षण करते हुए सत्यवचन, आज्ञापालन, विनम्रता, सामाजिक प्रज्ञा आदि बातें उसे सोदाहरण समझा देना, यह माता-पिता व अध्यापकों का प्रथम कर्तव्य ही है ।

६. खेल, पाठ, स्नेह, बंधुप्रेम, गुणग्रहण, अतिथिसत्कार आदि बातें उन्हें कौन सिखाता है ?

बच्चे माता-पिता की रीति-नीति, उक्ति-कृति आदि देख कर, उसीके अनुसार ही आचरण करते हैं । इसीलिए बच्चों के सामने माता-पिता को अपना स्वयं का अच्छा आदर्श प्रस्तुत करने का प्रयास करना चाहिए । पिता को चाहिए कि वह बच्चों के साथ ख़ेलकूद, पाठ आदि में थोड़ा समय बिताते रहें । इससे पिता-पुत्र का संबंध गाढ़ा होता है । सोते समय कहानी सुनाना, शाला में घटित घटनाएँ बच्चों से सुन कर आनंदित होना, बच्चों में अपने आप्त-बंधुओं के साथ सख्यभाव बढ़ाना, अपने सहपाठियों का गुणग्रहण करने की प्रेरणा उनमें जगाना, किसी को भी दूषण न देते हुए वास्तविकता को समझाना - यह पिता व वरिष्ठों का कर्तव्य है । घर आए अतिथियों का सम्मान करते पिता को देख कर, बच्चे स्वयं भी उसका अनुसरण करते हैं ।

७. आपके माता-पिता द्वारा सिखायी आस्था आदि बातें बच्चों को कब सिखानी होती है ? सिखाएगा कौन ? कहाँ ?

हमारी हिंदू आस्था आदि सभी बातें वैज्ञानिक-वैचारिक-सैद्धांतिक आधार पर ही साकार हुई हैं । वैसे वे पीढ़ियों से पीढ़ियों तक चलते आयी है। इस प्रकार विकसित हुयी आस्था, बोल-चाल ही हमारी संस्कृति को प्रतिबिंबित करती हैं । ऐसी आस्था के बलपर ही हमारी संस्कृति दृढ़ता से टिकी है। कालौघ में विदेशी सभ्यताओं के आक्रमण, अनुसरण आदि के कारण हमारी युवा पीढ़ी में यह धारणा उभर रही है कि हमारी आस्था-आचरण सभी अंधश्रद्धा से पूरित होकर मूल्यरहित हो गए हैं । यह बताते हुए दुख होता है कि बड़े-वरिष्टों का अनादर ही इसका प्रमुख कारण है। हमें पहले अपने माता-पिता व वरिष्टों से समझे बोल-चाल, आस्था के गहन आशय को समग्रता से समझना चाहिए । बाद में उनको सुयोग्य समय पर, बच्चों की समझ में आए इस रीति से, धीरज के साथ समझाना चाहिए । सबके सामने उनके द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्नों को हवाई उत्तर देना हो, या उद्धट कहीं का, बकवास मत कर, जितना बताता हूँ उतना सुन, ज्यादा होशियारी मत दिखा ऐसा डरा-धमका कर उसके कौतूहल पर पानी नहीं फेरना चाहिए । हमें जो पता है, वही उसे समझाना होगा । यदि हमें भी ज्ञात नहीं हो, तो हमसे भी अधिक अनुभवी लोगों का संपर्क करते हुए, उनसे जानकारी प्राप्त कर बच्चों को समझाना चाहिए । विशेष कर ईश्वर, यज्ञ-याग, गुरु, संत, तीज-त्योहार,

विभिन्न आचरण आदि के सम्बंध में बच्चों को समझाने हेतु माता-पिता को चाहिए कि वे

अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करते रहें। इस दिशा में शाला-कॉलेजों के अध्यापक भी सहायता कर सकते हैं। क्योंकि, बच्चों को अध्यापकों का उपदेश भी अच्छा मार्गदर्शन दे सकता है।

८. क्या हमें अपने घर की क्रमबद्धता, स्वच्छता व जीवनक्रम के सम्बंध में अभिमान है?

घर की सुनियोजित शोभा, घर के प्रमुख का चाल-चलन, घर वालों की बोल-चाल आदि बातें घर की संस्कृति को बिंबित करती हैं? ***'जिह्वा कुलीनता बताती है'*** इस कहावत के अनुसार, घर वालों का नय-विनय, रीति-नीति, समृद्धि आदि बातें घर की संपन्न संस्कृति के द्योतक हैं। सुबह बुहार कर, रंगोली डाले हुए घर का अग्रभाग, देहलीज को सुशोभित करने वाली हल्दी-कुंकुम, गृहांतर्गत भक्तिगीत, मंत्र, जप, देवपूजन आदि सारी बातें घर की शोभा बढ़ाती हैं। इसीलिए घर के सबको घर का अभिमान होने लगता है।

९. क्या घर के सब लोग इसके सम्बंध में सोचते हैं?

कुटुंब याने घर के सभी सदस्य भी अन्योन्य पारस्परिक संबंध, सदभिरुचि, समरसता से युक्त होने चाहिए। उसके बदले एक पूरब तो दूसरा पश्चिम, ऐसा रहा, तो वह परिवार अच्छा नहीं हो सकता। सभी लोग एकमुखी होकर चिंतन करने पर ही सुखी कुटुंब संभव होता है। सहचिंतन ही उत्तम कुटुंब का लक्षण है।

१०. क्या सभी की सोच ऐसी है कि घर सदैव संतोषभरा हो?

कोई भी घर तभी संतोषभरा हो सकता है, जब घर के हर व्यक्ति की आवश्यकताए, इच्छा-अनिच्छा सब कुछ पूर्ण करने हेतु सभी लोग तैयार होते हैं; दूसरों का सुख-दुःख न बाँटने वाले और सदा केवल अपने में ही सीमित रहने वाले व्यक्ति घर की संतृप्ति को नष्ठ करते हैं।

११. क्या काम करते समय आपस में एक-दूसरे की सहायता करते हैं?

अपनी हिंदू जीवनपद्धति में कोई भी काम करते समय, सबका सहयोग अवश्यक होता है। यही बात देवपूजा आदि करते समय भी सर्वेषां अविरोधेन पूजाकर्म समारभेत् (किसीका विरोध न करते हुए, पूजाकर्म आरंभ कर रहा हूँ) ऐसा कह कर ही आगे बढ़ते हैं।

उसी प्रकार हर धर्मकार्य में, दान देते समय भी, सबसे स्वीकारसूचक अर्घ्य दिया जाता है । इसके अतिरिक्त, लौकिक, कौटुंबिक कार्यों में भी पुरुष को भी रसोई आदि घर के कामों में अपनी पत्नी की सहायता करना, स्त्रियों द्वारा पुरुषों के व्यवहारों में सहाय्य करना, बच्चों द्वारा प्रौढ़ों-वृद्धों की सेवा करना, वरिष्ठ द्वारा घर के छोटे सदस्यों को उचित मार्गदर्शन देते रहना चाहिए ।

१२. क्या सब मिल कर गृह-स्वामिनि की सहायता करते हैं?

घर के अधिकतम कामों का तनाव घर की गृहिणी को ही झेलना पड़ता है । इसीसे घर की गृहिणी की थकान अवश्य बढ़ती है । किन्तु घर के सभी सदस्य उसके कामों में थोड़ी-थोड़ी सहायता करते रहें, तो गृहिणी का तनाव अपने आप कम होता है । यदि पुरुष-बच्चे अपना-अपना काम स्वयं ही कर लेते हैं, तो गृहिणी के कार्य का भार अवश्य ही हल्का होता है ।

सी.डी., पत्रिकाएँ

१. **क्या आपके घर में संगणक है? उसमें 'क्या करना है? क्या नहीं?' – इसकी चर्चा करके क्या कुछ तय किया गया है? क्या उससे अपना स्वभाव निगड न जाएं इसकी सतर्कता बरती गयी है?**

आज संगणक (कम्प्यूटर) अनिवार्य बन गया है । पहले वह कुछ लोगों के लिए प्रतिष्ठा का विषय बना था । उसकी स्मरणशक्ति व गति के कारण अधिकांश लोग उसकी अपेक्षा भी करते हैं । पहले स्मरण व गति की शक्ति मनुष्य में ही थी । लेकिन आज परिवर्तित हुयी परिस्थिति में वे दोनों नष्ठप्रायसी हुई है । यह संगणकीय स्मरणशक्ति व गति किस लिए हैं? ऐसा प्रश्न उठाने पर, अनेकों के पास उसका समुचित उत्तर नहीं है। हर एक के जीवन का एक लक्ष्य होना चाहिए । वह लक्ष्य उच्च, उदात्त होना चाहिए; सबके लिए अनुकूल होना चाहिए तथा वह शाश्वत की ओर ले जाने वाला होना चाहिए । अत: इस दृष्ठि से संगणक का उपयोग कैसे करना है? इसके बारे में सोचना अत्यंत आवश्यक है । क्या उस गति, व स्मरण की अमोघ शक्तियाँ मनुष्य की उन्नति तथा, समस्त मानव कुल के हितार्थ है? या सबका विनाश, अध:पतन, अवनति करने के लिए है? – इसके बारे में सोचना होगा । यह संगणक आवश्यक व अनावश्यक सब कुछ – स्मृति में रख लेता है । अब विश्व अंतर्जाल के उपयोग से अपने घर बैठे–बैठे ही दुनिया के 'सब' विचार समझ सकते हैं । उनका सदुपयोग करना सबके ऊपर निर्भर है । अत: हमें अब सोचना चाहिए कि अपने संगणक में संस्कार, ज्ञान, शिक्षण, आनंद, उल्लास, प्रेरणा, चिंतन आदि आत्मसात करने के विचार रहने चाहिए या अश्लील, अयोग्य,

अप्रयोजनकारी, अनैतिक, असंवैधानिक, संस्कारहीन, उद्वेग, भय, काम आदि विकारों को उत्तेजित करने वाले चिंतनों/कार्यक्रमों का संग्रह हमें करना है? इसीलिए संगणक के बारे में पालने योग्य सावधानियाँ क्या हों? – यह पहला चिंतनबिंदु बनना चाहिए । हमें ऐसा जीवन बिताना होगा कि वह हमारा स्वभाव न बन जाएं। उसकी आवश्यकता अपने घर की अनिवार्यता नहीं बननी चाहिए ।

★ बिना कामकाजी विचारों की चर्चा को वहाँ स्थान न हो ।

★ उसमें दिखाई/सुनाई देने वाले दृश्य संस्कारक्षम ही हों ।

★ केवल सिनेमा, खेल, प्रयोजनहीन, संस्कारशून्य श्रवण-दर्शन करने का स्वभाव परिपोषित करना उचित नहीं है । घर के शेष लोगों को पता न चल सके, ऐसे विषय नहीं देखना/सुनना चाहिए ।

★ इन सभी पथ्यों का स्वीकार किया तो अपना मन भी प्रफुल्लित होकर उससे अनुकूलता, आनंद आदि प्राप्त कर सकते हैं ।

२. क्या आपके घर में सी.डी. है? किस विषय की?

आज संगणक (Computer) तथा डीवीडी प्लेयर सबके घरों में दिखायी देने वाली सामान्य वस्तुएँ बन गयी हैं ।उनकी कुछ सांद्र मुद्रिकाएँ (Compact Disk) होती हैं । केवल होना ही महत्व का नहीं है। बल्कि, यह सोचना उचित होगा कि उनकी विषयवस्तु कैसी है? हमें इसकी सतर्कता बरतनी होगी कि वे केवल मनोरंजक ही नहीं,संस्कारक्षम भी होनी चाहिए।

३. क्या उसे कभी-कभी अल्प समय के लिए तो देखते हो?

अपने घर में संगणक (Computer) व डीवीडी प्लेयर केवल आडंबर के लिए नहीं होना चाहिए । बल्कि, यह सोचकर उनको क्रय करना चाहिए कि हमें उनका निश्चित उपयोग क्या है? अनेक घरों में लाई हुई इन चीजों, अनेक प्रकार की सांद्र मुद्रिकाओं का उपयोग प्रारंभ के कुछ दिन ही किया जाता है । कालान्तर में वे किसी कोने में पड़ी रहती हैं। इसीलिए लाने के पहले ही इन सब बातों का विचार करते हुए, सोच-समझ कर समय-समय पर उनका उपयोग करते रहना चाहिए ।

४. क्या उनके बारे में किसीको तो बताते हो? देखने के लिए देते हो?

स्वत: के ही होते हुए भी, उनका उपयोग सबके लिए होना चाहिए । सबको संस्कार हो, यही अपना उद्‌देश्य होने के कारण अच्छी सांद्र मुद्रिकाओं का परिचय सबको करा कर, उनमें व्यक्त अच्छी बातों की चर्चा समय-समय पर सब के साथ करनी चाहिए । यही नहीं, दूसरे भी उसे देख/सुन कर आनंद प्राप्त करें, ऐसी भावना होनी चाहिए ।

५. वीडियो/ऑडियो कैसेट है क्या? तुम्हें क्या भाता है?

सीडी याने वह श्रव्य भी हो सकती है व दृश्य भी । उसी तरह ध्वनिमुद्रिकाएँ, दृश्यमुद्रिकाएँ भी हो सकती हैं । हमें पता होना चाहिए कि उनमें से हमें भाने वाली मुद्रिकाएँ किस कारण भाती हैं? हमें बच्चों-बूढ़ों को समान रूप से संतोष-प्रेरणा देने वाले गीत-दृश्यों से युक्त मुद्रिकाओं का संग्रह करना चाहिए ।

६. क्या समय-समय पर उनका उपयोग करते हो?

उनमें से जो हमें अधिक भाता है, उसका समय-समय पर उपयोग करते रहना तथा उनसे प्राप्त प्रेरणा को जागृत रखना चाहिए । उसे अपने मित्र, सुहृद, संबंधियों को दिखा कर उनके साथ आनंद लेते हुए, अपने मन के एक और स्तर का दर्शन कराना चाहिए । इसीलिए एक अंग्रेजी कहावत है: Show me your friends, I shall tell who you are. (मुझे अपने मित्र दिखाइए, मैं बताऊँगा कि तुम कैसे व्यक्ति हो?)

७. क्या उनके बारे में किसीको बताते हो? क्या उन्हें दूसरों को देकर दिखाते हो?

वे अपने स्वयं की हो, तो भी उसका उपयोग सभी को होना चाहिए । 'सबको संस्कार हो' यही अपना उद्‌देश्य होने के कारण, अच्छी ध्वनिमुद्रिकाओं का परिचय सबको कराते हुए, उनमें स्थित अच्छी बातों पर सबके साथ चर्चा करनी चाहिए । इतना मात्र नहीं, हमारी यह भावना होनी चाहिए कि उसे देख कर वे भी आनंदित हों ।

८. क्या आपका घर उत्तम सीडी कैसेटों के केंद्र के रूप में उत्तम अभिरुचि बढ़ा सकता है?

आजकल संपदा अर्जित करना ही कुछ लोगों का ध्येय बन गया है । लेकिन संपत्ति

केवल धन–जमीन–घर के रूप में ही हो, ऐसा लगना ही शोकान्तिका बन गई है । क्योंकि, सद्गुणों का परिपोष करने वाली सभी अच्छी बातें भी अपनी वास्तविक संपदा ही होती हैं । हमारे प्रयत्न ऐसे होने चाहिए कि अपना घर भी इस तरह की विद्युत्तिकीय उपकरणों से युक्त एक उत्तम केंद्र हो । सबको हमारे घर की इस संपदा का गर्व भी होना चाहिए । प्रफुल्लता के भाव बिंबित करने के यत्न करने चाहिए ।

९. आपके घर आने वाली नियतकालिक पत्र–पत्रिकाएँ राजनीतिप्रधान हैं या सामाजिक ?

साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक आदि कोई भी नियतकालिक (Periodicals) हो सकते हैं । लेकिन ध्यान देने योग्य बात यह हो कि उनके अंदर का उद्देश्य समाज, संस्कृति को प्रकाशमान करने वाला है या विघटनकारी ? राजनीति समाज को तोड़ती है, तो संस्कृति समाज को जोड़ती है । इसीलिए हमें केवल राजनैतिक रंग जमाते हुए बोलने वाले नियतकालिक नहीं, तो समाज को जोड़ने वाली पत्रिकाएँ लेनी चाहिए।

१०. क्या उनका क्रम से संग्रह करते हो ?

क्रम से जोड़ कर उनको उचित स्थान पर संग्रहित करके रखना चाहिए । उनको इस प्रकार जोड़ के रखना चाहिए कि जब किसी विशेष विषय या दिनांक का अंक देखना चाहते हैं, तो वह तत्काल मिल जाये।

११. क्या आपके मित्रों में से कोई तो उनको देखता है ? क्या आप उनको पढ़ने की प्रेरणा देते हो ?

सभी आगंतुकों के सम्मुख प्रदर्शन करने के बजाय, हमें इसका विवेक अपने मन में सदा धारण करना होगा कि वे भी अच्छे विषयों को समझें । वे जब समय पाकर हमारे घर आते हैं, तब इस प्रकार विचार विनिमय करना चाहिए कि एक अच्छा विषय मैंने पढ़ा है, तुम्हें दिखाने की इच्छा हुयी ।

१२. क्या आप सभी अच्छे लेखों को अलग से संभाल कर रखते हो ?

यह एक अच्छी बात है । हमें जब आवश्यकता होती है, तब सभी अच्छी बातें तत्काल

प्राप्त होना कठिन होता है । अत: प्राप्त सभी अच्छे अवसरों का समुचित उपयोग होना चाहिए । इसीलिए उनको दिनांकश:, पत्रिकाश:, विशेष विषयश: निकाल के रखना चाहिए ।

१३. क्या अपने घर के दिनदर्शिका का चयन आपने ही किया है ? या आया हुआ है?

दिनदर्शिका भी संस्कार दे सकती है । किसीने भेंट किया है, केवल इसी एक कारण से, उसे घर में लटकाने के बजाय, उसका उपयोग हमारी दृष्ठि के अनुकूल होना चाहिए । वह जानकारी से भरा हुआ होना चाहिए; विचारों से युक्त रहना चाहिए । हमारे लिए कई बार आवश्यक सब जानकारी प्राप्त हो सकें, ऐसा सब दृष्ठि से परिपूर्ण दिनदर्शिका मँगवा कर लगाना चाहिए ।

१४. क्या आपके चित्रयुक्त दिनदर्शिका के सभी चित्र सदभिरुचिपूर्ण हैं ?

चित्र प्रेरणाप्रद होने चाहिए । यदि अर्धनग्न चित्र, हिंसा को प्रवृत्त करने वाले चित्र, अर्थहीन चित्र, दुर्भावना बढ़ाने वाले चित्र, कामवासना भड़काने वाले चित्र हों, तो वैसे चित्रों को निर्ममता से दूर हटाना चाहिए। मन को प्रसन्न करने वाले, संस्कार प्रदान करने वाले दिनदर्शिका ही घर में लगाने चाहिए ।

चम्मचों का उपयोग

१. भोजन/नाश्ता करते समय हाथों का उपयोग करते हो? या चम्मचों का?

किसी भी काम के लिए कृत्रिम साधनों के बजाय प्राकृतिक साधनों का प्रयोग करना चाहिए । इन साधनों में हाथ भी एक है । इन हाथों का उपयोग कर के ही हम अपने सभी काम करते हैं । भोजन/अल्पाहार करते समय भी चम्मच आदि का उपयोग करने के बजाय, ईश्वर ने हमें दी हुयी पाँचों उँगलियों का उपयोग करते हुए, आहार को भली भाँति मिश्रित कर के हाथों से खाने पर, उसका स्वाद कृत्रिम साधनों के सहारे खाने से होने वाली संतुष्ठि से भी अधिक होता है ।

२. चम्मच के उपयोग से क्या अनुकूलता होती है?

आधुनिक जीवन शैली में कई बार चम्मचों का उपयोग करते हुए आहार सेवन करना अनिवार्य होता है । उदा. कारखाने, कार्यालय जैसे अन्यान्य स्थलों पर समय/सुविधाओं के अभाव के कारण चम्मच की अनिवार्यता हो सकती है । अस्पताल आदि में या हाथों में जख्म होने पर भी चम्मच का उपयोग करना आवश्यक बन जाता है ।

३. हाथों की उँगलियों के उपयोग से क्या लाभ हैं?

हाथ की उँगलियों के उपयोग से हम जैसा चाहे वैसा आहार का मिश्रण कर सकते हैं तथा [illegible] मिलता है । [illegible]

बिठा कर हाथों से दाल, भात, सांभर अच्छी तरह से मिला कर, खाने का निवाला बना के सब को खिलाती थी; इससे बच्चे थोड़ा अधिक ही खाते थे । आज भी बच्चे माँ द्वारा उसके हाथों से मिलाया हुआ भोजन ही अधिक पसंद करते हैं । तब उनको भोजन खाने के सच्चा आनंद भी मिलता है । अत: यथासंभव हाथों से मिश्रित खाना ही उचित होता है ।

४. आपके घर में भोजन के पहले व बाद में हाथ-पैर-मुँह धोने की पद्धति है?

खाना खाने के पहले, साफ़ पानी से हाथ-पैर-मुँह धोकर, स्वच्छ कपड़े से पोंछ कर ही भोजन खाने के लिए बैठना चाहिए । इससे हाथ-पैरों को चिपके कीटाणु, जूठन, थूक, गंदगी आदि का संसर्ग आपके भोजन में नहीं होता । उसी प्रकार भोजन के पश्चात् भी हाथ-पैर धोकर, मुँह का कुल्ला करने से शेष आहार-पदार्थों की दुर्गन्ध आदि जाकर, वह साफ होता है । माता-पिता को चाहिए कि वे बच्चों को बचपन से ही इसकी अभ्यास करायें ।

५. उपयोग करने से पहले, क्या आप चम्मच को अच्छी प्रकार से धोते हो?

हम औषधि सेवन करते समय, चम्मच का उपयोग अधिक करते हैं । इस प्रकार उपयोगित चम्मचों में कुछ बार उसका कुछ अंश उसमें चिपका रह जाता है । जमीन पर गिरने से धूल आदि जमने के कारण, चम्मच का उपयोग करने से पहले, उसे अच्छी प्रकार धो लेना चाहिए ।

जूठन - करकट

१. **क्या आप जूठन को मानते हो?**

किसी के द्वारा खाकर छोड़ा हुआ अन्न, खाया-पिया हुआ गिलास-लोटा-थाली सब कुछ जूठा कहा जाता है । किसी के द्वारा खाते-खाते छोड़ा हुआ आहार दूसरे द्वारा खाना स्वास्थ्य की दृष्ठि से हानिकर होता है । अन्न खाने के बाद उसे रखी हुयी जगह, उच्छिष्ठ सब कुछ जूठा ही होता है । अत: किसी के द्वारा खाते-खाते छोड़े हुएं खाद्य-पदार्थ, पात्रों आदि का उपयोग दूसरे द्वारा करना निषिद्ध है ।

२. **क्या आप करकट को मानते हो?**

जूठन की भाँति करकट भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। क्योंकि, पकाया खाना-दाल आदि सब करकट कहलाता है । इस तरह पकाए हुए पदार्थ हाथ-पात्रों-थालियों-लोटे आदि को चिपके रह सकते हैं । साथ ही वह बहुत शीघ्र बिगड़ जाते है; आम्ल बन जाता है। इसीलिए इनको छूए हाथों से ही दूसरे पदार्थों को छूना उचित नहीं है। अत: इनको करकट ऐसा पृथक नाम ही है।

३. **इनका पालन कहाँ करना है? कहाँ नहीं?**

करकट स्वच्छता का भाग होने के कारण, इसका पालन सब स्थानों पर करना चाहिए। यज्ञस्थलियों में, प्रवास के दौरान, कुछ बार आवश्यकता-अनिवार्यता के अनुसार

इनका पालन करना चाहिए। यज्ञयाग आदि में अग्नि का सानिध्य होने के कारण कृमि-कीट-धूलि की बाधा नहीं हो सकती; इसलिए दोष नहीं है। प्रवास आदि के संदर्भों में करकटयुक्त डिब्बा आदि खोलते समय दोष मानना व्यावहारिक न होते हुए भी, प्रवास के अंत में उन सबके शुद्धीकरण का काम अवश्य करना चाहिए ।

४. इनका पालन किया तो क्या लाभ होता है ?

जूठन-करकट स्वास्थ्य से जुड़ा मामला होने के कारण, वे आरोग्यसूत्रों से आबद्ध हैं । इनको अपने जीवन में लागू करने से जीवन में हमें स्वच्छता, स्वास्थ्य, सुव्यवस्था आदि प्राप्त होते हैं ।

५. केवल मनुष्यों के लिए ही जूठन-करकट हैं। पशुपक्षियों को कहाँ जानकारी होता है ?

केवल मनुष्य ही स्वयं अर्जन-बचत-वर्धन करते हुए, जीवन चलाता है और आहार पका कर खाता है । इसीलिए केवल उसे ही जूठन-करकट लागू करने की जरूरत है । लेकिन प्राणी यथावस्था में आहार खाते हैं तथा उनके लिए हाथों का स्वतंत्र रूप से उपयोग करना संभव नहीं है । वे प्राकृतिक रूप में अपनी स्वच्छता स्वयं ही रखते हैं। अत: उनके लिए इनकी आवश्यकता नहीं रहती ।

दोपहर की निद्रा

१. क्या दोपहर भोजन के पश्चात् सोना ठीक है?

दोपहर भोजन के पश्चात् की नींद सबके लिए अनिवार्य नहीं होती। केवल अति श्रमजीवी–बीमार–वरिष्ठ–बच्चे थोड़ीसी नींद ले सकते हैं। सशक्त, सामान्य लोग दिन में भोजन के पश्चात् थोड़ा समय विश्राम कर सकते हैं । परंतु, नींद नहीं लेनी चाहिए । यदि नींद लेना आवश्यक हो, तो भोजन के पहले थोड़ा समय नींद लीजिए । भोजनोपरांत की नींद से वसा बढ़ती है ।

२. रात की नींद कम होकर, सुबह नींद अनिवार्य हुयी, तो क्या करते हो?

रात की नौकरी रही या प्रवास करना पड़ा, तो दोपहर भोजन के पश्चात् नींद करना अनिवार्य बन जाता है । लेकिन, देर रात तक टी.वी. देखना, दूसरे शो की फिल्म देख के विलम्ब से घर आकर, (रात की) नींद खराब करते हुए, दोपहर सोना उचित नहीं ।

३. क्या स्वस्थ व्यक्ति के लिए निद्रा के बारे में कोई नियम है?

चिकित्सा शास्त्र के अनुसार मनुष्य सामान्यत: ८ घंटे नींद लेता है । कुछ लोग इसे समझने में त्रुटि करते हैं । उनके मतानुसार, मनुष्य के जीवन को सरसरी तौर पर प्रति दिन ८ घंटे की नींद आवश्यक है । इस दृष्टि से देखा जाए, तो वृद्धावस्था व बाल्यावस्था में अधिक नींद लेने से तारुण्य में ६–७ घंटों की नींद पर्याप्त होती है । वृद्ध–बच्चे–बीमारों के लिए दिन

में न्यूनतम ८ घंटों की नींद आवश्यक होती है । शेष सभीको ६-७ घंटों की नींद पर्याप्त होती है । यह नींद भी नियमित से लेनी चाहिए । रात में ९ बजने से पहले भोजन-उपहारादि समाप्त कर, कुछ समय तक अच्छी पुस्तके पढ़कर कर, नींद करनी चाहिए । प्रात: ४-५ बजे उठ कर, प्रातर्विधि, व्यायाम, वायुसंचार आदि समाप्त करते हुए, दैनंदिन कार्यों में जुट जाना अच्छा है । इसमें किसी भी कारणवश परिवर्तन न करते हुए, अपनी जीवनशैली को चलाना चाहिए।

४. क्या शीघ्र सोकर शीघ्र उठना ठीक है ? संभव है ?

निश्चित ही संभव है । हर एक के लिए रात में जल्दी सोना अच्छा होता है; उसी तरह सूर्योदय के पहले उठ कर, अपने दैनंदिन कामों में जुट जाना श्रेयस्कर है । सुबह का वातावरण और हवा शरीर में चेतना-ऊर्जा भरती है । रात में देर से सोना, अस्वास्थ्य को प्रारंभ कर देता है । माता-पिता को चाहिए कि प्रथम वे स्वयं इसका अनुसरण करें और अपने बच्चों को भी समझाएं ।

छींक, डकार

१. छींक-डकार-हिचकी आदि प्राणियों के लिए भी सहज क्रियाएँ हैं । क्या यह सच है कि मनुष्य को ऐसे संदर्भों में सजग रहना चाहिए?

शरीर की अपनी ही एक व्यवस्था होती है । जीवन के लिए अथवा कुल व्यवस्था के लिए शरीर जिस अंतर्वायु का विसर्जन करता है, वही छींक, डकार, हिचकी, जम्हाई, अपानवायु आदि होता है । दो विषय बताना आवश्यक है:

१. शरीर के लिए उसके स्वास्थ्य, अभिवर्धन से संबंधित बात तथा
२. हृदय के भाव-भावनाओं से संबंधित हलचल, कार्य आदि । उदा. आँसू आनंद होने पर भी अविरल बहते हैं । यदि आँसू गिरते हों, तो वह शरीर-इंद्रियों के अंदर कष्ट होने पर ही गिरते हैं; यह बात मन की भावनाओं से संबंधित है । दूसरी, शरीर से सीधे तौर पर संबंधित है । ऐसे संदर्भों में सजग रहना चाहिए । इन सभी संदर्भों में भी शरीर से अनावश्यक/अनपेक्षित स्राव व आवाज आदि होना स्वाभाविक है । छींक याने शरीर, विशेष कर, वायुनलिका की व्यवस्था में घटित तात्कलिक अंतर होता है । उसके निवारणार्थ, उस अन्य पदार्थ को बलपूर्वक हवा के द्वारा बाहर निकाल देने की प्रक्रिया ही यह छींक होती है । वैसे छींकने पर अपनी पंचेंद्रियाँ उस क्षण स्तब्धसी होती हैं । वहाँ मन व बुद्धि को इसकी भनक तक नहीं लगती कि उनके आसपास क्या हो रहा है? इस संदर्भ में सजगता आवश्यक है । शरीर को जब विश्राम की आवश्यकता होती है, तब जम्हाई आना सहज है । जम्हाई के समय शरीरस्थ अधिक छोड़ना वायु बलपूर्वक

बाहर निकाली जाती है । छींकते समय, नाक के जरिए उन सभी द्रवों की सहायता से तथा कुछ बार उनके साथ ही, अनावश्यक पदार्थ बाहर फेंकी जाती हैं । जम्हाई याने मुँह के जरिए बाहर डाली जाने वाली केवल वायु मात्र है । हिचकी, डकार के साथ आवाजयुक्त वायु के संयोग से इनका विसर्जन करने के संदर्भ में सजगता अतीव आवश्यक होती है ।

२. कौनसी सावधानी बरतनी चाहिए?

प्रथम हमारे आसपास के स्थान को भाँपना चाहिए । यदि वहाँ वरिष्ठ–छोटे बच्चे–महिलाएँ–अन्य लोग आदि हों, तो उनके सम्मुख सीधे विसर्जन नहीं करना चाहिए । उनमें से किसीको भी कष्ट न पहुँचें, उनकी एकाग्रता-ध्यान भंग न हो तथा यह विसर्जन उनमें से किसी पर भी न गिरें, इससे उनको घृणा न हो – इस तरह की सावधानी बरतनी चाहिए । क्या कर रहा हूँ? हाथ में, नजदीक में क्या कुछ है? इनकी चिन्ता करनी चाहिए । कुछ विशिष्ठ काम करते समय, इस प्रकार की शंकाएँ दिखायी पड़ती हैं, तो कष्ट प्रतिक्रिया जताते हुए, वह काम वहीं पर रोक कर, इनको निपटा कर आना वांछनीय है । यथासंभव इन सब बातों को दूसरों के सामने रोकना ही विहित है । छींकने से रोगाणु बाहर फैलते हैं । अत: जागरूकता आवश्यक है । इन अनिवार्यताओं की आशंका आते ही, हाथों अथवा रुमाल का प्रयोग करते हुए, उन्हें पूरा करना चाहिए। इनके कारण दूसरों को कोई कष्ट न पहुँचें, इसकी सतर्कता सदैव बरतनी चाहिए ।

३. इसके परिहारार्थ क्या करना चाहिए?

सभी समस्याओं का समाधान अवश्य होता है । उसको समझने की विधा का पता लगाना चाहिए । सर्दी होने पर, छींक का आना स्वाभाविक है । क्या हम सर्दी के कारण का पता नहीं लगा सकते? धूल, बाहरी पानी, प्रतिकूल वातावरण, प्रखर–तीक्ष्ण गंध आदि बातें ही छींक के मुख्य कारण होते हैं । वैसा होते ही रुमाल, तौलिया आदि की सहायता से समस्या का निवारण करना चाहिए । अब जम्हाई, हिचकी, डकार आदि भी इतनी ही स्वाभाविक प्रक्रियाएँ होती है । यह सतर्कता बरतनी चाहिए कि इन क्रियाओं का होना किसीको दिखे। न आवें । शरीर आलस्य से भरा तो जम्हाई, आहार–सेवन की गति में होने वाले परिवर्तन के कारण हिचकियाँ, आहार सेवनोपरांत जठर से शरीरस्थ वायु स्थानांतरित होने के कारण डकार

उत्पन्न होती है । पर्याप्त निद्रा व प्रसन्नता से जम्हाई का, भोजन समय में समुचित गति से भोजन करते हुए तथा थोड़ासा पानी पीकर हिचकी का, भोजन के समय व प्रमाण का पालन करते हुए डकार का निवारण कर सकते हैं । समुचित आहारसेवन तथा मलविसर्जन क्रम से अपानवायु का निवारण कर सकते हैं । यदि हमने समुचित स्वभाव बनाया हो, तो इनमें से कोई भी क्रियाएँ घटित होती ही नहीं ।

४. निरंतर आते हों, तो औषधि क्या है?

इस पर अनेकविध औषधियाँ हैं । उदा. घूँट भर पानी पीना, थोड़ीसी शक्कर खाना, भोजन के अंत में अतितैलयुक्त पदार्थों का सेवन नहीं करना आदि । इन सबके करने पर भी यदि वह नहीं रुकता, तो वैद्य से मिलना चाहिए ।

धन

१. **क्या आपके अपने धनार्जन की रीतिं के बारे में गर्व है ? पराया धन आपको मिला तो क्या करोगे ?**

धन जीवन का एक अनिवार्य अंग है । लेकिन वह कितना होना चाहिए, यही एक अति महत्व का प्रश्न है । अनेक लोगों को इस प्रश्न का उत्तर समझ में ही नहीं आता । वे धनार्जन को ही जीवन का परमोच्च ध्येय मान कर व्यवहार करते रहते हैं । इसी कारण, उस की अर्जन–नीति के बारे में भी वे विचार ही करते नहीं । इसीलिए उनमें अपनी वृत्ति के बारे में भी निष्ठा नहीं होती । उसे करने में उनको गर्व भी अनुभव नहीं होता । तथापि उद्योग में, धनार्जन के मार्ग में प्रामाणिकता पर गर्व होना चाहिए । जो हमारी नहीं है, ऐसी वस्तु, धन तथा बिना परिश्रम के हमारे हाथों में आने वाला वित्त आदि सबको विष के समान दूर रख सकने वाले ही सज्जन होते हैं । जो हमारा नहीं है, उसे संबंधितों को लौटा देना चाहिए ।

२. **क्या व्यय करने से पहले सोचते हो ?**

अपनी संस्कृति के दो शब्द : 'लक्ष्मीपति' याने लक्ष्मी का मालिक, और 'लक्ष्मीदास' अर्थात् लक्ष्मी का गुलाम । पैसा व्यय करते समय सोच कर, उसकी समुचितता मान्य होने पर ही व्यय करने वाला लक्ष्मीपति होता है और पैसा है या नहीं, इसकी चिंता ही न करते हुए, मनमानी ढंग से व्यय करने वाला लक्ष्मीदास होतां है । हमें लक्ष्मीपति बनना चाहिए । जितना आवश्यक उतना ही व्यय करने का स्वभाव होना चाहिये ।

३. क्या व्यय करने के पश्चात् उसका पश्चात्ताप होता है ?

यदि आपने अपना पसीना बहा कर, परिश्रम से धन कमाया है, तो पसीना बहाने वाले को उसका मूल्य पता होना चाहिए । अत: व्यय करते समय न्यूनतम एक बार तो सोचना ही होगा ।

बहुत आलसी बन कर, घर में केवल खाते बैठे अपने घुमक्कड़ पुत्र को उसका पिता एक बार पैसा कमा कर लाने की आज्ञा करता है। पहले, एक-दो दिन माँ-भाइयों की सहायता पाकर शाम को घर आकर, पिता को अपने साथ लाया पैसा दे देता है। पिता उसको स्वीकार न करते हुए, उसे कुँए में डालने को कहते हैं। बिना सोचे ही उसे कुँए में डाल कर बेटा आ जाता है। तीसरे दिन, बेटे पर परिश्रम करने की अवसर आ ही पड़ती है। गाढ़ा श्रम करते हुए, थका-माँदा घर लौट आने पर, बेटा चिल्लाता है: 'मैं क्यों डालूँ कूँए में मेरी गाढ़ी मेहनत की कमाई ?' तब पिता उसे व्यय करने के बारे में समझाता है-ऐसी एक पुरानी कहानी है।

इस पिता-पुत्र के अर्जित रुपयों की कहानी यहाँ स्मरणीय है ।

अपने द्वारा व्यय करने का ढंग व प्रमाण समुचित नहीं था, इसका संज्ञान होने पर ही, व्यय के बारे में पश्चात्ताप होता है । यह संज्ञान सोच-विचार से ही आ सकता है ।

४. धन के बारे में आपकी भावना गौरव की होती है, या तिरस्कार की; डर की या कुछ भी नहीं? क्या आप प्रदर्शनार्थ किए व्यय को सही मानते हो ?

सोच-विचार कर सुविहित रीति से व्यय करना चाहिए । इससे आगे अपव्ययिता रोकने की जागरूकता आ सकती है । पैसों के बारे में गौरवभाव रखने वाले लोग ही उसकी सतर्कता से रक्षा करते हैं । सतर्कता, गौरवभाव न रखने वाले लोग मनमानी ढंग से खर्चा करते हैं।

५. क्या आपकी कोई व्यय करने की नीति है ?

पैसे के बारे में डर, तिरस्कार भाव से देखने के स्थानपर गौरवभाव रखना चाहिए। अपनी हिंदू संस्कृति में तिरस्करणीय, त्याज्य ऐसा कुछ भी नहीं है । अत: उसके बारे में व्यर्थ का आकर्षण, लोभ आदि नहीं; बल्कि, गौरव होना चाहिए । व्यय करते समय आवश्यक उतना ही व्यय करने वाले लोग ही लक्ष्मीपति होते हैं; अन्यथा वे लक्ष्मीदास

ही रह जाते हैं । अपने वरिष्ठ जनों की दृष्टि में उत्तम व्ययनीति कैसी हो ? इसका मापदण्ड उन्होंने बता दिया है : अपने अर्जन का एक चौथाई हिस्सा आपद्धन के नाते बचत करें, चौथाई हिस्सा गृहकार्यार्थ, चौथाई भाग अगली पीढ़ी के उत्तम संस्कार के लिए तथा बचा चौथाई भाग धर्म कार्य के लिए रखना चाहिए । इस उपलक्ष्य में परिजनों को समझा कर, तद्नुसार आचरण करने की प्रेरणा देनी चाहिए ।

६. अपव्ययिता कैसे तय करनी चाहिए?

दूसरे लोग हमारी ओर देखें, प्रशंसा करें इस दृष्ठि से आडंबर या प्रदर्शन के लिए व्यय करना सर्वथा अनुचित है । अंधानुकरण आज की एक सांसर्गिक व्याधि है । किन्हीं दूसरों की अवहेलना करने नहीं, बल्कि केवल अपनी आवश्यकताओं की आपूर्ति करने के लिए ही व्यय करना चाहिए । प्रदर्शन के लिए खर्चा करना योग्य नहीं । अहंकार नहीं करना चाहिए। अपव्यय की व्याख्या है – ''अनावश्यक, क्षणिक सुखदायी, परंतु अनंतर संकट पैदा करने वाला व्यय ।'' ऐसा व्यय करने की जरूरत नहीं है । यहाँ अपनी सोच पैसों के घमंड के जाल में फॅस जाती है । अत: वह अपव्यय हो जाती है ।

७. क्या आप जानते है कि अर्थार्जन के बारे में अपनी संस्कृति की नीति क्या है?

अनुसरण करने योग्य नीति इतनी ही है : अर्थार्जन क्यों करना चाहिए ? कब ? कैसे ? इसके विधि–निषेध की अपनी सीमारेखाएँ सबको सदैव तय कर के रखनी होती है । उसके लिए एक श्लोक बताया गया है :

अकृत्वा परसन्तापम् अगत्वा खलनम्रताम् ।
अनुत्सृज्य सतां वर्त्म यत्स्वल्पमपि तद्बहु ।।

''दूसरों को बिना दु:ख पहुँचाए, नीच लोगों के सम्मुख बिना सिर झुकाए, बिना सज्जनता त्यागे किया वित्तार्जन, थोड़ा ही होने पर भी श्रेष्ठ होता है ।'' संतों का कहना है – ''मेहनत से कमाओ, संयम से व्यय करो और प्रेम से दान करो।''

दान - बचत

१. क्या आप दान करते हो? किस संदर्भ में?

आधुनिक काल में कई लोगों को कुछ बातें बहुत ही अतिवादी लगती होंगी । ऐसे विषयों में 'दान' भी एक है । लेकिन, इसका चिंतन सबने किया कि वास्तव में हमारा जीवन कैसे रहना चाहिए? तो कोई दु:ख नहीं । साथ ही, कोई करे या नहीं, यदि उनको करने पर हम ही अडिग रहें, तो हम स्वयं दूसरों के लिए आदर्श-अनुकरणीय-अनुसरणीय बन जाते हैं । दान हमारी प्रकृति का अंग बन जाना चाहिए ।

२. दान करते समय, क्या आप अच्छी वस्तु ही दान देते हो?

हमारी संस्कृति का यह विश्वास है कि केवल अच्छी वस्तु ही दान करनी चाहिए। अपने पिता वाजश्रवस द्वारा बूढ़ी गायें दान करते समय, उन्हें रोक कर, नचिकेता पिता को बताता है कि निरर्थक वस्तुओं का दान करना ठीक नहीं । उसी प्रकार यदि हमें भी दान करना है, तो श्रेष्ठ वस्तु का ही दान करना चाहिए । यज्ञ में भी अर्पित करनी है, तो श्रेष्ठ वस्तुओं का ही अर्पण करना चाहिए । इसीलिए ही बताया गया है कि हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति । किया हुआ यज्ञ व दिया हुआ दान शाश्वत रूप में वैसा ही रहता है ।

३. सामान्यत: क्या-क्या दान कर सकते हैं?

ज्ञानी व्यक्ति के बारे में एक प्रसिद्ध श्लोक इस प्रकार है :

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः ।
वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वा न वा ।।

"सौ लोगों में एक शूर जन्मता है, हजार में एक पंडित, लाख लोगों में एक वक्ता जन्मता है; लेकिन दान देने वाला जन्मेगा या नहीं, इसका भरोसा नहीं दे सकते।"

अर्थात्, हाथ उठा कर दान करने वाले बहुत ही विरला होते हैं । विशेष संदर्भों में दान करने की सूची ही दी रखी है । षोडश (सोलह) दानों का उल्लेख हमारे शास्त्र-पुराणों में है। फिर भी दान के लिए संदर्भ से भी अधिक मन ही महत्वपूर्ण होता है। (कर्ण ने बाएं हाथ से दिया दान सबके स्मरण में रहा होगा) मनुष्य के लिए आवश्यक सभी वस्तुएं दानयोग्य ही होती हैं।

४. दान करने से हमारा क्या लाभ होता है?

दान याने ऐसी वस्तु देनी होती है, जो दूसरों के पास नहीं है, लेकिन उनको उसकी आवश्यकता होती है ।

वृथा वृष्टिः समुद्रेषु, वृथा तृप्तस्य भोजनम् ।
वृथा दानं समर्थस्य, वृथा दीपः दिवापि च ।।

यह एक प्रसिद्ध सुभाषित है । अर्थात्, समुद्र में बरसा पानी, पेट भरे व्यक्ति को दिया भोजन, समर्थ व्यक्ति को दिया दान तथा दिन में दियां जलाना व्यर्थ होता है । इसीलिए, वही देना दान होता है, जो अनेक लोगों की आवश्यक होती है । उसके लिए कोई सुनिश्चित संदर्भ नहीं होता । लेकिन, कुछ प्रसंगों पर दान अवश्य देना चाहिए । दान करते समय बासी, बिगड़ी, टूटीफूटी, फटीपुरानी वस्तु-वस्त्र आदि देना सर्वथा अनुचित है । इसके साथ ही दान देते समय, दान लेने वाले का भी भला हो, ऐसी ही वस्तु देनी चाहिए । वस्तुओं का दान सही ही होता है। सभी वस्तुओं का दान कर सकते हैं । (हमने सुना है कि स्वामी विवेकानंद जब बालक नरेंद्र थे, तब घर की सभी वस्तुओं का दान करते थे।)

अन्नदान, विद्यादान, आरोग्यदान, धनदान, वस्त्रदान आदि रूप में दान का वर्गीकरण कर सकते हैं । दान से मिलने वाली आत्मसंतुष्टि ही विशेष बात होती है । दान करने से पुण्य मिलता है; धन्यता होती है; कृतार्थता रहती है । इससे लोगों का नहीं, उलटा वह हमारे अगले जन्म-जन्मांतर का भी सहयोगी होता है । "त्याग से ही मैं अमर बनता हूँ । देने से तथा देते-देते अपने अस्तित्व को ही भूल जाने से मानव अमर होता है ।" इसीलिए केवल अपने उद्धार के लिए ही दान करना है।

५. **क्या बचत करना आवश्यक है? बचत करने से क्या लाभ होता है?**

जीवन अनिश्चित तथा अत्यंत सूक्ष्म होता है । इसीलिए भविष्य के योगक्षेम व सुख के लिए आपद्धन के रूप में थोड़ा-बहुत धन संग्रहित कर रखना उचित होता है । साथ ही इसीलिए भी बचत करना चाहिए कि आज अधिक उपयुक्त नहीं हुआ तो भी, आगे कभी तो उपयोग में आ सकेगा । यह बात पुण्य के लिए भी लागू होती है । लेकिन कालिदास स्पष्ठ कहता है कि महात्मा दूसरों के लिए अर्जन करते हैं : *आदानं हि विसर्गाय, सतां वारिमुचामिव* (सज्जन बादलों की भाँति होते हैं; वे दूसरों को दान देने के लिए ही किसी भी बात का संचय करते हैं ।) इसीके साथ –

दानाय लक्ष्मी: सुकृताय विद्या चिन्ता परब्रह्मविनिश्चयाय ।
परोपकाराय वचांसि यस्य वन्द्यस्त्रिलोके तिलकस्स एव ।।

"धन होता ही है दूसरों को दान करने; विद्या होती ही है अच्छे काम करने; चिंतन करना ही है आत्मसाक्षात्कारार्थ, बातें करनी है दूसरों पर उपकार करने के लिए – इन गुणों से युक्त मनुष्य तीनों लोकों के लिए तिलकप्राय होता है।" यह उक्ति बचत का महत्त्व बयान करती है ।

६. **अपनी बचत को कैसे रखना चाहिए?**

अपनी बचत का संरक्षण करना अति कठिन काम है । इसीलिए बुद्धिशाली लोगों को विद्या का उपयोग अधिकाधिक करना चाहिए । लेकिन जमीन तथा सोने की कीमतें दिनोंदिन बढ़ती जाती हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर आपद्धन के रूप में वे हमारे काम भी आते हैं।

निद्रा

१. **क्या आप मानते है कि 'जल्दी सोकर शीघ्र उठना' स्वास्थ्यकर होता है और वह उत्तम संस्कृति का मुख्य लक्षण है ?**

निसर्ग का नियम ही है कि दिन कामकाज तथा रात विश्राम के लिए होती है । जैसे-जैसे मनुष्य का विवेक विकसित होता है, वह शीघ्र उठना मानने लगता है । ब्राह्मी मुहूर्त याने भोर के ३ बजे से सुबह के ५ के बीच का समय ही साधकों-अन्वेषकों के लिए अपने उत्तम चिंतन को और भी प्रखर बनाने के लिए उचित समय होता है । आरोग्य व योग-विशेषज्ञों का अनुभव भी यही है कि उसी समय ओज़ोन वायु अधिक होती है । अत: जल्दी उठने का महत्व और भी बढ़ जाता है ।

जैसे-जैसे मनुष्य का स्वार्थ-अहंकार-धूर्तता बढ़ रही है, वैसे उसने अपने क्रियाकलापों का विस्तार दिन के उजाले के परे फैलाया है। उसमें इसका विश्वास दृढ़ हुआ है कि वह रात में भी दिन की भाँति सब कुछ कर सकता है । यह प्रयत्न भी जारी है कि दुनिया भी इस तथ्य पर विश्वास करे । प्रचार भी चला है कि यदि प्रगति करनी है, तो रात का भी उपयोग करना चाहिए । रात में कार्य करने वालो को ''निशाचर'' का नाम भी प्राप्त हुआ है । परंतु उससे न उनको कभी सुख मिला; न ही दुनिया को । इतना होने पर भी, 'सब कुछ भला होगा' ऐसा भ्रम उत्पन्न करने का प्रयास भी कर रहे हैं । परंतु विशेषज्ञों के अभिप्रायानुसार, सबको सर्व काल के लिए ठगना संभव नहीं है । विवेकशील लोग उसीके अनुसार बरत रहे हैं ।

२. लेकिन क्या वह आज के गतिमान युग में संभव होगा?

प्राकृतिक नियमों को लाँघते हुए जीने के मानवी पागलपन के सामने दुनिया झुक रही है – इसका अनुभव आने के पश्चात् भी, 'यह संभव होगा क्या?' इसकी चिंता करते बैठने के स्थानपर, 'मैं इस भ्रम का शिकार नहीं बनूँगा' ऐसा निर्धारण कर के ही जीना चाहिए। इस प्रकार जीने वालों की संख्या बढ़ रही है। ठीक है कि आज यत्र–तत्र एकाध–दूसरा है। लेकिन इनकी संख्या ही अब बढ़ने वाली है। 'गति' ही जीवन का लक्षण नहीं है। उसका नियंत्रण करने की शक्ति भी बढ़नी चाहिए। उत्थान–पतन के चक्र में इसका अनुभव भी आता है।

३. किस समय बिलकुल ही सोना नहीं चाहिए?

तीनों संध्या काल में अर्थात सूर्योदय, मध्याह्न तथा सूर्यास्त के बिलकुल ही नहीं सोना चाहिए। उसी प्रकार, दिन का समय कामकाज के लिए होता है। उसका सदुपयोग होना चाहिए। इसीलिए ऐसी श्रद्धा भी है कि दिन के समय सोना ठीक नहीं; अच्छा नहीं। उसी प्रकार, घर में भगवान की आरती उतारते समय, वरिष्ठों के आगमन पर नहीं सोना चाहिए। बच्चों–बूढ़ों व बीमारों को इससे छूट दी गई है।

४. सोने का बिस्तर, तकिया कैसा होना चाहिए?

बिस्तर–तकिया आदि अधिक मृदु तथा अधिक कड़ा न हो। कपास अथवा कथरी का रहा तो बहुत अच्छा होगा। आज अधिक प्रचार में रहे foam के बिस्तरे सदैव फैलाये स्थिति में ही रखने चाहिए। उनको लपेटा नहीं जा सकता। एक और बात याने उनके ऊष्ण–विपरीतता के कारण, उनका उपयोग करने वालों का स्वास्थ्य, रीढ़ की हड्डियों की स्थिति बिगड़ जाती है। उसी तरह, तकिया भी अधिक ऊँचा नहीं होना चाहिए। फिर भी ये सब कुछ हर व्यक्ति की आवश्यकताओं अनुभवों पर निर्भर होता है। उनका अपना अनुभव ही उनको मार्गदर्शक हो सकता है। प्रचार की झंझा में हमें क्षण मात्र के लिए भाया, तो भी हम अनुभवों को किनारे नहीं कर सकते। अत: हर दिन सतर्कतापूर्वक सोने के अपने बिस्तरे–तकिये को ठीक करा लेना चाहिए। सदैव फैलाए हुए बिस्तरों में गंदगी, कृमियों का वास हो सकता है – इसकी सजगता सबमें होनी चाहिए।

५. सिर किस दिशा में होना चाहिए?

हिंदुओं के लिए कोई भी दिशा बुरी या अपवित्र नहीं है। फिर भी दक्षिण दिशा को मृत्यु की दिशा कहते हैं। अत: इस दिशा में पैर आवें इस ढंग से (याने उत्तर दिशा की ओर सिर

रख के) नहीं सोना चाहिए। उस प्रकार सोने से मृत्यू की ओर चलने जैसा हो सकता है। एक धारणा के अनुसार, उसके कारण, सिर से संबंधित विभिन्न बीमारियाँ हो सकती हैं।

६. सोते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ।

तकिये की दिशा ध्यान में लीजिए । हवामान के अनुरूप ओढ़नी होनी चाहिए । स्वच्छ हवा का चलन होना चाहिए । सोने के पहले मूत्रविसर्जन कर, पानी से हाथ-पैर-मुँह साफ करते हुए, एक लोटा पानी पीना चाहिए । ईशस्मरण के श्लोक या मंत्र दोहराना चाहिए । उस दिन के प्रमुख अंश तथा किए कामों का अवलोकन करते हुए, 'कहीं पर कुछ भूल तो नहीं हुयी न ? किसी को दु:ख पहुँचाया है क्या ?' इसका चिंतन करना चाहिए । यथासंभव उसके लिए प्रामाणिकता से पश्चात्ताप का अनुभव तथा उसे ठीक कर लेने का संकल्प करते हुए, ईशस्मरण करने के बाद सो जाना चाहिए । सो जाने के उपरान्त, दूसरे किसी की भी सोच न करते हुए, निश्चिंतता से सो जाइए ।

७. क्या सोते ही नींद आती है ? या नहीं आती ? न आने पर क्या करना चाहिए ?

"मस्तमौला बाज़ार में भी सोता है" ऐसी एक कहावत है। बहुत परिश्रम होने पर भी नींद अपने आप आती है । साधारण व्यक्ति को सहज ही नींद आती है । स्वस्थ व्यक्ति को सामान्यत: ८ घंटे की नींद जरूरी होती है । कैसे भी हो, सोते ही नींद आनी चाहिए। मन में चिंता, दु:ख, क्रोध भरा रहने से नींद नहीं आती । तब सभी चिंताओं को दूर रख कर, किसी भी देवता के नाम का जप करते हुए सोइए, नींद अवश्य आती है ।

८. क्या सोने के स्थान पर अच्छी हवा चलती है ?

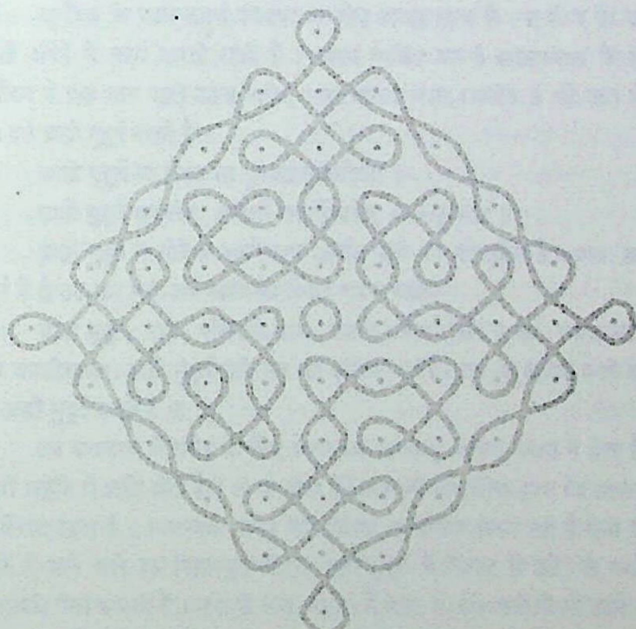
अच्छी हवा चलती हो, तो नींद भी अच्छी आती है । स्वास्थ्य भी उत्तम रहता है। हवा न चलने वाली जगह पर सो जाने से साँस की बीमारियाँ-शारीरिक पीड़ा-संधीदर्द आदि आने की संभावना रहती है।

९. आज के दूषित वातावरण में मच्छरों से बचने हेतु क्या मच्छरदानी का उपयोग करते हो या coil, cream आदि का ?

मच्छरों से बचने के लिए अच्छी हवा, fan तथा मच्छरदानी का उपयोग बहुत अच्छा होता है। अन्य रासायनिक वस्तुओं से मच्छर जाते होंगे; तो भी उनके कारण स्वास्थ्य बिगड़ने की संभावना बनी रहती है।

अध्याय २

कुटुंब





सुबह उठना

१. आप बिस्तर से कब उठते हो? सूर्योदय से पहले? या उसके बाद?

सूर्योदय के पहले उठना स्वास्थ्य के लिए अच्छा रहता है । सूर्योदय के पहले आँखें अंधेरे में काम करती रहती हैं । स्वस्थ व्यक्ति अपनी स्वास्थ्यरक्षा के लिए सूर्योदय से एक याम पहले उठना चाहिए । यह प्रशस्त काल (करीब ३ घंटे का) होता है । इसे ब्राह्मी मुहूर्त कहते हैं ।

ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी ।

ब्राह्मे मुहूर्ते बुद्ध्येत, धर्मार्थौ चानुचिंतयेत् ।। मनु ४.९२

ब्राह्मी मुहूर्त में सोने से अपने द्वारा अर्जित पुण्य का नाश होता है । अत: ब्राह्मी मुहूर्त में ही उठ कर धर्म–अर्थ आदि का चिंतन करना चाहिए ।

ब्राह्म मुहूर्त: रात्रे: पश्चिमो याम: रजनी प्रातर्यामार्ध: ब्राह्म: समय उच्यते इति काशीखण्ड: ब्राह्मी मुहूर्त याने रात का अंतिम भाग है। रात के अंतिम आधे याम को ब्राह्मी मुहूर्त कहते हैं ।ह

तब वातावरण में शरीर के लिए आवश्यक प्राणवायु अधिक प्रमाण में होता है । बाहरी प्रकृति में शांति होती है । छ: से आठ घंटे तक की नींद लिया हुआ देह हल्का व प्रफुल्लित रहता है । सामान्यत: समय नहीं मिलता या पर्याप्त समय नहीं है ऐसी बातें सुनने में आने वाले इस विज्ञानयुग में इस ब्राह्मी मुहूर्त में बिस्तर से उठें, तो पर्याप्त कालावधि मिल सकती है । कम से कम, आरंभ में प्रात: ५.०० बजे तो भी उठने की आदत लगा लेने के बाद, क्रमश: ४.०० बजे, तदुपरांत ३.०० बजे उठने का अभ्यास

कर सकते हैं, जिससे अपनी प्रातर्विधि (मल-मूत्र की प्रवृत्ति) करने के लिए बहुत समय मिल सकता है। विलम्ब से उठने के कारण पर्याप्त समय न मिल कर धांधली होती है और अपने निसर्गकर्म भी सही ढंग से न होकर, वे व्याधियों के कारण बन सकते हैं । तथा देर से उठने पर हमें वातावरणस्थित प्राणवायु का हिस्सा भी कम ही मिलता है।

किन्तु इतनी शीघ्र उठना हो, तो 'कब सो जाना चाहिए?' इसके पथ्य का पालन अवश्य करना पड़ता है । आज अनेक लोगों के लिए दिन छोटा, रात बड़ी होती है। याने विद्यार्थी, व्यवसायी आदि सभी लोग सूर्योदय के बहुत समय बीत जाने के बाद ही उठते हैं। (कॉल सेंटर आदि व्यवसायों में काम करने वाले कर्मचारी तो दिन में ही सोते हैं ।) क्योंकि, उनको रात में ही काम करना पड़ता है । प्रतिदिन शारीरिक थकान के साथ ही, रात की थकान शरीर को अधिक कष्ट देती है । रात के समय जगे रहने से शक्ति का अपव्यय अधिक होता है। वह प्रकृति-विरोधी क्रिया है। वह शारीरिक-मानसिक समस्याओं का कारण बन सकती है ।

स्वास्थ्य विशेषज्ञों के अनुसार, दिन बड़ा व रात छोटी होने से स्वास्थ्यवर्धन होता है। अत: पूरे दिन के लिए आवश्यक पर्याप्त नींद पाने की दृष्टि से रात में ९.०० बजने के पहले सोकर, प्रात: ५.०० बजे उठना सबके लिए अच्छा होता है ।

२. उठते समय कैसे उठते हो? दाहिनी ओर से? या बायी? अथवा सीधे?

अभ्यास अनेकविध रहे, तो भी दाहिनी ओर से उठना उचित है । नियम यह है कि सोते समय पूर्व अथवा दक्षिण दिशा की ओर सिर होना चाहिए । उत्तर दिशा में सिर रख कर सोना सर्वथा निषिद्ध है तथा पश्चिम की ओर सिर रख कर सोना मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छा नहीं है। पूरब का अधिपति इंद्र, दक्षिण का यम, पश्चिम का वरुण तथा उत्तर का कुबेर है । इसीलिए प्रात:काल में इंद्र व कुबेर का दर्शन अच्छा होता है । अत: आधुनिक विज्ञान भी कहता है कि दाहिनी ओर से उठने के कारण हृदय पर अधिक जोर नहीं पड़ता ।

३. उठने के पश्चात् क्या करते हो? देह मरोड़ते हो? या हाथ जोड़ कर भगवान का स्मरण करते हो?

साधारणत: आजकल उठते ही शारीरिक हलचल सुचारु हो इस लिए शरीर मरोड़ने की प्रथा चल पड़ी है । लेकिन हमारे पुरखों की पद्धति के अनुसार प्रथम हमें संपूर्ण सृष्टिरचना की कारणकर्त्री शक्ति का स्मरण करना चाहिए । क्योंकि, हमारे पूर्वजों

की अवधारणा यह है कि इस शरीर के विभिन्न अंगांगों या अवयवों में देवता वास करते हैं। इसीलिए सुबह उठते ही बिस्तर पर ही दाहिनी ओर मुँह करते हुए बैठ कर, दोनों हाथ एक-दूसरे से मलते हुए –

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती ।
करमूले स्थिता गौरी प्रभाते करदर्शनम् ।।

(हाथों के ऊपरी भाग में लक्ष्मी, मध्य में सरस्वती तथा तलभाग में गौरी का वास होता है; इसीलिए सुबह उठते ही हाथों का दर्शन करना चाहिए।) यह श्लोक दोहरा कर हाथ के तलुवे आँखों पर लगा लेने चाहिए । मलने से तलुवों में गर्मी उत्पन्न होकर, उससे आँखें बाहरी दुनिया की ओर खोलने के लिए अनुकूल बनती हैं; नारनाडियाँ सही ढंग से प्रवृत्त होती हैं । अंधकार से प्रकाश की ओर दृष्टि डालना, आँखों के आरोग्य के लिए भी अच्छा होता है । बायीं ओर से उठना शरीर के लिए कष्टप्रद, हानिकारक व अस्वास्थ्यकर भी होता है । तो सीधे उठना देह के लिए सुखकारक भी नहीं, आरोग्यकारक भी नहीं। अनंतर भूमि पर पैर रखने से पहले, दोनों हाथों से भूमि का स्पर्श कर अपनी आँखों से लगाते हुए, यह श्लोक दोहराना चाहिए :

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले ।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ।।

'हे समुद्ररूपी वस्त्र धारण करने वाली, पर्वतरूपी स्तनमंडलों से युक्त देवी! हे विष्णुपत्नी ! तुमको होने वाले इस पदस्पर्श के लिए मुझे क्षमा करो!' पृथ्वी को 'सर्वंसहा' कहा गया है । उस सहनशक्ति की साकार मूर्ति का स्मरण करना हमारे जीवन का आदर्श है ।

रत्नाकराधौतपदां हिमालयकिरीटिनीम् ।
ब्रह्मराजर्षिरत्नाढ्यां वन्दे भारतमातरम् ।।

'सागर जिसके चरण धो रहा है; हिमालय जिसका मुकुट है और ब्रह्मर्षि व राजर्षि रूपी रत्नों से जो समृद्ध है, ऐसी भारत माता की मैं वन्दना करता हूँ।'

४. क्या उठते ही बिस्तर लपेटते हो? या वैसे ही छोड़ देते हो?

उठते ही बिस्तर लपेट कर रखना एक स्वास्थ्यकर लक्षण है । उठते ही भगवान का स्मरण करते हुए बिस्तरे को लपेट कर, सब बिस्तर व ओढ़िनियों को झटक के, मोड़ कर उचित स्थान पर रख देना चाहिए। सुव्यवस्थित जीवन का प्रारंभ यहीं से होती है । उसे वैसे ही छोड़ देना अस्वास्थ्यकर है । उनके ऊपर धूल व कीटाणु इकत्र हो सकते हैं

। अत: उनको मोड़ कर रखना योग्य होगा । आज-कल हर स्थान मंच या खटिया दिखायी देती है । लेकिन, उसके ऊपर का बिस्तर लपेट कर, सही स्थान पर रखना अच्छा होता है । मंच पर बैठने के लिए कोई दूसरी चद्दर फैलाना उचित रहेगा । यदि शरीर से सहयोग मिले, तो मंच की तुलना में जमीन पर ही बिस्तर डाल कर सोना अच्छा होता है । बिस्तर रुई या कत्थे का रहे, तो समुचित रहेगा ।

५. सुबह उठते ही क्या आपको मलविसर्जन होता है? अथवा चाय/कॉफी पीने के पश्चात् ही?

शौचविधि : शरीर के लिए त्याज्य ऐसे मल पदार्थ (गंदगी) को देह से बाहर डालने की क्रिया को ही 'शौचविधि' कहा जाता है । मलमूत्र की प्रवृत्ति एक सहज क्रिया है । इसे रोकना या प्रलंबित रखना प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है । उसी प्रकार इसे कृत्रिम रीति से बाहर डालने के लिए कॉफी-चाय-बीडी-सिगरेट जैसी प्रकृति बना लेना अनेकों की दुर्बलता है । मलप्रवृत्ति को रोकने से पेट फूलना, पेट दर्द, कमर दर्द, आलस्य, अजीर्ण तथा सबसे बढ़ कर, मलावरोध होता है । यही आगे चल कर मूलव्याधि, बवासीर, अर्श का कारण बनता है । मूत्रप्रवृत्ति को रोकने से पेडू दर्द, पथरी की उत्पत्ति आदि कष्ट होती हैं । रात में सोने से पहले, एक गिलास गर्म पानी तथा सुबह जगते ही दो गिलास पानी पीने से इनका निवारण होता है ।

६. क्या आपके घर का शौचालय भारतीय पद्धति का है? याने स्नानगृह व शौचालय पृथक-पृथक हैं?या दोनों एकत्रित ही हैं?

मल-मूत्र का कूप सदैव रोगाणुओं से भरा होता है । मल याने शरीर के लिए अनावश्यक, त्याज्य वस्तुएँ ही होती हैं । भारतीय पद्धति में स्नानगृह तथा शौचालय दोनों पृथक-पृथक होने चाहिए । स्नानगृह में केवल स्नान करना है; वहाँ मूत्रविसर्जन करने पर, पानी से उसका निराकरण कर सकते हैं । लेकिन, शौचालय या शौचकूप में पानी सदैव होता ही है; और वह विषाणुओं से भरा हुआ होता है । विदेशी शौचालयों में स्नान गृह तथा शौचकूप दोनों एक ही स्थान पर होते हैं । वह उनके यहाँ ठीक हो सकता है । क्योंकि, वहाँ कुटुंब सदस्यों की संख्या कम होती है और उनके लिए नित्य स्नान अनिवार्य नहीं है । लेकिन, भारतीय जीवन पद्धति में सुबह प्रतिदिन स्नान करना अनिवार्य है । शौच समाप्त कर, स्नान समाप्ति तक (वहाँ बदबू न हो तो) वहीं पर उस रोगाणुयुक्त वातावरण में रह कर, अपने स्नानादि कार्य पूरे करना स्वास्थ्य की दृष्टि से भी हानिकारक व असहनीय है।

भारतीयों में बच्चों को गोद में लेते हुए अभ्यंग स्नान कराने की पद्धति है । तो इस तरह की विदेशी व्यवस्था में उसे पूरा करना असुविधाजनक व कष्टप्रद ही होता है । इसके साथ ही, उस शौचकूप के बारे में एक बात है । उसके ऊपर बैठना सुलभ होता है इस एकमात्र कारण के लिए, विदेशी शौचकूप की व्यवस्था केवल वयस्क व्यक्तियों के लिए ही उचित हो सकती है । भारतीय पद्धति से हम स्वास्थ्य व स्वच्छता दोनों सुनिश्चित कर सकते हैं । मलविसर्जन करते समय, गुदाद्वार नीचे होने के कारण, वहाँ पर समुचित परिचलन होकर, मलविसर्जन कार्य सुगमता से पूरा हो सकता है । उस शौचकूप के ऊपर केवल हमारे पैर के तलुवों का ही स्पर्श होता है, न कि शरीर के किसी दूसरे भाग का ।

७. मलविसर्जन कर बाहर आने पर हर बार क्या हाथ-पैर-मुँह धो लेते हो? या वैसे ही घर में चहल-पहल करते हो?

मलविसर्जन कर बाहर आने के पश्चात् हर बार हाथ-पैर-मुँह धोना स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है । वैसा न करने वालों के बारे में अपने यहाँ कहा जाता है कि 'उसे शनि की बाधा हुयी है ।' मलविसर्जन के भाग, हाथ, पैर आदि शुद्ध करा लेना अत्यावश्यक है। उनको साफ किए बगैर घर में चहल-पहल करना स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छा नहीं है। इससे घर में बीमारियाँ अवश्य फैल सकती हैं । उसी प्रकार, शौचालय निर्मल रखना है, तो उसे पानी से भली भाँति साफ करना चाहिए । इससे अपने पश्चात् उसका उपयोग करने वाले को वह असह्य नहीं लगेगा और रोगाणुओं का प्रसार भी रोका जा सकता है।

८. आप दांतों का मंजन कब करते हो? क्या उठते ही दांत माँज कर, मुँह धो लेते हो या चाय/कॉफी पीकर, सभी काम समाप्त करने के बाद आराम से माँजते हो?

दांतों की स्वच्छता के लिए प्राथमिकता देनी चाहिए । क्योंकि, ७५% बीमारियाँ पचनेंद्रियों के कारण ही होती है । इसीलिए, शरीर के अंदर कुछ भी स्वीकारने से पहले, इन इंद्रियों को शुद्ध करना चाहिए । अन्यथा, मुँह में स्थित सभी रोगाणु शरीर में प्रवेश करते हुए बीमारियाँ पैदा कर सकते हैं । क्योंकि, रात के भोजन के पश्चात्, मुँह में अनेक प्रकार की प्रक्रियाएँ जारी रहती हैं । सोने के पश्चात् भी मुँह गीला रहने के कारण, कीटाणु तथा स्रावों के कारण वह अशुद्ध रहता है । यही अवस्था हमारी अन्ननलिका,

वायुनलिका की भी रहती है । इसीलिए उठते ही, तुरंत अपने अंतरंगीक कल्मशों (मल) को बाहर डाल कर, मुख प्रक्षालन करने से पहले, दांत व मसूढ़ों को अच्छी तरह से घिस कर, उनमें छिपे रहे सभी अन्नकणों को बाहर निकाल कर, गले के अंदर तक पानी का कुल्ला करने पर ही मुँह के अंदर हो सकने वाली सभी हानिकारक वस्तुएँ दूर होकर, मुँह स्वास्थ्ययुक्त हो सकता है । मुँह धोने पर, आँखों में स्थित मैल, नाक में स्थित सिंघण (गंदगी) आदि सब का निवारण होता है । इससे मुख की बदबू भी दूर होती है ।

प्रयोजन :

१) दांतों के बीच तथा संधियों में अटक गए अन्नकण, सड़ने वाली गंदगी को बाहर डाल सकते हैं ।

२) मुँह की दुर्गन्ध हटा सकते हैं ।

३) जिव्हा स्वच्छ् होकर, सहीसुगन्ध का आनंद हो सकता है ।

४) शरीर में स्फूर्ति आती है ।

मुँह के फोड़ें, खाँसी, हिचकियाँ, मुँह के पक्षाघात आदि से पीड़ित लोगों को अपनी उँगलियों से दातों का मंजन करना चाहिए ।

९. दांत माँजने के लिए आप पेस्ट का उपयोग करते हो या दंतमंजन चूर्ण का?

मीठी पेस्ट से स्वास्थ्य की रक्षा नहीं होती । आज हममें से अनेक लोगों को यह पता ही नहीं है कि पेस्ट न होने पर दाँतों को कैसे मांजना होता है? वैसे ही पेस्ट से उत्पन्न झाग को ही दांतों के स्वास्थ्य के लिए अच्छा माना जाता है । यहाँ ध्यान में देनेयोग्य बात यह है कि सभी विज्ञापनों के उद्घोषों के अनुसार, दांत सफेद होते ही नहीं । वे हल्के हल्दी रंग के होते हैं । इसीलिए दांत सफेद दिखायी देने के लिए सामान्यत: उस पेस्ट में ब्लीचिंग तत्व का मिश्रण किया जाता है । तथा इससे दांत मांजने से अधिक लार स्त्रवित होकर, शरीर से अधिक पानी जाया होता है । इसीलिए आयुर्वेद घरेलू दंतमंजन तैयार करने पर बल देता है । उसकी नीचे वर्णित विधाएँ भी होती है :

१) धान का भूसा जला कर होने वाली राख में थोड़ासा नमक व शुद्ध कर्पूर मिला कर उसका उपयोग दंतमंजन के रूप में करना चाहिए ।

२) आम तथा नीम की लकड़ियों के टुकड़े सुखा कर; उनका चूर्ण कर के रखना,

इसमें थोड़ासा लौंग तथा काली मिर्च का चूर्ण (२चम्मच) और थोड़ासा नमक मिला के रख कर, उसका उपयोग दंतमंजन के रूप में कर सकते हैं । दांत माँजने के पश्चात् जिव्हा को भी इसी चूर्ण से घिस कर उसपर चिपका मलरूपी कफ निकाल देना चाहिए । इससे जिव्हा की रसास्वादन शक्ति बढ़ती है तथा मुँह की दुर्गन्ध कम होती है ।

३) सुश्रुताचार्य ने बताया है कि सोंठ, पिप्पली, काली मिर्च, दालचीनी का चूर्ण शहद के साथ तथा तिल का तैल सैंधा नमक चूर्ण के साथ मिला कर दांतों का मंजन करना चाहिए ।

दंतधावन की क्रिया केवल दांतों को स्वच्छ करने पर समाप्त नहीं होती। क्योंकि, दांतों का स्वास्थ्य दांतों के ऊपर स्थित मांस (मसूढ़ों) के स्वास्थ्य पर अवलंबित होता है । इसीलिए दंतधावन विधान में मसूढ़ों को मृदुता के साथ घिसना चाहिए । इसके लिए शहद, सैंधा नमक का उपयोग करना चाहिए । इससे मसूढ़ों में स्थित मवाद, दूषित रक्त बाहर निकल कर मसूढ़े दृढ़ होते हैं ।

१०. दांत माँजने के लिए आप ब्रश का उपयोग करते हो या किसी पेड़ की दंतधावन लकड़ी का?

मलनिवृत्ति के पश्चात्, दांत व मसूढ़ों को साफ करना चाहिए । एक कल्पना के अनुसार, ब्रशों से दांत माँजने के कारण दांतों व मसूढ़ों को भी सहायक होता है । वह कितना भी अनुकूल लगता हो, तो भी यह प्रश्न वास्तव में अनुत्तरित ही रह जाता है कि उनमें प्रविष्ट क्रिमियों को कैसे दूर करना है? कड़े (हार्ड) ब्रशों से मसूढ़ों को कष्ट होता है। दांत ढीले होते हैं । रक्त भी आ सकता है । इसी कारण, ब्रशों का उपयोग करना स्वास्थ्यकर नहीं है । आयुर्वेद विषेषज्ञों का कहना है कि ब्रशों के स्थान पर हम आम-वट-गूलर-नीम या किसी दूसरे पेड़ों की टहनियों के टुकड़ों को गर्म पानी में भिगो कर, उसका छोर भली भाँति चबा कर नरम बना कर, उससे दांतों का मंजन करना चाहिए ।

११. सुबह मुँह धोने के पश्चात्, क्या आप पानी पीते हो?

शरीर से पानी को बाहर डालने की हर क्रिया के पश्चात् शरीर को पानी पिलाना शरीरस्वास्थ्य के लिए अच्छा रहता है । इसीलिए अपने पूर्वजों ने ऐसे सभी संदर्भों में भी तीन अंजुलीभर पानी पीने की परिपाटी डाल रखी है । इसी कारण, शरीर से पानी बाहर डाले जाने की हर क्रिया के पश्चात् थोड़ासा तो जल अवश्य पी

लेना चाहिए । अत: मुँह धोने के पश्चात् पानी पीना चाहिए । एक सुभाषितकार बताता है :

अत्यम्बुपानान्न च जीर्यतेऽन्नं अनम्बुपानाच्च भवेद्धि दोषः।
तस्मान्नरो वह्निविवर्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि।।

'बहुत पानी पीने से अन्न का पचन नहीं होता । पानी न पीने से दोष अवश्य चिपकता है ।' इसीलिए मनुष्य को बीच-बीच में अपने जठराग्नि के वर्धनार्थ आवश्यक प्रमाण में पानी पीते रहना चाहिए ।

१२. पानी किस पात्र में रखते हो? स्टील, अल्युमिनियम, तांबे या प्लास्टिक के बर्तन में?

पिछली रात तांबे के बर्तन में पानी भर के रखते हुए, उसी पानी को दूसरे दिन प्रात: पीना चाहिए । क्योंकि, तांबे में एक विशिष्ट गुण है । पहला याने, अपने अंदर के पानी को ठंडा रखना; और दूसरा, तांबा सभी प्रकार के कल्मषों को दूर करता है । अत: वह पानी बहुत ही शुद्ध होता है । अल्युमिनियम व प्लास्टिक के पात्र स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त नहीं होतें ।

१३. क्या आप पानी पीने के बदले सीधी गरमागरम चाय या कॉफी पीते हो?

पानी के बदले, सीधी गरमागरम चाय/कॉफी पीना अच्छा नहीं है। अब तक बतायी बातों के अनुसार, पानी ही शरीर के लिए अतीव आवश्यक मूल द्रव है। वह पानी बहुत ही शुद्ध होना चाहिए । इसीलिए तांबे के पात्र में रखा हुआ पानी ही पीना चाहिए । अन्य पेय, उनमें भी उत्तेजक पेय गरमागरम अवस्था में ही पी लेने से पेट तथा आँतों की भीतरी दीवारों को हानि पहुँचती है।

१४. आपके घर में क्या बच्चे शीघ्र उठते हैं या आप उन्हें उठाते हो?

'बोए जैसा बीज, उगायी वैसी फसल' इस कहावत के अनुसार बच्चों को संस्कारयुत करने के लिए उनको शीघ्र उठाना चाहिए । शुरु में उठाने की जरूरत हुई, तो भी उन्हें शीघ्र उठने की आदत लगनी चाहिए।

१५. बच्चों को आप कैसे सिखाओगे कि उनको कैसे उठना चाहिए?

उठाते समय बच्चें प्रारंभ में हठ करते हैं । तो भी उन्हें अच्छी बातों से ही, बिना अनावश्यक कटु वचनों से सहनशीलता से उनको उठाने का काम करना होगा । बायीं

ओर से न उठते हुए, वे दाहिनी ओर से ही उठें, ऐसा भाव प्यार से जगाना चाहिए । आरंभ में 'देवता या बड़ों के भावचित्र की ओर देखो' ऐसा बता कर, क्रमशः हाथों को देखने का स्वभाव भी डालना होगी । मन ही मन 'उसका भला हो' ऐसा सुचिंतन भी करना चाहिए । हमें स्वयं ही श्लोक आदि का पठन करना चाहिए । पश्चात्, वे भी उसका परिपालन करें, ऐसी प्रेरणा हमें उनको देनी चाहिए। इस संदर्भ में 'श्याम की माँ' नामक सानेगुरुजी की पुस्तक हमें पढ़नी होगी।

१६. क्या आप अपनी दिनचर्या के उत्तम भाग बच्चों को सिखाते हो?

सामान्यतः बच्चे अनुकरणशील होते हैं । हम जो करते हैं, उसका ही अनुकरण बच्चों द्वारा किया जाना, यह एक सहजसी बात है । लेकिन, उनको ज्ञात नहीं होता कि हम वैसा क्यों करते हैं? हमारे अभ्यास के कारण, कुछ कामों को हमारे द्वारा किया जाना तथा उनके द्वारा किया जाना इसमें अंतर हो सकता है । इसीलिए हमें उनको ढंग से सिखाना होगा ।

स्वच्छता - प्रात:स्मरण

१. **क्या आप हर दिन घर का आंगन बुहार कर, पानी डाल कर साफ करते हो? क्या प्रात:काल में करते हो? या सायंकाल को?**

हर दिन घर के आंगन में झाडू लगा कर, पानी सींच कर, उसे साफ करना, एक शिष्टाचार है । सब जगह परिशुद्ध वातावरण व्याप्त रहने के इस समय में घर के सामने पिछले दिन गिरी धूल व कचरा आदि सब जगह हटाने के उद्देश्य से प्रात: उन सबको निकालते हुए, पानी सींच कर, आंगन में झाडू लगा के साफ करना चाहिए । इससे घर में प्रवेश करने वाली वायु शुद्ध तथा धूलमुक्त रहती है । उसके साथ ही प्रात:काल के उस शुद्ध वातावरण में वायुसेवन करना भी हितकारी होता है । इससे गृहिणियों या महिलाओं के शरीर के लिए आवश्यक व्यायाम और मन का उल्लास भी प्राप्त होता है ।

यही काम शाम को भी करना चाहिए । प्रात: और संध्या का समय याने लक्ष्मी के आगमन का समय होता है, ऐसी भावना रख कर, उसके स्वागत का उचित वातावरण निर्माण करना चाहिए ।

२. **घर के अंदर दिन में कितनी बार झाडू लगाते हो?**

घर के अंदर अनिवार्य रूप में दो बार तो झाडू लगाना ही चाहिए। सुबह उठते ही सोया हुआ अपना बिस्तर-ओढनियाँ आदि ढंग से मोड़ कर उचित स्थान पर रखते हुए, धोने के पात्र-गिलास आदि बाहर रख कर, घर के सभी कमरों में एक बार व्यवस्थित

रीति से झाडू-पोंछा करते हुए उनको स्वच्छ् करना चाहिए । फिर शाम होने से पहले झाडू लगाने के थोड़े समय के पश्चात्, दिया जलाना चाहिए । साथ ही भोजन के लिए बैठने के पहले थालियाँ लगाने की जगह को पूरा स्वच्छ् कर के ही भोजन करना चाहिए। तथा कुछ बार अधिक चहल-पहल और अनाज आदि स्वच्छ् करने के कारण घर में कूड़ा-कचरा हो गया, तो तब भी घर में झाडू लगा कर, उस कूड़े को कचरे की टोकरी में अवश्य डालना चाहिए । अन्यथा झाडू मार कर एक कोने में ढकेलते हुए, एक ही बार उसे उठाएंगे ऐसा सोच के आलस्य नहीं करना चाहिए । यह घर के लिए शोभादायक भी नहीं । तथा इकठ्ठा किया हुआ कचरा हवा के कारण उड़ कर, घर के कोने-कोने में फैल सकता है । इसीलिए समय-समय पर कचरा बुहार कर, उसे तत्काल निपटाना चाहिए ।

३. कूड़ा कहाँ डालते हो?

अन्यान्य प्रदेशों में झाडू लगाने के पश्चात्, सभी कचरा डालने के अलग-अलग विधान हो सकते हैं । सामान्यत: नगर में कचरे का संग्रह एक बृहत् समस्या ही बन गयी है । हर दिन निश्चित समय पर आने वाली घंटागाड़ी में कूड़ा डालना सामान्य रूढ़ी है। इसके साथ ही, कचरे का वर्गीकरण करते हुए, उसे अन्यान्य रीति से निपटाया जा सकता है । हमारे द्वारा संग्रहित कचरे में सामान्यत: सब्जी का अवशिष्ट, बीज, करकट या बासी पदार्थ, कागज ाही अधिक होता है । किसी एक स्थान में इनका संग्रह करते हुए, इसमें थोड़ीसी मिट्टी मिला कर अच्छा खाद तैयार करते हुए, घर के परिसर में उगाई गईं फूलझाडियों आदि में डाल सकते हैं । प्लास्टिक, ब्लेड, कांच आदि परिसरनाशक वस्तुओं को घंटागाड़ी में डाल सकते हैं । लेकिन घर में संग्रहित कचरा, एक तो कचरा-डिब्बे में डालना चाहिए, अथवा कूड़े-करकट का गड्ढा, यदि घर के आसपास हो, तो वहाँ तक जाकर उसमें डालना चाहिए । सामान्यत: सूर्यास्त के बाद कचरा डालने की पद्धति नहीं है ।

४. झाडू लगाते समय झाडू का स्पर्श किसी दूसरों को न हो इसकी सजगता आप बरतते हो?

सफाई करते समय आसपास बैठे, खड़े या आना जाना करने वालों का ध्यान रखते हुए, उनको झाडू का स्पर्श न हो इसकी सावधानी बरतनी चाहिए। झाडू याने सफाई

का एक साधन है और उसमें धूल-कूड़ा आदि भरा होता है; साथ ही उसके नुकीले अग्र आँखों या शरीर को लग जाने से, उनको कष्ट हो सकता है । इसीलिए झाडू किसीको भी न लगे, ऐसी सजगता बरतनी होगी ।

५. क्या झाडू रखने की कोई निश्चित स्थान है?

झाडू को घर के सामने या किसी भी महत्वपूर्ण स्थान में नहीं रखना चाहिए । घर के दरवाजे के पीछे या किसी के दृष्टि में न आए ऐसे स्थान पर रखने की पद्धति है ।

६. कितने दिनों में एक बार अपने घर की भूमि पानी से धोते हो?

घर का आंगन, घरके अंदर की रसोई व देवगृह हर दिन पानी से साफ करने चाहिए । शेष शयन कक्ष, चौकी, बरामदा आदि में जैसी भूमि होती है, उसीके अनुसार धोना चाहिए । पुराने जमाने में गोबर से पुताई करने के कारण, शुक्रवार, मंगलवार, पूरणमासी, अमावस इस प्रकार गोबर-पुताई करते थे । तब घर भी बहुत बड़े होते थे । लेकिन आजकल घर छोटे होते जा रहे है तथा किसीके लिए भी पृथक स्थान नहीं होते। सभी काम एक-दो कमरों में ही करने की अनिवार्यता रहती है । आजकल नगरों में सिमेंट या टाइलों से फर्श धरती बनाई जाती है । इसीलिए उसे हर दिन पानी से धोना उचित होगा ।

७. घर का अंदरूनी व ऊपरी भाग तथा दरवाजों का पिछला भाग कब, कितने दिनों में एक बार साफ करते हो?

प्राय: दरवाजों के पिछला भाग हर दिन साफ करना चाहिए। क्योंकि, सामान्यत: बीमारी फैलाने वाले मच्छर, कनखजूरे, छिपखलियाँ, अन्य कीट आदि इसी स्थान में आश्रय पाते हैं । इनको घर की नित्य सफाई के समय ही स्वच्छ् करना उचित है। यह काम आहार तैयार करने के पहले सुबह ही करना चाहिए । शाम में यह काम निषिद्ध है। अब घर का ऊपरी भाग हफ्ते या पखवाड़े में एक बार तो स्वच्छ् करना ही चाहिए। यह काम सुबह के समय ही, वह भी स्नान के बहुत पहले करना चाहिए। श्रमजीवियों के घरों में अमावस के दिन पूरा घर साफ करने की परंपरा ही चली आयी है।

८. क्या आपके घर में पानी डाल कर पोंछा लगाने की पद्धति है?

प्राचीन काल में घर को गोबर से परिशुद्ध किया जाता था । घर सदैव शुद्ध रहता

चाहिए । अत: हर दिन घर की जमीन पर पानी छिड़क कर या कपड़ा गीला करते हुए पोंछने की पद्धति का अनुसरण करना चाहिए । इससे घर में फैली धूल का निवारण होता है । मच्छर आदि कम होते हैं । यहाँ हम अतिविषकारी न हो ऐसे प्राकृतिक क्रिमिनाशक, नीम, तुलसी आदि का उपयोग कर सकते हैं ।

९. रसोई/भोजन पकाने के बाद, क्या वह जगह पानी छिड़क के साफ करते हो? या आपके घर में उसकी आवश्यकता ही नहीं है?

आधुनिक काल में, 'करकट' इस शब्द ने अपना अर्थ ही खो दिया है । वास्तव में आहारपदार्थों को नीचे रखते समय, यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वह जगह स्वच्छ् है या नहीं? उसी प्रकार, उन पदार्थों को बाहर निकालने के बाद भी उस स्थान को स्वच्छ् करना चाहिए। क्योंकि, हम यह नहीं कह सकतें कि रोगाणु व सूक्ष्मजीवियों का स्थान "केवल यही है ।" बिना परीक्षण के उस स्थान पर आहारपदार्थों को रखने से, वे पदार्थ उनके आक्रमण का शिकार अवश्य होते हैं । उसी प्रकार, आहार स्वीकार करने के पश्चात् भी उस स्थान को स्वच्छ् किए बिना रहें, तो वहाँ पर भी उन कीटाणुओं का संवर्धन अवश्य होता है । घर में मोजाइक टाइल्स होने पर भी, इस पद्धति का पालन करना चाहिए ।

१०. क्या आपको घर में पड़ा कूड़ाकचरा दिखायी देता है? कैसे? वैसा दिखने पर आप क्या करते हो?

कुछ प्रकार का कचरा ही आँखों को दिखायी देता है और कुछ न दिखायी देते हुए, स्पर्श मात्र से समझ में आता है । वैसे दिखायी दिये कचरे को तुरंत निकाल देना चाहिए । घर वड़ा होने पर, पूरा कचरा एकत्रित करते हुए, एक ही बार उठाने के स्थान पर, संबंधित स्थान का कूड़ा जमा करते हुए, उसे बाहर निकाल फेंकना ही उचित होता है ।

११. क्या घर का आंगन हरदिन रंगोली से सजाते हो?

देवता शुद्धता व अलंकारों की अपेक्षा करते हैं । घर भी एक देवालय ही है, इस सद्भावना के साथ घर को भी साफसुथरा बनाते हुए, घर को मंगलद्रव्यों से अलंकृत करना एक शिष्टाचार है । अत: प्रात:काल में ही रंगोली डालने की पद्धति है । इससे यह संकेत प्राप्त होता है कि उस घर में सब कुछ मंगलमय है ।

१२. क्या बगैर रंगोली के दिन भी होते हैं? कारण क्या होता है?

सामान्यत: जिस दिन घर में अशौच्य होता है, उस दिन रंगोली नहीं डाली जाती । जिस दिन पितृ श्राद्ध होता है, उस दिन रंगोली नहीं डालनी चाहिए । क्योंकि, पितृदेवताओं को अलंकार नहीं भाता, इस कारण से श्राद्ध के दिन रंगोली आदि मंगल परिकर वर्ज्य मानने की रूढि हमारे पूर्वजों ने डाल रखी हैं ।

१३. आपके घर में सबको रंगोली डालना ज्ञात है?

रंगोली ललितकलाओं में से एक है । कला याने प्रमुखता से अपने मन की अभिव्यक्ति होती है। हर एक को अपने मन की भावनाओं को प्रफुल्लित करने में रंगोली सहयोग देती है । अत: यही उचित है कि यह भी एक कला ही है, इस धारणा के साथ सब लोग उसे समझ लें ।

१४. आप घर में देवता के सम्मुख दिया जलाते हो?

भो दीप ब्रह्मरूपेण सर्वेषां हृदि संस्थित: ।
अतस्त्वां प्रार्थयाम्यद्य मदज्ञानमपाकुरु ।।

"हे दीप! आप ब्रह्म के रूप में सबके हृदयों में वास करते हो । अत: मैं आपकी प्रार्थना करता हूँ कि मेरे अज्ञान का नाश कीजिए ।"

दिये के बारे में हमारे मन का विश्वास यही है । स्वयं जलते हुए विश्व को प्रकाश दे सकने की शक्ति से युक्त दिया जीवन का आदर्श है। हमें भी दिये की भाँति होना चाहिए, ऐसा संदेश दिये के जलने में है । अत: हमको भी दीपक सा ही जीवन जीना चाहिए । अब प्रश्न उठता है कि वह भगवान के सम्मुख ही क्यों? सृष्टि का आदि व अंत वही है न? अत: हम भी दीपक जैसे बन कर, ईश्वरीय कार्य के लिए अपना जीवन व्यतीत करें, इसी उद्देश्य से हम भगवान के सामने दीप जलाते हैं । प्रात: स्नान के पश्चात्, तथा शाम में शुचिर्भूत होकर ईश्वर को वंदन करते हुए, "हमारा अज्ञान दूर कीजिए" इस श्रद्धा-भक्ति के साथ हम प्रार्थना करते हैं । हम प्रकाश के आराधक हैं ।

भक्त्या दीपं प्रयच्छामि देवाय परमात्मने ।
त्राहि मां नरकाद्घोरात् दिव्यज्योतिर्नमोऽस्तुते ।।

"हे परमात्मा! मैं भक्ति से दिया जला रहा हूँ । ज्योतिस्वरूपी आप, मुझे नरक यातना से पार कीजिए यही मेरी प्रार्थना है ।"

१५. **आपने ऐसा कोई घर देखा है जहाँ नंदादीप याने कभी भी न बुझने वाला दीप सदा जल रहा है?**

'नंदादीप' जलाने वाले घर अनेक हैं । हम सब भारतीय (भा = प्रकाश, रत = आसक्त) याने प्रकाश की पूजा करने वाले हैं । हमारे घरों में प्रकाश सदैव रहता है । मनुष्य का अंतरबाह्य अंधकार दूर करना ही दिया जलाने का संकेत है । 'न बुझे कभी यह दिया' यही आशय है ।

१६. **क्या घर में सुबह कोई भी श्लोक, गीत, वचन, अभंग आदि दोहराने का क्रम है?**

सुबह मन बहुत ही आह्लादमय व संतुष्ट होता है । उस संतुष्ट मन के भाव से ईश्वर का स्तवन करना चाहिए । इस तरह सुबह किए स्तवनों के कारण ही मन प्रशांत होता है और घर में मंगलमय वातावरण बनता है। साथ ही इससे हमारी कंठशुद्धि भी संभव हो सकती है । इसेही प्रात:स्मरण कहते हैं ।

१७. **व्यक्तिगत रूप में दोहराते हो? या सब मिल कर?**

व्यक्तिगत रूप में दोहराना सामान्य प्रथा है । लेकिन सब मिल कर दोहराने से परिणाम व संस्कार भी अधिक होता है । अत: सबको इस कार्य में जुटाने और उस समय सबको उपस्थित रहने की प्रेरणा दे सकते हैं ।

१८. **क्या आपके यहाँ ऐसे वैशिष्ट्यपूर्ण प्रात:स्मरण का क्रम है? इस संदर्भ में बड़ों का अभिप्राय क्या है?**

हर घर में भी उसका ही ऐसे वैशिष्ट्यपूर्ण प्रात:स्मरण का क्रम होना आवश्यक है। अत: उसका समायोजन करना चाहिए । प्राचीन काल में ऐसा होता था । विवक्षित कुल, उनका विश्वास, कार्य तथा स्वभाव के अनुरूप वैशिष्ट्यपूर्ण प्रात:स्मरणों का क्रम चलता था । अपने बच्चों को भी अपने घर के प्रात:स्मरण का अभिमान होता था व विशेषता भी समझी जा सकती है ।

१९. **क्या प्रात:स्मरण के कुछ श्लोक आपके घर में सबको आते हैं?**

घर के सब सदस्यों को जीवन की प्रेरणा देने वाले महानुभावों, साधना किए हुए सभी साधकों एवं अपने इस जीवन और समाज के लिए त्याग किए हुए महात्माओं के

कार्य-कृति का स्मरण करने जैसे वैशिष्ट्यपूर्ण प्रात:स्मरण क्रम का होना अतीव आवश्यक है । 'महासंकल्प' नामक विशिष्ट संकल्प प्रकार में सृष्टिरचना से आरंभ कर, इस देश की अपनी संस्कृति की ज्ञानराशि में बताए गए सभी विवरणों से लेकर भूयिष्ट राष्ट्र के वैभव के बारे में बताया गया है ।

महासंकल्प: यह भारतीय साहित्य रचना की अत्यद्भुत बातों में से एक है । भारतीयों का सघन ज्ञान, देश की अगाधता, विगत महापुरुषों की जीवनगाथाएँ, संपूर्ण सृष्टि का दिग्दर्शन, यहाँ के पुण्यनगरों का परिचय, नद-नदी-पर्वतों समेत भौगोलिक तथा सांस्कृतिक चारिय, इस भूमि में जन्मे विभूतिपुरुष, महातपस्वी, चक्रवर्ती-सम्राट, महापतिव्रता महिलाएँ आदियों का स्मरण दिलाने वाली अति विशिष्ट संरचना है यह। 'स्वयं कौन है?' इसे समझने के लिए हर हिंदू द्वारा इसका पठन होता गया तो भी पर्याप्त है । इसी कारणवश सभी पुण्यमय/शुभ कार्यक्रमों में इसका परिचय कराया जाता है ।

उसे दोहराते समय, इस देश का भव्य इतिहास, सभ्यता, नागरिकता आदि देखने को मिलते हैं । इसमें कोई संदेह नहीं है कि इससे हमारा उत्साह सौ गुना बढ़ता है । यह सब कुछ न बताने पर भी, हर दिन प्रात:स्मरण- सुप्रभात आदि का पठन करना एक सत्परंपरा है ।,

२०. क्या घर के सबको अपने पूर्वजों की उत्तम उपलब्धियाँ ज्ञात है?

अपना यह जीवन याने अपने पूर्वजों द्वारा हमें दिया हुआ आशीर्वाद है । उन्हीं के मार्गदर्शन में हम जीवनयापन करते हैं । अत: हमें उनका स्मरण करना आवश्यक है । लेकिन उन पुरखों को भी ये सभी बातें किसने समझायी हैं? इस प्रश्न का उत्तर प्राय: "किसी एक ने नहीं; अनेक नाम तथा पीढ़ियाँ हो सकती हैं ।" हर परिवार का एक इतिहास है । उस इतिहास को घर के हर एक को समझना होगा । इसके साथ ही अपने घर के समूचा वंशवृक्ष, उपलब्धियाँ आदि सब तैयार कर के रखते हुए, हमें ही उन्हें अपनी आगे की पीढ़ियों को हस्तांतरित करना और वे उसे आगे बढ़ाते रहें, ऐसी प्रेरणा उनमें जगानी पड़ेगी । उनकी उपलब्धियाँ हमारे लिए भी श्रेयोदायक हैं तथा पूर्वजों के चरित्र से हमें मार्गदर्शन भी होता है।

देवगृह,
प्रतिमाएँ, अलंकार

१. क्या आपके यहाँ ईश्वर के बारे में विश्वास बढ़ाने वाला वातावरण है?

अपने हिंदू समाज का प्रबल विश्वास है कि अपने जीवन के हर पड़ाव पर भगवान का अस्तित्व अवश्य होता है तथा हम भगवती के रूप में अपने आसपास की प्रकृति की भी आराधना करते हैं । इस संसार के सभी क्रियाकलापों के लिए एक शक्ति कारणकर्त्री है । देवता या भगवान इस रूप में हम इसी शक्ति की ही आराधना करते हैं ।

२. क्या पूजा के पश्चात् सब आरती, प्रसाद का स्वीकार करते हैं?

भगवान से अनुग्रहीत हुए हमको उसकी आरती, तीर्थ, प्रसाद स्वीकार अवश्य करना चाहिए । अत: सामान्यत: आरती के समय घर के सबको बुलाने की पद्धति है । तद्नुसार सबको भक्तिपूर्वक भगवान की अर्चना कर के नमस्कार करते हुए, प्रसाद लेना चाहिए ।

३. आपके घर में देवता के लिए अलग स्थान है?

देवता की संकल्पना होती है आत्मोन्नति के लिए । समूचे वातावरण व निसर्ग में सब दूर ईश्वर है ही; वह अंतरंग में भी है । ऐसा होने पर भी, क्या देवता के लिए घर में अलग स्थान की आवश्यकता है? इसका उत्तर है हाँ । सभी घरों में देवता का अलग स्थान अवश्य होना चाहिए । वहाँ का वातावरण, उसके उद्देश्य के अनुकूल होना चाहिए। वह केवल उसके लिए एक स्थान है; इसके बदले, हमें इसका पता होना चाहिए

कि उस मंगलमूर्ती को समझने के लिए आवश्यक एकांत दिलाने में सहयोगी हो सकने वाले स्थान की अवश्यकता होती है, जिसके द्वारा हमें उसे समझ लेना संभव होता है ।

४. क्या हर दिन एक बार तो देवता के सामने नमस्कार करते हो?

हर कुटुंब के सभी सदस्य हर दिन सुबह-शाम देवता के सामने नमस्कार करना चाहिए । शुभ कामों के आरंभ में, किसी काम के लिए बाहर जाते समय, गांव जाने निकलते समय, देवालय जाने पर देवता को नमस्कार करना चाहिए ।

५. क्या आपके घर में देवता को नमस्कार करने की कोई विशिष्ट पद्धति है?

बच्चे सुबह बिस्तर से उठते समय दाहिनी ओर से उठ कर, किसी देवता के भावचित्र या प्रतिमा को हाथ जोड़ कर, सिर नवाँ के नमस्कार करने की पद्धति उत्तम होती है । स्नान के पश्चात् धूतवस्त्र धारण कर, देवता को नमस्कार करना चाहिए । घर से बाहर जाते समय, देवता व वरिष्ठ जनों को नमस्कार कर के जाना चाहिए । जीवन में कोई उपलब्धि प्राप्त करने पर, शाला में उत्तीर्ण होने पर, नौकरी आदि लगने पर, हर प्रकार के संतोषप्रद प्रसंग में देवता को नमस्कार करना चाहिए ।

नमस्कारों में भी नाना प्रकार हैं । हाथ जोड़ना, सिर नवाना, घुटने टेकना, हाथों के आधार पर सिर जमीन को लगा कर नमस्कार करना, दोनों हाथ-घुटने-पैर-सीना तथा भाल ये सारे जमीन को लगा के नमस्कार अर्थात् साष्टांग प्रणाम - ये सारी नमस्कार की पद्धतियाँ ही हैं । कुछ लोग, दोनों हाथ ऊपर उठा के, हाथ के तलुवों को जोड़ कर नमस्कार करते हैं। संबंधित व्यक्तियों की भक्ति-शक्ति-संदर्भों के अनुसार नमस्कार करने की पद्धति है । अपनी परंपरा से बद्ध कुछ और लोग अपने दोनों हाथों से अपने दोनों कानों को स्पर्श करते हुए, सिर नवाँ कर अपने गोत्र के कारणकर्ता ऋषि का स्मरण दिलाने वाला प्रवर बता कर नमस्कार करते हैं। इन सबको सीख कर, अपने संस्कारों के अनुरूप नमस्कार करने की पद्धति होनी चाहिए । एक बात ध्यान में रखें। एक ही हाथ से किया हुआ नमस्कार, नमस्कार नहीं होता । वह हमारे लिए हितकर भी नहीं । महर्षि व्याघ्रपाद की सूक्ति इस प्रकार है :

जन्मप्रभृति यत्किञ्चित् सुकृतं समुपार्जितम् ।
तत्सर्वं निष्फलं याति एकहस्ताभिवादनाम् ।।

"एक ही हाथ से नमस्कार करने वाले लोग जन्म से अर्जित किया सभी पुण्य गवाँ लेते हैं।" इसीलिए दोनों हाथ जोड़ते हुए ही नमस्कार करने की प्रथा अपनानी चाहिए।

६. देवता के सम्मुख क्या आपके दूसरे कोई कार्यकलाप होते हैं?

हमारे द्वारा देवता के प्रति दर्शाए जाने वाले गौरव का बहुत ही सुलभ प्रकार है नमस्कार । इसके साथ, हर दिन स्नान के बाद पूजावस्त्र धारण कर न्यूनतम आधा घंटा तो जप-तप-ध्यान करना चाहिए । किसी भी देवता की प्रतिमा रख कर, उसकी यथासंभव षोडषोपचार पूजा करनी चाहिए । अनंतर तीर्थ-प्रसाद सेवन करना चाहिए । देवता को तैयार आहार का भोग चढ़ा कर, प्रसाद के रूप में उसका सेवन करना चाहिए । शुभ प्रसंग, विवाह वर्धापन दिन, बच्चों के वर्धापन दिवस आदि प्रसंगों पर देवता की विशेष पूजा-अर्चना करनी चाहिए । विशेष तीज-त्योहार, ब्रत, कथा, सत्संग, भजन आदि सब देवता के सम्मुख हमारे द्वारा चलाए जा सकने वाले भक्ति के कार्य हैं । इसके अतिरिक्त सूर्यनमस्कार, रुद्राभिषेक, होम-हवन, पारायण आदि भी देवता के कार्य ही हैं ।

७. देवता को नमस्कार करते समय क्या दिया जल रहा है या नहीं, इसकी ओर आप ध्यान देते हो?

दीपज्योति: परब्रह्म दीपज्योति: परायणे ।
दीपेन हरते पापं सायं दीप नमोऽस्तु ते ।।

इस प्रकार दीप अर्थात् ज्योति को परब्रह्म वस्तु के रूप में देखा गया है। सभी जीव जगत् का शक्तिस्रोत रूपी सूर्य भी ज्योतिस्वरूप ही है । सूर्य की सीधी आराधना नहीं कर सकते, अत: हम दीप (ज्योति)रूप में पूजा करते हैं। इसीलिए उस प्रकाश से देवत्व का प्रकाश हमारे हृदय में स्थिर हो, इस उद्देश्य से देवता को नमस्कार करते हुए दिया जला कर, उसके प्रकाश में देवता की आराधना करनी चाहिए । इसके पीछे यही भाव है कि हमारा प्राण ही बाती है व भक्ति ही तेल । इस भावना से दिया जलाना चाहिए कि इन दोनों को मिल कर परमज्योति प्रकाशित हो ।

८. क्या आप देवता का अलंकार करना जानते हो?

देहो देवालय: प्रोक्तो जीवो देव: सनातन: ।
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहंभावेन पूजयेत् ।।

यह देवता पूजा के संदर्भ में दोहराने योग्य श्लोक है । इसका अर्थ है : "हमारा देह ही देवालय है; यह जीव ही ब्रह्मस्वरूप है; अत: अज्ञान नामक निर्माल्य को निकाल

कर, मैं ही हूँ वह याने ब्रह्मतत्व, ऐसा समझ कर पूजा कीजिए ।'' इसेही श्री बसवेश्वर महोदय ने दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा है : ''मेरे पैर ही स्तंभ हैं, देह ही देवालय है और सिर ही सुवर्ण कलश है।''

तद्नुसार, यह प्रथा है कि हम जो भी उपचार अपने लिए करते हैं, उन सबको देवताप्रीत्यर्थ भी करने होते हैं । उसी के अनुसार, देवता को भी हम फूल–गंध–अक्षत–गहने–वस्त्रप्रावरणों से अलंकृत करते हुए, धन्यता का अनुभव करते हैं । अपनी दिव्यता को उस प्रतिमा में अवधारित करते हुए तृप्त होते हैं । देवतालंकार करना एक कला है । एक उक्ति के अनुसार ''अलङ्कारप्रियो विष्णुः'' (विष्णु अलंकार प्रिय है ।)

९. आपके यहाँ देवता के अलंकार की सामग्री है?

देवपूजा के विधान में देवता की प्रतिमा को मंडप में रख कर, फूल–मालाओं, पल्लव–तोरणों से अलंकृत करते हैं । दूध–दही–घी–शहद–चीनी आदि मिला के बनाए पंचामृत से अभिषेक भी करते हैं। सान का पत्थर–चंदन का तना तथा हल्दी–कुंकुम–अक्षत–कटिवस्त्र–कर्पूर–अगरबत्ती–धूप–दीप आदि सब मंगलद्रव्य भी आवश्यक होते हैं। इनके साथ ही पूजा के संदर्भ में अतीव आवश्यक बात भक्ति भी होनी चाहिए। आवश्यकतानुसार अलंकार सामग्री का संग्रह करना चाहिए तथा वे नष्ट न हो, इसकी सावधानी बरतनी चाहिए ।

१०. 'नमस्कार' शब्द के बदले कोई दूसरा शब्द उपयोग में लाते हो?

परमात्मा को नमस्कार करते समय तथा मनुष्यों को नमस्कार करते समय अलग–अलग प्रकार के शब्दों का उपयोग अन्यान्य प्रदेशों में किया जाता है – जैसा नमामि, शरणु, नमस्ते, प्रणाम, वणक्कम्, सत् श्री अकाल, राम–राम आदि शब्द योग्य ही हैं ।

११. क्या आपको पता है कि विशेष त्योहार तथा उनको मनाए जाने के दिन कौनसे हैं?

अपने बच्चों को हमारे तीज–त्योहारों का परिचय करा देने हेतु, हमारे पूर्वजों ने एक कोष्ठक ही तैयार किया है :

प्रतिपदा	–	चैत्र शु.प्रतिपदा, बलि प्रतिपदा
द्वितीया (दूज)	–	भाईदूज

तृतीया (तीज)	–	अक्षय तृतिया, गौरी तृतिया
चतुर्थी (चौथ)	–	गणेश चतुर्थी, करवा चौथ
पंचमी	–	बसंत पंचमी, नाग पंचमी, रंग पंचमी
षष्ठी (छठ, छठी)	–	चंपा षष्ठी, सुब्बराय षष्ठी, छठपूजा
सप्तमी	–	रथ सप्तमी
अष्टमी	–	जन्माष्टमी, दुर्गाष्टमी
नवमी	–	श्रीराम नवमी, महा नवमी, दुर्गा नवमी
दशमी	–	दशहरा, विजया दशमी
एकादशी	–	शयनी एकादशी, देवोत्थान एकादशी
द्वादशी	–	उत्थान द्वादशी
त्रयोदशी	–	धन तेरस, शनि तेरस
चतुर्दशी	–	नरक चतुर्दशी, अनंत चतुर्दशी
पूर्णिमा (पूनम)	–	व्यास पूनम, बुद्ध पूनम, होली पूनम,
अमावास्या	–	महालया अमावस, भीम अमावस

इस प्रकार मुखोद्गत करने पर, बच्चों को १६ तिथियाँ तथा उनसे संबंधित त्योहार सहज समझ में आते हैं । उसी के साथ सावन महीने में मनाए जाने वाला वरमहालक्ष्मी व्रत, भाद्रपद तृतिया का स्वर्णगौरी व्रत, उसी महीने की शुक्ल चतुर्दशी का अनंतपद्मनाभ व्रत, केदारेश्वर व्रत, भाद्रपद की महालया अमावस, मकर संक्रमण की संक्रांति, चैत्र शु. प्रतिपदा (युगादि), नवमी के दिन रामनवमी, दास नवमी, वैशाख पूनम की बुद्ध जयंति – इन सभी दिनों का महत्व बच्चों को बता कर, इन्हें हम क्यों मनाते हैं? यह भी समझाने पर उनको तीज–त्योहारों का महत्व समझ में आ सकता है ।

१२. क्या आपके घर में सब लोग अपने भाल पर तिलक के रूप में कुछ तो लगाते हैं?

अपने भक्तों के भावानुसार भगवान उन पर अनुग्रह करते हैं । उसी प्रकार विभिन्न पंथ–संप्रदायों से संबद्ध लोग पृथक-पृथक रीति से अपने–अपने मतानुसार मार्ग भी दर्शाते हैं । इस तरह, भाल पर कुछ लोग तिलक लगाते हैं, तो कुछ विभूति (भस्म) धारण करते हैं; कुछ नाम धारण करते हैं, तो कुछ मुद्रा; अधिकांश लोग सामान्यत: कुंकुम धारण करते हैं। ये सभी स्वागतयोग्य ही हैं । भालप्रदेश मुख का प्रमुखता से दिखायी देने वाला अंग है तथा भ्रूमध्य में अपने देह के षट्चक्रों में से प्रमुख आज्ञा चक्र

होता है । इसके ऊपर कौनसा भी चिह्न धारण करने से आँखों का तेज क्षीण नहीं होता और मन दृढ़ बनता है । सबसे अधिक, अपने मुख की कांति बढ़ती है । इसीलिए हर एक को अपने भाल पर अपनी इष्ट पद्धति से तिलक आदि करना चाहिए। "मैं स्वस्थ हूँ, प्रसन्न हूँ इस भाव का संकेत है" अपने भाल का तिलक ।

१३. भाल पर तिलक न करने के संदर्भ कौनसे हैं?

जब कभी हम किसी शोक से संबंधित अपर-क्रियाओं में सहभागी होते हैं; अपने आप्तों के वियोग के अथवा श्राद्ध कर्म करते समय, अपने भाल पर तिलक आदि कुछ भी नहीं करना चाहिए । शेष सभी समय में भाल पर कोई भी तिलकचिह्न धारण करना चाहिए ।

१४. अपने भाल पर लगाए जाने वाली वस्तु तथा ढंग एक ही प्रकार से रखते हो या परिवर्तन करते रहते हो?

हम अपने-अपने आचार-विचारों के अनुसार भाल को अलंकृत करते हैं । अत: उसी पद्धति से तिलकालंकार जारी रखना श्रेयस्कर होता है । फिर भी देश-काल के अनुसार उसमें परिवर्तन करना भी अच्छा है ।

१५. यदाकदा तिलक न करने पर, उसका स्मरण करा देते हो?

यदाकदा भाल पर तिलक करना कभी भूल जाने पर देखने वाले को इसका पता तत्काल लग जाता है । कारण पूछ कर, अकस्मात भूल गए हो, तो उसका स्मरण दिलाना योग्य होगा । उनमें भी महिलाओं द्वारा भूल हुयी हो, तो उनका सौंदर्य क्षीण होने लगता है ।

१६. आपके घर में, सब मिलके दोहरा सकने वाले क्रम कौनसे हैं?

आपके घर में सामान्यत: गणपती, सरस्वती, नवग्रह स्तोत्र, शिव स्तुति, देवी स्तुति, णमोकार मंत्र, सुख मणी आदि सबका पठन हर दिन करते हुए, बच्चों को भी सिखाना अच्छा होगा । इससे बच्चों की जिव्हा भी अच्छी तरह से घूम के संस्कृत वाक्य स्पष्टता से उच्चार तथा ग्रहण करने में अनुकूलता होती है। आरंभ में छोटे-छोटे श्लोक बता कर, क्रमेण बड़े-बड़े श्लोकों का अभ्यास कराना चाहिए ।

१७. आपके घर में सब मिल के दोहरा सकने वाले मंत्र कौनसे हैं?

सामान्यत: सभी घरों में भी भोजन मंत्र, ऐक्य मंत्र (शांति मंत्र) आदि सीखना चाहिए। इसीके साथ, बच्चों को विष्णुसहस्त्र नाम, भगवद्गीता, अमरकोष, एकात्मता मंत्र आदि भी सिखा कर सब मिल के इनका पाठ करना चाहिए।

१८. आपके घर में, सब मिलके दोहरा सकने वाले भजन कौनसे हैं?

सांमूहिक रूप से दोहरा सकने वाला लिंगाष्टक, अन्नपूर्णेश्वरी स्तोत्र, गुरु भजन, भज गोविंदम्, बसवेश्वर के वचन, विष्णु सहस्त्रनाम आदि का सब मिल कर पारायण कर सकते हो। एकता के मंत्र भी दोहराने चाहिए। इतना ही नहीं दासों के पद, वचन, संतों के गीत, चौपाइयाँ, दोहे, अभंग आदि भी गा सकते हैं।

तोरण - देहलीज

१. क्या आपके घर में देहलीज है?

हर हिंदू घर में अनिवार्य रूप में देहलीज या देहरी होती है । प्राचीन समय में घर के सभी प्रवेशद्वारों को देहरियाँ हुआ करती थीं। यह दीवारों की तथा घर की मजबूती के लिए भी अनिवार्य था। अपनी धारणा भी थी कि देहरी लक्ष्मीस्वरूपा होती है। इसीलिए आज-कल कितना भी आधुनिक बंगला बाँधा गया हो, उसका प्रवेशद्वार तथा पिछला दरवाजा इन दोनों को देहरियाँ अवश्य होती हैं। (नई दुल्हन के स्वागत के लिए भी देहलीज को सजाया जाता है।) सभी शुभ संदर्भों में भी देहरी का अलंकार करना एक परंपरा है ।

२. क्या हर दिन देहरी को सजाते हो?

घर से बाहर निकलते तथा वापस घर आते समय, देहरी को लाँघ के जाते/आते हैं। हमारी धारणा है कि घर से बाहर जाते समय, हमारे पीठ पर दैवरक्षा होती है तथा घर के अंदर आते समय, हठात् कोई दुष्ट शक्ति हमारे साथ आयी हो, तो देहरीस्थित वास्तुदेवताओं के कारण, उसका निराकरण होता है । इसीलिए हमारे लिए इस तरह श्रेयस्कर रही देहरी को पानी से धोकर, हल्दी-कुंकुम-फूलों से अलंकृत करते हुए, उसकी पूजा करनी चाहिए। इससे घर की शोभा भी बढ़ती है ।

३. क्या देहरी की पूजा करने का कोई दिन है?

देहरी की नित्य पूजा करने के पश्चात् ही घर से बाहर पग रखना चाहिए। इस तरह पूजा करते समय, महिलाएँ सदैव अपने घर में समृद्धि पधारें ऐसी प्रार्थना करते हुए,

वास्तुदेव नमस्तुभ्यं भूशय्यानिरत प्रभो ।
मद्गृहे धनधान्यादिसमृद्धिं कुरु सर्वदा ।।

(हे भूमिशायी वास्तुदेवता! तुम्हें मैं नमस्कार करती हूँ । अनुग्रह ऐसा करिए जिससे मेरे घर में धनधान्यादि समृद्धि सदैव रहें ।)

इस अर्थ का यह श्लोक दोहराती हैं । अपरिहार्य प्रसंगों में अथवा अशौच्य वाले दिनों में यह पूजा नहीं करनी चाहिए । तीज-त्योहारों में, घर के मंगलकार्य आदि विशेष दिनों में घर की देहरी को विशेष कर आम्रपल्लवों के तोरणों, फूल-मालाओं से अलंकार करते हुए, उसकी पूजा करनी चाहिए ।

४. क्या जन्मा बच्चा पहली बार देहरी पार करने के प्रसंग को आप मनाते हो?

सामान्यत: देहलीज घर की जमीन से थोड़ी ऊँची होती है । इस देहरी को लाँघना उस बच्चे का एक साहस ही है । इसे देख पाना प्रौढ़ो के लिए एक अद्भुत प्रसंग होता है । इसे षोडष संस्कारों में एक ऐसा मानते हुए, उसे 'निष्क्रमण' कहा गया है । इस प्रकार बच्चा देहरी लाँघने पर, उसे देहरी के सामने बिठा के, दिया जला कर, देहरी की पूजा करते हुए, मिठाई खिला कर बच्चे की आरती उतारनी चाहिए। इससे बच्चों को अपने साहस का आनंद होता है । सुहागनों को कुंकुम, बीड़ा देकर विशेष खाना पका कर, इसे एक पर्व के रूप में मनाना चाहिए ।

५. क्या घर के सबको यह पता है कि देहरी को पैर नहीं लगाना चाहिए?

यह हमारा धार्मिक विश्वास है कि देहलीज में घर के वास्तुपुरुष का वास होता है । तथा देहरी लक्ष्मीस्वरूपा है । देहरी ही घर के सभी सद्भाग्यओं का मूल भी है। अत: जिसे हम देवतास्वरूपी मानते हैं, ऐसी देहरी को पैरों से छूना, रौंदना, उस पर बैठना, बैठ के खाना खाना आदि सर्वथा निषिद्ध है । इसके बारे में बच्चों को भी समझाना चाहिए कि वे भी देहरी को पैरों से स्पर्श न करें तथा उसका गौरव करें ।

६. क्या आपके घर में तोरण बाँधने की प्रथा है?

घर में तीज-त्योहारों तथा शुभ कार्यों के दिनों में सभी लोग तोरण लगाते हैं। हरे,

कोमल आम्रपल्लव शुभत्व का संकेत हैं । इसी के साथ, हमारे पूर्वजों ने आम्र तथा नीम का तोरण बांधने का वैज्ञानिक सत्य भी प्रकट किया हैं । चूंकि उनको मालूम था कि इन वृक्षों के पल्लवों तथा टहनियों का तोरण बांधने से मच्छर, मखियाँ आदि क्रिमि-कीट घर के द्वार से अंदर नहीं आते । इसी के साथ, हरा रंग मन को आनंद दिलाने वाले समृद्धि-शांति का प्रतीक भी है। इसीलिए तोरण बांधना एक अच्छी प्रथा है ।

७. कितनी चौखटों पर तोरण बाँधते हो?

घर की सभी चौखटों पर तोरण बाँधना उचित होता है । इसी के साथ, बच्चे के पालने और अंदरूनी चौखटों पर मोतियों का तोरण बाँधने से घर का सौंदर्य बढ़ जाता है। छोटे-छोटे घुंघुरुओं से बनाया तोरण देवगृह का पाविय वृद्धिंगत करता है । हर घर में न्यूनतम दो दरवाजों पर तो तोरण अवश्य बाँधना ही चाहिए ।

८. वर्ष में कितनी बार तोरण बदलते हो?

चैत्र शु प्रतिपदा (युगादि, पड़वा) से प्रारंभ कर हर प्रमुख त्योहार के दिन हरा तोरण बाँधने की प्रथा है । रामनवमी, वरमहालक्ष्मी व्रत, नाग पंचमी, बसंत पंचमी, जन्माष्टमी, गौरी-गणेश उत्सव, नवरात्रों, दीपावली, संक्रांति ऐसे सभी त्योहारों के दिन भी तोरण बाँधना चाहिए । इसके साथ ही, जन्मदिन-विवाह-उपनयन-चौल-होम-हवन आदि शुभ संदर्भों में भी आम्रपल्लवों का तोरण जरूर बाँधना चाहिए ।

९. आम्रपल्लव नहीं मिलते इसीलिए क्या प्लास्टिक तोरण लगाते हो?

आम्रपल्लवों का तोरण स्वास्थ्य की दृष्टि से भी हितकारी होता है। कृमि-कीट-बैक्टेरिया आदि का निवारण करने में तोरण की भूमिका प्रमुख है । किन्तु, वह नहीं मिलता इसलिए उसके स्थान पर प्लॅस्टिक तोरण बाँधना उचित नहीं । मिलता नहीं या बहुत महँगा है, इसलिए हमारे लिए आवश्यक वस्तुओं को क्रय करना हम कभी भी नहीं छोड़तें । उसी प्रकार, प्रयत्न करते हुए क्यों न हो, हरे आम्रपल्लवों का तोरण बाँधना ही चाहिए; तथा परिसरविनाशी प्लास्टिक का तोरण नहीं बाँधना है ।

१०. क्या आप को नव वर्ष, चैत्र शुद्ध प्रतिपदा या वर्ष प्रतिपदा के दिन आम्रपर्णों के साथ-साथ नीम की टहनियाँ भी बाँधने का क्रम ज्ञात है?

सभी हिंदुओं के लिए यह एक अति पवित्र व अति विशिष्ट ऐसा पर्व है । क्योंकि,

वह नव संवत्सर का आरंभ है; बसंत का आगमन होता है; शिशिर के सभी सूखे पत्तों तथा फल-पुष्पों का त्याग करते हुए, सभी पेड़पौधे हरे कोमल पल्लवों से लहलहाते हैं। यही प्रकृति है। साथ ही, गर्मी के दिन भी उसी समय आरंभ होते हैं। उन दिनों सामान्यत: सांसर्गिक बीमारियाँ अधिक होती हैं। अनेक विध क्रिमि-कीट ही इसका मुख्य कारण हैं। इनके निवारण का रामबाण उपाय याने नीम। यह रोगनिरोधक वनस्पति याने मानव को प्रकृति द्वारा प्रदत्त प्रसाद ही है। इसीलिए घर के हर दरवाजे के ऊपर नीम अवश्य बाँधना चाहिए। इसके अलावा, नीम के इन पत्तों को पीस कर रस पीने से दाँत व त्वचा की समस्याएँ दूर होती हैं। स्नान के जल में नीम मिलाने से शरीर को कांति तथा आह्लाद प्राप्त होता है। आरोग्य भी मिलता है। मच्छर-मक्खियाँ व्याप्त स्थानों पर इसे रखना परिणामकारी होता है।

११. तोरण बाँधने की कला आपके घर में किसे विदित है?

आम्रपल्लवों से तोरण तैयार कर, उसे बाँधना एक कला है। आम्र तोरण के कारण घर वालों की कला परिपक्व होती है। आम्रपर्णों को चुन कर, एक ही आकार वाले कोमल पत्तों को पानी में भिगो के, एक ही आकार में काट कर, विभिन्न प्रकारों में उनको जोड़ते हुए, दरवाजे के चौखट के ऊपर बाँधना एक विशेष कला है। यह कला घर के सभीको पता होनी चाहिए।

विधि-निषेध

१. **जीवन में क्या करना या क्या नहीं करना इसका विधिनिषेध होना चाहिए?**

हम स्वार्थ के लिए नहीं, तो सार्थकता के लिए जीवनयापन करते हैं । यह सार्थक्य तभी आता है, जब हम केवल अपने लिए नहीं, तो दूसरों की भलाई के लिए जीते हैं । आत्मनो मोक्षार्थं जगद्हिताय च (अपनी मोक्षसाधना तथा जगत् का हित करने के लिए ही यह आत्मा है) – यही हमारी श्रद्धा है । इसीलिए इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अच्छे परंतु कष्टसाध्य ऐसे कुछ काम हमें करने होते हैं; कुछ काम बिलकुल नहीं करने चाहिए ।

अकर्तव्यं न कर्तव्यं प्राणै: कण्ठगतैरपि ।
कर्तव्यमेव कर्तव्यं प्राणै: कण्ठगतैरपि ।।

(अर्थात् जो नहीं करना है, उसे प्राण जाए तो भी नहीं करना है तथा जिसे करना है, उसे प्राण देकर भी करना चाहिए ।) अत: इस जीवन में ये दोनों पाबंदियाँ होनीं ही चाहिए ।

२. **परन्तु वह अनावश्यक संघर्ष का कारण बनता है न?**

जीवन की आवश्यक-अनावश्यक बातें सभी के लिए समान तो नहीं होतीं । फिर भी, हम सदैव समष्टि का हित करने वाले व मूल सिद्धांत को च्युति न लाने वाले

विषयों की पुष्टि कर सकते हैं । स्वीकृति न हो या मूल कल्पना से बाहर जाता हो, केवल तभी वह संघर्ष का कारण बनता है। इसीलिए मूल को सही समझ लेना चाहिए और मूल सिद्धांत को ही अपने लिए मनचाही दिशा में उसे मोड़ने वाला काम न करते हुए, समाज स्वास्थ्य के लिए इन विधि-निषेधों का पालन करना चाहिए ।

३. हर कोई अपनी स्वेच्छा या अनुकूलता के अनुसार रहने लगा, तो शेष लोगों को क्रोध आता है न?

धर्मप्रधान जीवन में कष्ट/अनुकूलताएँ अवश्य होती हैं । लेकिन उसीमें सुख होता है । तथापि जहाँ अनुकूलता होती है, वहाँ प्रारंभ में सुख हो सकता है । पर ऐसी कोई बात नहीं कि आगे भी वह आपको सुख ही देता रहेगा । शाश्वत मूल्यों का आग्रह मात्र अवश्य रहना चाहिए । अत: गरुड़ पुराण में ऐसा कहा गया है :

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवं परिषेवते ।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव हि ।।

(जो शाश्वत मूल्यों का त्याग कर अशाश्वत मूल्यों का सेवन करता है, उसे शाश्वत मूल्य तो मिलते ही नहीं; तथा अशाश्वत तो नष्ट ही होता है।)

इसीलिए केवल शाश्वत मूल्यों का ही गौरव करते हुए, समाज-समष्टि का ही चिंतन करना चाहिए तथा उसके अनुसार आचरण किया गया, तो किसको भी कष्ट नहीं होता ।

४. जैसे व्यक्ति के लिए विधि-निषेध हैं; क्या वैसे घर व कुटुंब के लिए भी विधि-निषेध होते हैं?

व्यक्ति कुटुंब का घटक है । कुटुंब समाज का घटक है । उसीके अनुसार यदि व्यक्ति सुयोग्य व्यक्तित्व से युक्त हो, तो कुटुंब भी हृष्टपुष्ट होता है और यदि कुटुंब सुयोग्य हो, तो समाज भी बलवान, सुदृढ़ होता है । इस के विपरीत, यदि व्यक्ति दोषपूर्ण हो, तो कुटुंब भी कलंकित होता है और यदि समूचा समाज भी वैसे ही कुटुंबों से युक्त हो, तो पूरे समाज के लिए समस्या होती है । अत: जैसे व्यक्ति के लिए विधि-निषेध होते हैं; वैसे ही कुटुंब के लिए भी विधि-निषेध रहने चाहिए ।

५. इसका निर्वहन कौन करेगा?

घर तथा समाज इन दोनों के हित के संदर्भ में, विशिष्ट दृष्टि वाले घर के वरिष्ठ या मुखिया अंतिम निर्णायक होते हैं । समाज-स्वास्थ्य व हित के रक्षक साधु-संत ही उस के ज्येष्ठजन या मुखिया के लिए आदर्शप्राय होते हैं । इस देश के लिए परिश्रम तथा बलिदान किए; धर्मविकासार्थ व धर्मध्वजा को ऊँचा रखने के लिए सर्वस्व का त्याग किए, आदर्शवादी वरिष्ट ही इनकी सहायता के लिए आते हैं । अत: सभी ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों का अनुसरण करते हैं, इसका उल्लेख भगवद्गीता इस तरह करती है :

यद्यदाचरति श्रेष्ठः तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।

(श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण का ही अनुसरण अन्य लोग करते हैं । उनके द्वारा चल कर दिखाए मार्ग का ही अनुसरण जगत करता हैं ।)

एक और बात, 'धर्म क्या है?' इसका निर्धारण करना थोड़ा कष्ट का ही काम है । हमारी हिंदू परंपरा ने उसका मार्ग ऐसा दिखांया है :

श्रुतिर्विभिन्नाः स्मृतयश्च भिन्नाः नैको ऋषिः यस्य वचः प्रमाणम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः ।।

(वेद अनेक हैं; स्मृतियाँ भी अलग-अलग हैं । सभी लोग भी यह नहीं मानतें कि किसी एक ऋषि द्वारा बतायी बात ही सही है । अत: धर्म याने निगूढ़ गुफा में छिपी हुयी बात लगती है । अत: महापुरुष जिस मार्ग पर आगे चलते जाते हैं, वही धर्म है । वे जैसे चलें, वैसे तुम भी चलो।)

६. बहुमत विरोध में गया, तो मुखिया को क्या करना होगा?

धर्म यह कोई मतदान से निर्धारित करने की वस्तु न होने के कारण, यहाँ 'अल्पमत' या 'बहुमत' की भाषा अप्रस्तुत है । अत: जो शाश्वत मूल्यों से युक्त है, अर्थात् जो धर्म है, केवल उसका ही पालन मुखिया को करना चाहिए । यहाँ मुखिया के अपने अभिप्राय से भी, उसके ज्ञान-चिंतन से निकले निर्णय की ही परिगणना होती है । तथा मुखिया को भी चाहिए कि वह उस धर्मानुसारी निर्णय का पालन करने हेतु सबका मन परिवर्तन करें ।

७. क्या जीवन में स्वयंनिषेध आवश्यक है?

हाँ । व्यक्ति से ही समष्टि है । कदाचित कोई व्यक्ति स्वयंनिषेध का अनुसरण न

करता हो, तो समष्टि का गौरव व पोषण करने वाले लोग भी आखिर कौन होते हैं? सभी प्रकार के निषेधों में यही निषेध श्रेष्ठ है। स्वयं को अपनेपन का संज्ञान ही न हो, तभी यह निषेध कार्यरूप में आ सकता है । सामान्यत: अति उच्च स्तर के ज्ञानी पुरुष इस ऊँचाई तक पहुँचने की चाहत रखते हैं । इसी लिए, यदि कोई व्यक्ति अपना स्वनियंत्रण पाकर अपने ऊपर स्वयंनिषेध थोप लेता है, तब समाज का स्वास्थ्य बहुत ही अच्छा रहता है ।

८. क्या आप घर में काम करते समय, जोर से गीत-श्लोक-मंत्र आदि दोहराते हो?

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचना
गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणमशनाद्याहुतिविधिः ।
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदृशा
सपर्या पर्यायः तव भवतु यन्मे विलसितम् ।। (सौंदर्यलहरी)

(अर्थात् हमारा बोलना ही जप है; हमारे सभी हावभाव ही नमन-प्रदक्षिणा हैं; सभी सेवित आहार नैवेद्य है; कुल मिला के, हम जो-जो सुखोपभोगों की अपेक्षा करते हैं, वह सब भगवान को अर्पित है ।) इस भाव के अनुसार हर व्यक्ति गाते-गाते काम करता है, तो उल्लास रहता है; थकान नहीं होती । अपने आसपास रहने वालों को भी वह गीत-श्लोक मुखोद्गत होता है । आदि गुरु शंकराचार्य जी की यह स्तुति गृहस्थ से अपेक्षित भाव को सूचित करती है । सुबह उठते समय, उदयराग के साथ हमारे अंदर स्थित भगवान को जगाना चाहिए । उस भगवान को निद्रा के बारे में भौंहें चढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है । हमारे यहाँ देवपूजा में ही उद्घोष है :

देहो देवालयः प्रोक्तो जीवो हंसः सदाशिवः ।
त्यजेत् अज्ञाननिर्माल्यं सोऽहंभावेन पूजयेत् ।।

(देह ही देवालय है; जीव ही ब्रह्म है; अज्ञानरूपी कल्मश को धोकर, 'मैं ही वह परब्रह्म हूँ '- इस भाव से प्रभु की अर्चना करनी चाहिए ।) अत: हमें जो कुछ चाहिए, उन सब भावों का भगवान में ही अध्यारोपण करते हुए, जीव को संतुष्ट होना चाहिए । अत: बैठे हो या खड़े, काम करते या अन्य समय में देवता के गीत-श्लोक-मंत्र-वचन-भजन-चौपाई-दोहा आदि दोहराते रहना चाहिए । हमारे जनसामान्य भी अक्षरज्ञान न होते हुए भी, तत्त्वपद-लावणी-वचन-भारूड़ आदि लोकगीतों के द्वारा भगवान की आराधना करते थे । घर की महिलाओं ने भी आरती-सुहागनों के गीत-पूजागीत आदि की रचना करते हुए, सारस्वत लोक को समृद्ध किया है । इसके अलावा, ...

पारलौकिक की आसक्ति वाले मुमुक्षुओं के लिए भी बीजमंत्रों की संख्या पर्याप्त हैं। महिलाएँ रसोई बनाते समय ललितासहस्रनाम, लक्ष्मीस्तवन, विष्णुसहस्रनाम का पारायण करती हैं, तो उनकी रसोई में देवप्रसाद का भाव भर जाता है; सत्य गुणों का वर्धन होता है। साथ ही, बच्चो में आस्तिकता विकसित करने में सहायक होता है। बुजुर्गों के मार्गदर्शन से बच्चें सुप्रजा बनने में सहयोग प्राप्त होता है।

९. **क्या आपको काम करते समय गाना गुनगुनाने या सुनने से प्रसन्नता होती है? या क्रोध आता है?**

काम करते समय गाना गुनगुनाना या सुनना एक अच्छी पद्धति है। इससे काम के कारण होने वाली थकान अनुभव नहीं होता। इसके अलावा, सुश्राव्य संगीत या गीत सुनने से मन शांत बन कर, प्रफुल्लित होता है। अत: आपका मानसिक तनाव या व्यग्रता दूर होकर, निश्चिंतता से काम कर सकते हो। इससे काम ढंग से होता है। इसीलिए हमारे पुरुखों ने सुबह उठ कर, अनाज पीसते, दहीमंथन द्वारा मक्खन निकालते, या खेतखलियानों में काम करते समय उसी काम में धन्यता का अनुभव करते हुए, रागदारी में लावणी-तत्त्वपद-उदयराग आदि की रचना कर के, गाते-गाते दैनिक कामकाज निश्चिंतता से चलाते थे।

१०. **घर से बाहर जाते समय, क्या आप वरिष्ठों को बताकर जाते हो?**

घर से बाहर जाते समय, घर के वरिष्ठों या किसी दूसरे व्यक्ति को बता के जाने का स्वभाव बच्चों में छुटपन से ही डालनी चाहिए। कहाँ जा रहे हैं? किसे मिलने जा रहे हैं? लौटने का अनुमानित समय आदि सब बातें घर में बता के जाना उचित होता है। अकस्मात यदि कोई दुर्घटना हुई या संकट की घड़ी आयी, तो भी इसके कारण घर वालों को आपकी जानकारी होती है। इसके साथ ही, अपने हिंदू विश्वास के अनुसार, देहलीज में वास्तुपुरुष सोया रहता है। वह अपने शुभाशुभ का कारण, साक्षी व परिहर्ता होता है। हम बाहर निकलते समय यदि हो आता हूँ इतना बता दिया, तो वह अस्तु कह कर, हमारे ऊपर के संभाव्य आघातों का निराकरण करता है। केवल निषिद्ध दिनों में तथा मरणादि दु:खों के प्रसंगों पर ही वैसा न कहते हुए जाने की पद्धति है। इसीलिए हर दिन घर से चाहे जितनी भी बार हो, बाहर निकलते समय देवता का वंदन करते हुए, घर वालों को बता के ही जाना चाहिए।

११. क्या आपके घर में सभी वस्तुओं का कोई निश्चित स्थान है?

यदि कोई घर सुंदर दिखाना हो, तो घर की सफाई करते हुए, उसे रंगोली से सजा कर रखना चाहिए । इसके साथ ही, घर का सामान भूमि पर तितर-बितर अवस्था में नहीं रखना चाहिए । साफ-सुथरी, ठीक-ठाक स्थिति के कारण घर की संस्कृति प्रतिबिंबित होती है । इसीलिए घर कितना भी छोटा या प्राचीन क्यों न हो, सामान को ठीक ढंग से, निश्चित स्थान पर ही रखने का स्वभाव बना लेना चाहिए । इससे सामान समय पर, सही रूप में, तत्काल हाथ लग सकता है और अनुशासित जीवन के लिए सहायक होता है । रसोई घर के पदार्थ भी उनके अपने-अपने स्थानों पर, पुस्तकें पढ़ने की उत्पीठिका के समीपी अलमारियों में सही रीति से आवरण डाल कर, उनके ऊपर नाम लिख कर, कहानी-उपन्यास-पाठ्य से संबंधित पुस्तकें आदि सब निश्चित स्थानों पर रखने से उनका उपयोग करने के समय हमें ही अनुकूलता होती है । सुई-धागा-कैंची-छुरी-मोमबत्ती-हस्तदीप (बैटरी) आदि वस्तुएँ भी उनके निश्चित स्थानों पर रखने से हमें जब उनकी आवश्यकता पड़ती है, तब वे तत्काल मिल सकती हैं । इसी तरह, माचिस-ताला-कंघी आदि सबके लिए भी निश्चित स्थान तय करते हुए, घर के सबको इसका पालन करना चाहिए ।

पेय जल, दूध, सब्ज़ियाँ आदि

१. **क्या आपके घर में पेयजल, पूजाजल ऐसी पृथक-पृथक व्यवस्था है? उनकी विशेषता क्या है? कहाँ से लाते हो?**

पेयजल, पूजाजल, अन्य कामों के लिए पानी आदि अन्यान्य उद्‌देश्यों के लिए पृथक-पृथक व्यवस्था करना उचित होता है । पानी एक ही होता है; उसका उद्‌गम भी एक ही हो सकता है । तो भी स्थानबल, प्रयोजनबल के कारण उसे अधिक पवित्रता आती है । पेयजल के संग्रहण पात्रों को हर बार माँज के, साफ कर के रखना चाहिए । उसमें काई, कूड़ा-कचरा आदि कुछ भी नहीं होना चाहिए । हमारे शुद्धीकरण के पश्चात् ही इस पेयजल का संकलन करना चाहिए । पूजाजल का संग्रह हमारे स्नान के पश्चात ही करना चाहिए । पेयजल संग्रहण के समय भी इसीका ही पालन करना अच्छा होता है। यदि स्नान नहीं, तो भी हाथ-पैर धोकर, साफ वस्त्र धारण करते हुए उसका संग्रहण करना चाहिए ।

२. **क्या आप किसी दूसरे द्वारा उत्पादित शीशी के पानी का उपयोग करते हो? या घर में ही शुद्ध किया हुआ जल पीते हो? या ऐसा कहते हो कि तुम्हारे घर में कोई भी पानी पीता ही नहीं?**

विज्ञप्तियों को बेचे गएं अनेक लोग आज शीशी के पानी को श्रेष्ठ मानने के निर्धार तक पहुँचे हैं। लेकिन वास्तविकता अलग ही है । एक बार उस शीशी उत्पादन करने वाले केंद्र को देख के आने पर, हमें उनका वास्तविक चित्र ध्यान में आता है । -

अति विशाल प्रमाण में उत्पादितं वस्तुओं की उत्पादन प्रक्रिया में शुद्धता की अपेक्षा करना कठिन होता है। अत: घर में ही पानी शुद्ध करने की व्यवस्था करनी चाहिए । पानी याने मनुष्य के लिए अत्यावश्यक ऐसा जीवद्रव है । यह शरीर भी ८०% पानी से ही बना है । इसीलिए उसके सेवन में उदासीनता नहीं करनी चाहिए । विज्ञान भी कहता है कि दिन में न्यूनतम ६ लिटर पानी अवश्य पीना चाहिए । अत: पानी को उबाल के ठंडा कर, छान के पीने का काम हमें आत्मसात करना आवश्यक है ।

३. आपके घर में दूध, सब्जी कौन लाते हैं? लाते समय किन बातों का ध्यान रखते हैं? क्या आपको चुन के अच्छी सब्जी लाने की कला ज्ञात है?

घर में (अत्यंत छोटों को छोड़ के) सब्जी कोई भी ला सकता है। लेकिन लाते समय, थोड़ीसी सतर्कता आवश्यक है । यदि आवरण खराब हुआ हो, तो उसका बाह्यांग–अंतरंग साफसुधरा है क्या? इसे अवश्य देखा जाए, तो काफी है । लेकिन तरकारी लाते समय, निम्नांकित बातों की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए –

१. वह देखने में स्वच्छ होनी चाहिए। हरीभरी व ताजी होनी चाहिए।
२. सब्जी पुरानी, जीर्ण–शीर्ण, सड़ी–गली तथा कीटाणुओं से बाधित नहीं होनी चाहिए।
३. पत्ता सब्जियाँ क्रय करते समय विशेष ध्यान देना होगा ।
४. दुकानदारों का विश्वास प्राप्त करते हुए, अच्छे प्रकार से अच्छी तरकारी ही खरीद लेनी चाहिए ।
५. वजन, नापतोल आदि सही है या नहीं, इसका सदैव ध्यान रखिए ।
६. अच्छी सब्जी चाहिए, तो उसके चयन की स्वतंत्रता आपको होनी चाहिए।
७. सीधे खानेयोग्य कच्ची सब्जी भी आपको खरीदना संभव होना चाहिए।

इस प्रकार लायी गयी सब्जी अलग करते हुए, शुद्ध स्थान पर रख कर; उपयोग करने से पहले, उनको शुद्ध करके ही उनका इस्तेमाल कीजिए । इसकी सावधानी आपके घर के छोटे भी बरतें, ऐसा उनको सिखाना चाहिए ।

४. क्या डेरी का दूध उत्तम होता है? या सामने दोहन कर के दिया हुआ दूध?

सामान्यत: आज नगर प्रदेशों में अधिकांश सभी लोग डेरी का दूध ही उपयोग में लाते हैं । लेकिन अनेक लोगों को इसका पता ही नहीं होता कि वह कितना स्वास्थ्यकारक होता है? उसमें स्थित प्राय: सभी घृत निकालने के पश्चात् ही, पैकेटों में भरके भेज दिया जाता है । साथ ही, उसे अनेक बार गर्म करने के कारण आज हमें

मिलने वाला दूध सत्वहीन बना हुआ होता है । उसी प्रकार, बहुत दिनों के पहले ही दोहे जाने के कारण, वह ताजा भी नहीं (याने बासा ही) रहता है तथा उसके आवश्यक सभी पोषक द्रव्य नष्ट हो चुके होते हैं । लेकिन सामने ही दोहा गया दूध ताजा होता है और उसमें पूरे पोषक द्रव्य भी होते हैं तथा वह गर्म किया हुआ न होने के कारण, बहुत ही सत्त्वयुक्त होता है। उसमें आवश्यक घृत भी होती है ।

५. क्या आपको दूध से दही, दही का छाछ बना कर, मक्खन निकालना ज्ञात है?

दूध याने मनुष्य के लिए अतीव अनिवार्य रूप से आवश्यक ऐसा जीवद्राव है। अत: इसे प्रदान करने वाली गाय को हम, 'गावो लोकस्य मातरः' कहते हैं । दूध का संस्कार इस देश में अनेक वर्षों से अक्षुण्ण रूप से चला आ रहा है । ऋग्वेद में दूध व आज्य (घी) की अनिवार्यता का उल्लेख अनेक संदर्भों में किया गया है । दूध को अच्छी प्रकार से गर्म करके, ठंडा होने के पश्चात्, उसमें अल्प प्रमाण में दही डालने के कुछ ही घंटों में वह पूरा का पूरा दही के रूप में जम जाता है । वह दूध से भी अधिक गाढ़ा तथा स्निग्धता से युक्त होता है। उसमें थोड़ा पानी डाल कर, मंथन करते हुए उसकी सांद्रता को कम करने पर, वह छाछ के रूप में परिवर्तित होता है और उसमें से मक्खन निकलता है । मक्खन को अच्छी तरह से गर्म करने के बाद, वह घी बन जाता है, जो सालों–साल टिकता है तथा उसके औषधि गुणों का वर्धन होता है । इस प्रकार, दूध एक ही होने पर भी, अलग–अलग संस्कारों के कारण वह भिन्न–भिन्न रूप धारण करता है । उसके उपयोग भी भिन्न–भिन्न होते हैं ।

घर में ही बना सकने योग्य वस्तुएँ

१. **क्या घर में रसोई के लिए बनी-बनायी वस्तुएँ लाते हो या उनको घर में ही तैयार करते हो?**

जैसे-जैसे यंत्र अधिक होते जा रहे हैं, मनुष्य का काम कम होता जा रहा है । उसे कम कराने का स्वभाव बढ़ रहा है । अत: यह प्रश्न बहुत विचित्र लग सकता है । तैयार आहारपदार्थ खरीदना हो तो कब? कहाँ? तैयारक कौन? क्या इनका अपने घर में उपयोग कर सकते हैं? इसका चिंतन करते हुए लाना योग्य रहेगा । लेकिन इतनी सारी सोच सबमें नहीं होती । अत: Brand देख कर लाया जाता है। आज पानी खरीदने की पद्धति बढ़ गयी है । कम से कम उसकी 'Expiry Date (अंत्यकाल) के बारे में तो ध्यान देने का भान भी नहीं रहता ।

अब लाभ की आस रख कर उत्पादित वस्तुओं में मिलावट, विषाक्त वस्तुएँ मिलाने की दुर्बुद्धि बढ़ी है । Pack करके आयीं हुयीं सभी प्रकार की रसोई सामग्री में भी मिलावट अवश्य होती है । 'इसमें विष' यह समझाने के लिए ही केंद्र सरकार का एक विभाग काम करता है । लेकिन उससे मिलावट तो रुक नहीं पायी ।

इसलिए बुद्धिजीवी लोग अब स्वयं ही घर में तैयार कर सकने वाली वस्तुओं की सूचि बना के, उनको बना लेने की प्रक्रिया में जुट गए हैं । कहीं-कहीं तो चार-छ: घर अथवा मोहल्ला या ग्रामवासी एकत्रित आकर, किसी एक घर में उन वस्तुओं को तैयार करने को प्रोत्साहन देकर, उनसे खरीद रहे हैं । इस प्रकार उन सामग्री की गुणवत्ता बनाए रखते हैं ।

स्वास्थ्य व कीमत इन दोनों दृष्टि से, घरेलू उत्पादन ही अच्छा रहता है। फिर भी, क्या सबमें ऐसी सामग्री तैयार करने का कौशल होता है? और अकुशल लोगों का क्या? यह सवाल उठता है । तब परस्परपूरक चिंतन करके जीने का नियम ध्यान में रखते हुए, अच्छा बना सकने वालों के हाथों ही बना लेना चाहिए। दुकानदारों से नहीं लाएंगे, इस दृष्टि से घर में स्वयं ही तैयार करना उत्तम होता है, इस विश्वास को सुदृढ़ करना चाहिए ।

२. घर में ही तैयार करना श्रेष्ठ होता है ऐसा कहते ही, उससे क्या हम यह नहीं जानेंगे कि हमें एक नयी कला प्राप्त हुयी है?

वास्तव में हर चुनौती एक सुअवसर होती है । मिलावट-जहर-रोग इनके विषवलय से मनुष्य को बाहर आने के लिए उपलब्ध सर्वोत्तम मार्ग याने हमारे लिए आवश्यक वस्तुएँ स्वयं अपने परिसर में ही तैयार करना सीख लेना । प्रामुख्येन हर दिन की रसोई में उपयोगित पूड़ियाँ, तेल, आचार आदि चीजों को स्थान-स्थान पर तैयार कराना । तब सभी कुटुंब आपसी सहयोग से एक-एक वस्तु तैयार करने की कला सीख के आनंदित होते हैं । उसमें विविधता भरते हैं । हर घर अपनी इच्छानुसार रुचि, रूप के अनुसार तैयार कर सकता है ।

३. Pack की हुयी कोई भी आहार वस्तु क्रय करके लाना नहीं इस प्राथमिक संकल्प से आरंभ करते हुए, क्रमशः घर में तथा गाँव में ही सब कुछ तैयार कराने की क्षमता प्राप्त कर सकते हैं क्या?

ऐसा नहीं करेंगे, तो भारत का वैशिष्ट्य रहेगा ही नहीं । स्वावलंबी ग्राम यह केवल घोषणा नहीं थी । वह अत्यंत गर्व का व्यवहार था । एक ऐसा साहस व गर्व था कि हमारे गाँव के लिए आवश्यक सब कुछ वहीं पर तैयार कर सकते हैं । इसीलिए, यह देश हजारों साल विदेशी आक्रमणों का सामना करते हुए जीवित रहा । साथ ही निसर्ग की विपरीतताओं, हवा, वर्षा, बाढ़ आदि के बीच अपने छोटे-छोटे गाँव आहार-वस्त्र-विद्या-औषधि आदि भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते आए थे । आज की भोगवादी बाजारू संस्कृति के डींगमारी प्रचारतंत्र के भँवर में यह अभिमान कम हुआ है, ऐसा दिखायी देता हो, तो भी स्वाभिमानी गाँव-देहातों द्वारा ही भारत को फिर से विश्व का केंद्र बनना है । बाहर से किसी की भी अपेक्षा न रखते हुए, अपनी शक्ति, विवेक,

संयम, सहयोग के कारण सुख से जी सकने वाले ग्रामीण जीवन को पुनरुज्जीवित करना चाहिए ।

४. एक सामान्य आक्षेप आता है कि बिना कारण समय-श्रम जाया करने वाली वस्तुँएँ बाजार में सुलभता से मिलते समय उनका सीधी क्रय करने के स्थानपर स्वावलंबन-स्वाभिमान के घमंड से उनको घर में तैयार करना, यह मूर्खता की बात है । इसका उत्तर क्या है?

स्वाभिमान-स्वावलंबन यह मूर्खों या डरपोकों की बातें नहीं हैं। अण्वस्त्र बनाने का जो सामर्थ्य भारत को आया, वह किसी दूसरे की कृपा से नहीं । अपने विज्ञानी-तंत्रज्ञानियों की निरंतर सावधानी व प्ररिश्रम का फल है वह । ग्राम स्वावलंबन को भी विश्‍व के सुख-शांति का माध्यम बनाना है, इस दृढ़ इच्छा संकल्प से सबको कार्यरत होना ही आज की विशेष अवश्यकता है ।

रसोई घर

१. रसोई में प्रयुक्त वस्तुओं में दुकानों से लायी वस्तुएँ ही अधिक होती हैं? या घर ही में बनायी वस्तुएँ?

पहले कच्ची वस्तुएँ दुकानों से लाकर, उनका शुद्धीकरण करते हुए, घर ही में आटा, रवा, दालें, सांभर मसाले, सब्जी के मसाले, भुना आटा, पोहा, पापड़, सांड़गे, अचार, लड्डू, नमकीन आदि खाद्यपदार्थ स्वादिष्टपूर्ण ढंग से बनाए जाते थे । आज महिलाएँ भी बाहर जाकर काम करती हैं; अत: ये सभी पदार्थ बनाने का विधान ही मानो वे भूलसी गयी हैं । लेकिन व्यापारी मनोभाव वाले आधुनिक लोग इसका लाभ उठा कर, तावड़तोड़ खाद्यपदार्थों का थोक व्यापार शुरू करने के कारण, घर की महिलाएँ भी आलसी बन के, कालापहरण करने के बहाने ढूँढ़ रही हैं । इन तावड़तोड़ खाद्यपदार्थों में शुचित्त्व, स्वाद, सत्व आदि कुछ भी नहीं बचा रहता । पहले, बर्तन धोने के लिए चूल्हे की राख, मिट्टी, इमली; स्नान के लिए चने का आटा, शिकाकायी, अरंडी का तेल; दाँत मांजने के लिए दाँतून, नमक, कोयला आदि का उपयोग किया जाता था । लेकिन अब इन सबके लिए रासायनिक मार्जकों का प्रयोग होने लगा है । इसे देख कर क्यों न हो, हमारे लिए जरूरी वस्तुओं की गुणवत्ता बनाए रखते हुए, उनको अपने घर में ही तैयार करना अच्छा रहेगा ।

२. घर में ही तैयार कर सकने वाले रसोई सामग्रियों का पता लगा के क्या हम उनको बना सकते हैं?

रसोई सामग्रियों में से अधिकांश तो हम घर में ही बना सकते हैं। वे शुचि–रुचि से

युक्त होकर, स्वास्थ्यपूर्ण भी होते हैं । उदा. घर में ही भुना आटा, पोहा, सेंवई, चटनी, अचार, इड़ली–दोसे का आटा आदि अति सस्ते व पर्याप्त मात्रा में तैयार कर सकते हैं ।

अब दुकानों से हम बना बनाया पोहा, मसालों की पुड़ियाँ, सेंवई, ताबड़तोड़ तैयार साधनों में इड्ली, दोसे, बड़ा, चटनी, साग–सांभर, मीठा या नमकीन हलुवा, जामून–मिक्स आदि सब कुछ लाते हैं । इनमें ताजापन, पौष्टिकता, शुचिता, रुचि आदि कुछ भी होता नहीं । महिलाओं ने थोड़ा श्रम उठाते हुए काम किया तो, ये सभी सामग्रियाँ बहुत सस्ते में तैयार हो सकती हैं । इस प्रकार स्वयं ही तैयार कर अपने परिजनों को परोसते हैं, तो उसकी सार्थकता ही अलग होती है । अकस्मात, गृहिणी किसी कारणवश यह काम स्वयं नहीं कर सकती हों, तो अपने परिचय की किसी दादीमाँ, प्रौढ़ महिला या यह भी संभव नहीं हुआ, तो किसी आर्थिक दृष्टि से दुर्बल लेकिन काम में सुदृढ़ ऐसे परिवार की सदस्या द्वारा ये सभी पदार्थ तैयार करा लिया, तो उनको भी सहायता होकर, सामाजिक व्यवस्था भी दृढ़ हो सकती है ।

३. क्या आपके घर की किसी को रसोई/नास्ते की कोई खास रुचि है? क्या आपको उसका गर्व अनुभव होता है?

सामान्यत: घर में माँ, पत्नी द्वारा प्यार से बना के परोसा हुआ आहार घर के सभी सदस्यों को बहुत ही प्रिय होता है । उसमें भी नारियल, सोंठ, हरा धनिया, कढ़ीपत्ता आदि डाल कर तैयार की हुयी खुशबू देने वाली दाल, रसम्, सांभर, हलुवा, इड्ली, दोसे, बड़े, चटनी आदि के समान स्वाद किसी दूसरे पदार्थों में नहीं होता । घर की महिलाएँ ये सभी पदार्थ बहुत ही आस्था से बना के पति, सासूमाँ, ससूर, चाचा, चाची, पुत्र, जामाई, बहु, पोते, पोतियाँ आदि परिवार वालों को परोसती है और वे सब अनेक प्रकार से उसका वर्णन करते हुए, आनंद के साथ खाते हैं; तब गृहिणी गर्व से फूले नहीं समाती । कुछ घरों के कुछ पदार्थ रस के लिए जाने–पहचाने होते हैं ।

४. क्या आप ऐसा कुछ करते हो ताकि, घर में तैयार की हुई वस्तुएँ अधिक समय तक टिकी रहें? क्या उसके अन्यान्य विधान सीखने की चाहत है?

एक बार बनाए हुए आहारपदार्थ कुछ सीमित समय तक अपना ताजापन बचाए रख सकते हैं । बाद में उनके बिगड़ने की प्रक्रिया शुरू होती है । लेकिन सयानी गृहिणी

इन्हें भी और अधिक समय तक ताजा रख सकती है । एक बार तपाया गया दूध और एक बार उबाल के रखना; सब्जी-गोज्जु आदि में कच्चे नारियल का चूरा मिला के भुनना; छाछ खट्टी हुयी तो थोड़ासा दूध मिला कर परोसने से पहले उसमें अदरक का रस तथा हरा धनिया डाल कर उसे ठीक करना; बचे हुए दोसे के भीगे आटे में नारियल का चूरा, हरा धनिया आदि का उपयोग करते हुए उसे और भी अधिक स्वादिष्ट बनाना;, तले हुए पदार्थों को कड़े ढक्कन वाले डिब्बे में भर के रखना; अचार को बार-बार अलग-अलग बर्तनों में बदल कर उस पर कपड़ा बाँध के रखना; रवा-आटा-गुड़ आदि पदार्थों को समय-समय पर धूप में रख के निकालना; इस प्रकार और कुछ दिनों तक अनेक वस्तुओं का ताजापन अबाधित रहने का प्रबंध वह कर सकती है ।

५. बच्चों को आपने क्या कुछ सिखाया है?

पहले ही बताया गया है कि अपने आहार-विहार एक विशेषता से परिपूरित हैं । इसीलिए हर गृहिणी को अपने घर के बच्चों को ये बातें ढंग से समझा कर, प्रतिदिन तैयार किए जाने वाले आहार का क्रम, विशेष रसोई का क्रम तथा उन्हें सुरक्षित रखने का विधान, तैयार आहारपदार्थ आगंतुक-अतिथियों, सगे-संबंधियों को परोसते हुए खिलाने का क्रम भी अवश्य समझा देना चाहिए । उसके लिए प्रारंभ में उनको छोटे-छोटे कामों में जुटाते हुए, अनंतर रसोई बनाने में उनकी आसक्ति जगानी चाहिए । आगन्तुक अतिथियों के सत्कार के बारे में समझाने के बाद, वे आदर्श व्यक्ति ही बन जाते हैं । इसमें कोई भी संदेह नहीं है । अत: बच्चों को शुरु से ही यह सिखा देना आवश्यक है । त्योहारों की तैयारियों में बच्चों का सहभागित्व सुनिश्चित करने पर, उनको क्या? क्यों? कैसे? ये सब समझ में आता है ।

६. क्या रसोई में मिलावटी वस्तुओं या पुरानी, सड़ी-गली, खराब वस्तुओं (उदा. खराब नारियल, खराब चने, खराब सब्जी, दुर्गन्धयुक्त तेल, घी आदि) का प्रयोग न करने की सतर्कता बरतते हो?

सभी प्राणियों की अनिवार्य आवश्यकता है आहार । सबको उसे परिशुद्ध रीति से ही तैयार करना चाहिए । उसका अर्जन भी परिशुद्ध ही रहना चाहिए । उसके बनाने में भी उसी शुद्धता की रक्षा करनी चाहिए। रसोई में प्रयोगित वस्तुएँ ताजा व शुद्ध पदार्थ हीं होने चाहिए । उसमें मिलावटी या बहुत दिन अनुपयुक्त रहने से सड़न या घुन लग के नष्ट हुआ पदार्थ अथवा सूखा या सड़ा फल, तरकारी, दुर्गन्धयुक्त तेल, घी आदि नहीं रहना

चाहिए। उससे आहार का सत्त्व, रस दोनों ही बिगड़कर, तैयार किया हुआ पदार्थ जाया होता है । इससे उस आहार को पचा लेने के लिए देह को भी बहुत कष्टप्रद होता है । अत: भोजन करने के पश्चात्, अपेक्षित क्रिया न होकर, उसके विपरीत परिणाम ही होते हैं । उदा. बासा आहार अथवा ढंग से न बनाया हु आ भोजन आदि । इन सबसे भी महत्वपूर्ण बात याने हम हिंदुओं की श्रद्धा के अनुसार, इस शरीर में वास करने वाली आत्मा उस परमात्मा का ही अंश है । हमें इसका चिंतन करना होगा कि उस परमात्मा के अंश को यदि खराब, सड़ी, गली चीजें अर्पित की गयीं, तो क्या वह अंतर्यामी उन्हें मान लेगा? इनके साथ-साथ, सामग्रियों से रसोई बनाने वालों की मन:स्थिति भी रसोई पर तथा उस आहार के कारण उत्पादित ऊर्जा के उपयोग पर भी प्रभाव डालती है । इसीलिए सामग्री तथा मन:स्थिति दोनों भी चिंतनयोग्य विषय हैं । रसोई बनाते समय भी भगवान का ध्यान करते हुए, आहार पकाया गया तो, उसका परिणाम अच्छा ही होता है ।

७. क्या गरम रहते ही आहार सेवन करने (खाने) की स्वभाव लगा सकते हो?

आहार पदार्थ ताजा रहते ही खा लेना स्वाथ्य के लिए अच्छा रहता है । दाल, रोटी, भात, रसम्, सांभर, सब्जी, खीर आदि पदार्थ गर्म रहते ही खाए गएं तो उनका स्वाद और बढ़िया लगता है । गरमागरम सब्जी-रोटी, दाल-भात खाने पर होने वाला आनंद अलग ही होता है । अत: आहारपदार्थों को भोजन के कुछ मिनट पहले ही तैयार करते हुए, घर के सभी लोग मिल क्रर भोजन करने की पद्धति अच्छी होती है । इतना ही नहीं, वह स्वास्थ्य के लिए भी बहुत बढ़िया होता है । गर्म रहते ही खाना खा लिया तो, हमारे शरीर की पचनक्रिया सक्रिय होती है; देह पुष्ट होता है; आहार भी सत्वयुक्त होता है । इसके साथ ही, अन्नशुद्धि के लिए गर्म आहार पर परोसा हुआ घी भी पिघल कर, शरीर में शक्ति का संचय व संवर्धन भी होता है । अत: बच्चों को भी गरमागरम आहार सेवन करने की पद्धति डालनी चाहिए । ठंड़ा बना आहार बासा कहलाता है। इसीलिए वह देह तथा पचन के लिए कठिन होता है । अत: सदैव गरमागरम आहार का सेवन करना ही उचित रहता है ।

८. रसोई में क्या कच्ची सामग्री का प्रयोग करते हो?

रसोई में कच्ची वस्तुओं का प्रयोग करना अत्यंत आवश्यक है । कच्ची

सब्जियों में रेशों व खनिजों का अंश बहुत होता है । तदनुसार, अंकुरित दाने, हरा धनिया, पुदीना आदि में प्रथिनों का प्रमाण पर्याप्त होता है । इन्हें बगैर पकाए कच्चा ही खाया जाए, तो उनके सत्व का नाश न होकर पूरा का पूरा शरीर में घुलमिल जाता है तथा कच्ची सब्जियाँ खाते समय, (अच्छा चबाने से) दाँतों को विशेष श्रम होने के कारण दाँत मजबूत होते हैं । इसीलिए हर दिन आहार में पर्याप्त प्रमाण में कच्चे आहार का सेवन करना चाहिए । इससे आहार में सत्व भी बढ़ता है, ईंधन की बचत होती है, स्वास्थ्य संवर्धन होता है तथा स्वाद भी बढ़िया लगता है। इसीलिए हम जो कुछ आहार कच्चा ही खा सकते हैं, उन सभीका प्राथमिकता के आधार पर सेवन करना अच्छा होगा । कुछ घरों में खट्टी कढ़ी, सलाद आदि का प्रयोग हर दिन होता है ।

९. क्या आप नमक का उपयोग किए बगैर स्वादयुक्त रसोई बना सकते हो?

हम रसोई में नमक का प्रयोग स्वाद के लिए करते हैं । 'माँ से बढ़ कर देवता नहीं; नमक से बढ़ कर स्वाद नहीं' यह प्रख्यात कहावत भी नमक की महिमा घोषित करती है । नमक स्वास्थ्य के लिए भी जरूरी है । लेकिन नमक का अतिरिक्त उपयोग करना उचित नहीं । कुछ आहार पदार्थ बगैर अथवा अत्यंत कम नमक के बनाए जा सकते हैं जैसा कि सब्जियों का सलाद, खीरा (या ककड़ी), टमाटर, मूली, पत्तागोभी, गाजर, शकरकंद आदि का सलाद बगैर नमक का चख सकते हैं । यदि आप एक सीमा तक नमक के साथ ही आहार सेवन करते हो, तो भी, बगैर नमक का आहार भी खाने की मानसिकता तैयार कर लेनी चाहिए। चातुर्मास के उपलक्ष्य में, कुछ घरों में न्यूनतम एक मास तक बगैर नमक की, लेकिन रुचिपूर्ण रसोई बनायी जाती है । उसी प्रकार, हर महीने किसी एक पदार्थ में नमक न डालते हुए रसोई बनायी जाती है ।

१०. क्या आप बगैर हरी मिर्च की स्वादिष्ट रसोई बना सकते हो?

नमक की भांति हरी मिर्च का प्रयोग भी रस के लिए ही किया जाता है । कुछ प्रांतों में इसका प्रयोग अत्यधिक प्रमाण में किया जाता है। लेकिन मैदानी प्रदेशों में यही मिर्च पेट की बीमारियों का कारण बनती है। उसमें भी हरी मिर्च, गुंटुरु की मिरची बड़ी कड़वी होती है और वह उदरविकार का कारण बनती है । इसीलिए आहारपदार्थों में उसका प्रयोग अधिक न करते हुए ही बनायी गयी रसोई अच्छी रहती है । हरी मिर्च के बदले काली मिर्च उपयोग में ला सकते हैं ।

११. क्या बगैर चीनी का उपयोग किए, स्वादिष्ट रसोई बना सकते हो?

आज शक्कर का उपयोग शरीर के लिए मारक सिद्ध हो रहा है। चीनी के पदार्थ बनाते समय उपयोगित बेसन, बनस्पति घी, तेल आदि के कारण पचनशक्ति कुंठित होती है; अपचन बढ़ता है । इसी कारण, मीठे आहार के बारे में गौरव भी कम हो रहा है । इसके साथ ही, चीनी के अतिरिक्त सेवन से शरीर में अपरिमित समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं । अत: आहारपदार्थ तैयार करते समय शक्कर व तद्भूत अन्य पदार्थों का प्रयोग यथासंभव कम करना चाहिए । चीनी से बनाए हुए आहारपदार्थों में शक्कर के बदले गुड़ का उपयोग करना उचित होता है ।

१२. क्या आप बिना तेल का उपयोग किए, स्वादिष्ट रसोई बना सकते हो?

आहार में खाद्य तेल का प्रयोग अत्यंत कम होना चाहिए । तेल का उपयोग किए बगैर, आप रुचिपूर्ण रसोई तैयार कर सकते हो । सलाद, सब्जी, दोसे, इड़ली, दालों से बने पदार्थ आदि हम बगैर तेल के बना सकते हैं । तेल में तले पदार्थ शरीर के लिए उतने अच्छे नहीं होतें । इसीलिए तले (पके) पदार्थों का सेवन यथासंभव कम करना चाहिए । बिना तड़के वाले आहारपदार्थों में बगैर तेल के पदार्थ बना सकते हैं । बगैर तेल के स्वादिष्ट दोसे, पोंगल, इड्ली, पराठें आदि तैयार कर सकते हैं । अनेक संदर्भों में भोजन बनाते समय तेल का प्रयोग करने की प्रथा है। इसे हर दिन का स्वभाव न बनाते हुए, कभी-कभार अत्यंत अनिवार्य के समय ही उसका प्रयोग करना अच्छा रहेगा ।

१३. क्या बनाए हुए आहार का भोग चढ़ाने के पश्चात् ही उसे अपने उपयोग में लाते हो?

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा: मा गृध: कस्यस्विद्धनम् ।।

(इस जगत् में जो चराचर अस्तित्व है, वह सब भगवान से ही परिपूरित है । भगवान द्वारा प्रदत्त सबका अनुभव (रसास्वादन, सेवन) करो। दूसरों का कुछ भी मत चुराओ ।)

यह ईशावास्योपनिषद् की उक्ति हमारे तथा प्रकृति के बीच का संबंध व भगवान के बारे में हमारे भाव को दर्शाती है । हमारे द्वारा सेवित आहार आदि सब प्रकृतिमाता द्वारा प्रदत्त वरदान है । यह प्रकृति ही हमारी देवता है । हम उस आहार का सेवन करने तक, वह भिन्न-भिन्न लोगों के कष्टों के फलस्वरूप भिन्न-भिन्न रूपों में हमें प्राप्त होता है

। वे सभी हमारे लिए वंदनीय हैं । वे सभी हमारे लिए देवतास्वरूपी भी हैं । अत: पकाया आहार परोसने के पहले, उसको निर्मल चित्त से भगवान को अर्पित करते हुए, अर्थात् भोग चढ़ा कर, प्रसाद के रूप में उसका सेवन करना चाहिए । सेवित सब आहार ब्रह्मार्पित होता है, ऐसा भाव सदैव रहना चाहिए । क्योंकि, जो भी अन्न हम सेवन करते हैं, वह उसी ईश्वरीत कार्य के लिए ही है न? भगवद्गीता का यह श्लोक मननार्ह है :

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महवि: ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ।।

अर्पण भी ब्रह्म है, ब्रह्म को ही अर्पित वस्तुएँ भी कर्ता द्वारा ब्रह्मरूपी अग्नि में ही हवन की जाती हैं। अत: उससे उत्पन्न कर्मफल भी ब्रह्मार्पित ही होती हैं । ऐसी भावना आकर सब कुछ ब्रह्ममय बन जाता है । अत: हमारे द्वारा हर दिन स्वीकृत आहार देवता को भोग के रूप में अर्पित करने से वही स्वाद-भाव-सद्गुण मन-देह आदि में स्थिर बन जाता है ।

१४. आपके द्वारा तैयार किए सभी पदार्थ क्या आप अकेले ही उपयोग में लाते हो?

अपनी संस्कृति में यह बताया है कि कोई भी वस्तु केवल अपने लिए ही संपादित नहीं करनी है। अत: हमारे द्वारा अर्जन-उत्पादन- धारण-सेवन की किसी भी प्रक्रिया में दान का स्थान पहला होता है । बताया गया है कि जो भी व्यक्ति अपने पास की वस्तुओं का थोड़ासा हिस्सा ही क्यों न हो, बिना दान किए, केवल स्वयं ही उपयोग में लाता है, वह पशुसमान है । अत: हमारे द्वारा पकाए गए आहारपदार्थों को पहले देवता को भोग चढ़ा कर, अतिथियों को खिला कर, पशुपंछियों को देकर, बुजुर्गों-बच्चों तथा दीनदलितों को देना चाहिए । एक सद्वाक्य है - सभी दानों में अन्नदान श्रेष्ठ है । अत: सब पदार्थ अवश्यमेव बाँट कर ही खाने चाहिए । अत: केला आदि खाते समय, सीधे मुँह को न लगाते हुए, उसे काट कर, दूसरों में बाँट के खाना उचित होता है ।

१५. अपने द्वारा तैयार किए पदार्थ दूसरों को भी देना चाहिए, ऐसा कहने वाले घर आपके देखने में कितने होंगे?

सामान्यत: अपने हिंदू समाज में बाँट के खाने की परंपरा का पालन भली भाँति किया जाता है। तीज-त्योहार, पर्वकाल-ग्रहण-संक्रमण के समय दिए जाने वाले दान

इसके द्योतक हैं । अब इसमें थोड़ासा परिवर्तन लाकर तीज-त्योहार, विवाह, उपनयन, जन्मदिन आदि समारोहों में अपने आत्मीय सगेसंबंधियों, अड़ोसपड़ोस वालों, आप्तमित्रों, सहोद्योगियों को आमंत्रित करते हुए, अपने यहाँ पकायी रसोई उनके साथ मिल-बाँट कर उत्साह से खिला कर खाते हैं । लेकिन हृदय को भावभावनाओं की दीवारें हैं । प्राचीन समय में घर में तैयार किए सभी आहारपदार्थ केवल आसपास वालों के ही नहीं, तो आप्तबांधवों के भी घर पहुँचाए जाते थें। आज भी इस पद्धति को हमें फिर से जारी करना चाहिए । हमारे घर में पकाए पदार्थ पड़ोसियों को देने का उदात्त भाव हममें होना चाहिए । घर पधारें अतिथियों को भी घर में उपलब्ध पदार्थ देकर, उनका गौरव करना चाहिए । अपना प्यार इतना हो, कि हमारे घर पुन: आने की इच्छा उनमें जगनी चाहिए । साथ ही हमारे घर के उस पदार्थ की रुचि से प्रेरित होकर, वे भी उस पदार्थ को बनाने का यत्न करने तक वे प्रगत होने चाहिए । इससे हमारे द्वारा बनायी गयी रसोई के विधान का प्रचार अपने आप बाहर भी हो जाता है और अपनत्व भी बढ़ता है । इससे जाति-पाँति की दीवारें भी अपने आप टूट जाती हैं ।

१६. क्या आपके सखा-मित्र आदि आपके रसोई की चाहत से घर पर आकर खिलाने का आग्रह करते हैं?

अतिथिदेवो भव - यह अति पवित्र उक्ति है । हमारे द्वारा बनायी रसोई-नास्ता आदि की प्रशंसा करते हुए यदि किसीने संतृप्ति प्रकट की, तो भारतीय महिला को अपार आनंद होता है । यदि किसी दूसरे ने अपनी रसोई खाकर उसकी वाहवाही की, तो उस गृहिणी को स्वयं खाए जैसी तृप्ति होती है । आगंतुकों को अपने हाथों से बनायी रसोई परोस कर खिलाने की हिंदू महिलाओं की परंपरा ही है । कोई अतिथि या सगे अपने घर आने पर, उनके द्वारा पिछली बार चखी रसोई की याद करते हुए, वही पदार्थ पुन: आस्थापूर्वक बना के परोस कर आनंदित होती है । रसोई कितनी अच्छी बनी के परोसनी चाहिए, इसका मापदण्ड यह हो सकता है कि आगंतुक व्यक्ति अपने गाँव/शहर जाकर या जहाँ वह जाता है वहाँ, अथवा अपने घर में - इस प्रकार सभी स्थानों पर भी उस रसोई को प्रशंसापात्र बनाते हुए; स्वयं फिर से आकर, उसी रसोई-नास्ते की पुन: माँग करते हुए, जब उस गृहिणी को बता देता है, तब उस गृहिणी को अपार आनंद होता है । इससे और अधिक अच्छी रसोई बनाने की प्रेरणा मिलती है । यदि हम उसी प्रकार के पदार्थ की चाह से अपने घर में उसे बना कर, अपने परिचित व्यक्तियों को दिया, तो हमें भी आनंद-संतोष प्राप्त होता है ।

१७. क्या आप कभी कभार, न्यूनतम साल में एक बार तो नये प्रकार का पदार्थ बनाते हो?

मानवी मन सदैव नयेपन की चाहत रखता है । खान-पान के सम्बंध में भी। हमारे द्वारा सेवित आहारपदार्थों में यदि विविधता प्रतिबिंबित हुयी, तो सहज ही उनका आकर्षण उत्पन्न होता है । इसीलिए चाणाक्ष गृहिणी अपने परिजनों को संतृप्त करते हुए, उनसे प्रशंसा प्राप्त करने के लिए रसोई में विविधता लाने की दृष्टि से चिंतन करते हुए, कभी-कभी भिन्न-भिन्न प्रयोगों का अनुसरण करते हुए, नये-नये विधानों का अवलंब करते हुए स्वादिष्ट पदार्थ तैयार करते रहती है । तीज-त्योहार, व्रत, कथा-समारोह आदि इसके लिए अच्छी पीठिका प्रदान करते हैं ।

१८. क्या आपमें नए-नए प्रकार की रसोई बनाना सीखने का कौतूहल है?

नये पल्लव व पुरानी जड़ें ही पेड़ का सौंदर्य है - यह कन्नड़ के प्रख्यात दार्शनिक कवि डी.वी.जी. की उक्ति है । उसी तरह पुराना स्वाद भी अद्भुत होता है । उसमें थोड़ाबहुत परिवर्तन करते हुए, उसीमें विविधता लाना ही होशियार गृहिणी का लक्षण/उपलब्धि होती है। इसलिए हमें उपयुक्तता से पुरानेपन को बचा कर नवीनता का स्वागत करते हुए, अपनी परंपरा को विकसित करना चाहिए । अच्छाई को सब ओर से स्वागत प्राप्त हो । अत: इस बदले युग में, अपनी पूर्व परंपरा की रक्षा करते हुए, स्वास्थ्यवर्धक, निसर्ग के निकटस्थ तथा तनमन को आनंदप्रद ऐसी नए-नए किस्म की रसोई बनाना सीख लेना चाहिए।

१९. बनायी रसोई समाप्त होने के बाद यदि कोई अतिथि आया, तो क्या करते हो?

आजकल महँगाई के दिनों में अपने छोटे-सुखी परिवार में मितव्यय करने वाली महिला का होना स्वाभाविक है । लेकिन, आगंतुक अतिथि बिना भोजन के नहीं जाना चाहिए इसी उद्देश्य से अपनी परंपरा में सबके भोजनोपरांत ही महिला को अपना भोजन करने की पद्धति चली आयी है । आजकल के दिनों में भी कोई भी महिला घर आए अतिथि का सत्कार किए बगैर नहीं भेजती । अपने घर में तत्काल उपलब्ध आहार-पेय आदि देकर उसका सत्कार अवश्य करती है । यदि समयावकाश हो, तो अपने अनिवार्य कामों को छोड़ के नयी रसोई बना कर उनका आदर करती है । इतना ही नहीं, उसके मन में कभी भी इस बारे में उदासी या दुःख नहीं रहता । कितनी बहू, पूरे दिन परिश्रम

करने के कारण वह श्रांत-क्लांत हुयी हो तो भी, उसकी गिनती न करते हुए, अपने कर्तव्य में निरत होती है । शरीर थका हुआ है; तो भी, मन को न थकाते हुए, कार्य करते रहने वाली त्यागमूर्ति होती है अपने घर की महिला । इसीलिए तो, अपनी एक प्राचीन उक्ति हमें बताती है कि 'गृहिणी ही घर की सारसर्वस्व है' ।

२०. क्या ऐसा भी कभी हुआ है कि जब रसोई तो बनायी है; लेकिन उसका स्वाद चखा ही नहीं ?

बनायी हुई रसोई/नास्ते का प्रमाण कम हो गया है; या उसकी रुचि-विविधता सबको पसंद आकर, सबने बड़े चाव से सबका सब खा डाला हो; अथवा अकस्मात् अतिथियों के आगमन के कारण सब पदार्थ समाप्त हो गए हों - यह सभी घरों में घटित होने वाली सहजसी बात है। अपने द्वारा तैयार की हुयी रसोई सब लोगों ने चाव से खाने के बाद, यदि उसकी अपेक्षा करते हुए आए व्यक्ति को परोसने पर, स्वयं नहीं खाया तो भी हिंदू स्त्री को स्वयं खाने जैसी ही खुशी होना भी उतनी ही सहजसी बात है । वह कभी भी मैंने खाना खाया ही नहीं ऐसा दु:ख नहीं करती। एक कहावत भी है : 'मटके में खाना बच गया, तो घरवाली को चिंता होती है ।' इसका अर्थ यही है कि हिंदू महिला को अपने द्वारा बनाए हुए खाने का उपयोग परिजनों व अतिथियों की संतुष्टि के लिए नहीं हुआ, तो वह दु:खी होती है और रसोई पूरी समाप्त हुई, तो वह आनंदित होती है।

२१. उस समय क्या बहुत निराशा होती है? क्रोध आता है? या खुशी होती है?

बनायी हुयी रसोई समाप्त न होने पर निराशा, क्रोध आदि सब कुछ स्वाभाविक ही है; पर वह खत्म होने पर खुशी होती है । लेकिन इसका दु:ख कभी भी नहीं होना चाहिए कि मैंने उसको चखा तक नहीं । बहुत अतिथि आने पर उनको देवस्वरूप मानते हुए, बनायी हुयी पूरी रसोई उनको संतोष से परोसते हुए स्वयं धन्यता का अनुभव करना अच्छे स्त्रीत्व, अच्छी गृहिणी का लक्षण है ।

भोजन

१. क्या भोजन के समय परोसने वाले होते ही हैं?

औद्योगिक जीवनशैली में परोसने वालों का होना कम हो रहा है। खाना किसी दूसरे द्वारा परोसने पर हमें अधिक प्रसन्नता व तृप्ति होती है। ज्येष्ठजनों की भाषा में कहना हो, तो 'खाया पदार्थ शरीर को लगता है।' परोसने वाले रहें, तो अच्छा ही है । न्यूनतम रात के भोजन में तो परोसने वाले होने ही चाहिए । शेष समय में भी परोसने वाले रहें, तो अच्छा है ।

२. परोसने वालों को किन बातों का ध्यान रखना होता है?

परोसने वालों को मुख्यत: ध्यान में रखने योग्य बातें याने, हाथ-पैरों तथा बर्तनों की स्वच्छता, परोसने का ढंग, कौनसा पदार्थ, किसे, कितना, कैसे परोसना है आदि । परोसते समय इस ढंग से परोसना चाहिए कि उस दिन के सभी पदार्थ सबको उपलब्ध हों। ख़ाने वालों की अवश्कता तथा रुचि के अनुसार परोसना चाहिए । परोसते समय पदार्थ जाया न करते हुए, प्रसन्न मन से परोसना चाहिए । रसम्/सांभर आदि परोसते समय कलछी से नीचे गिराना, सब्जी, चट्नी, भात आदि का भी नीचे गिराना, थाली से छिड़क जाना आदि बातें टालनी चाहिए ।

३. किसे, क्या चाहिए? इसका पता लगा सकते हो क्या?

सभी प्रसंगों में सभी का स्वाद एक समान नहीं होता । यह अतीव व्यक्तिगत होता है । परोसने वालों को इसका विशेष ध्यान रखना होगा । रसोई परोसते समय, खाने

वालों की क्षमता, रुचि व आवश्यकता की पहचान कर के, तो कुछ बार, उनका मन तैयार करते हुए परोसना चाहिए । केवल चाहत है, इसीलिए उनके थाली में उँडेलना नहीं चाहिए। बुजुर्गों, बच्चों, बीमार व्यक्तियों के अपथ्य पदार्थ परोसना उनको दु:ख न हो, ऐसा प्यार से टालना चाहिए ।

४. क्या आप इसे देख पाते हो कि किसकी थाली में कौनसा पदार्थ खत्म हुआ है?

खाने का मापदण्ड सबके लिए एक समान नहीं होता । परोसते समय थाली में क्या कुछ, कितना समाप्त हुआ है, इसे भाँपते रहना चाहिए । कदाचित पहले वैसा नहीं किया गया, तो पदार्थ/पेय आदि परोसे जाने के पश्चात् पानी की पूछताछ के बहाने उसे भाँप लेना चाहिए। पदार्थ की समाप्ति देखते ही परोसते जाना उचित नहीं होता । छाछ परोसते समय, खीर-सांभर-रसम् आदि समाप्त हुए हैं (अर्थात् भोजन के प्रथमार्ध की तुलना में कम हुए हैं) ऐसा देख के उन्हें परोस देना उचित नहीं होगा । लेकिन अन्य व्यंजन बीच-बीच में परोस सकते हैं । तो भी, उन्हें भी कब और कितना परोसा जाना चाहिए, इसका पता होना चाहिए । हर एक का भोजनक्रम व रुचि के अनुसार पूछताछ करते रहना चाहिए । परोसा हुआ पदार्थ धीरे-धीरे खाने के लिए समय भी देना चाहिए । बार-बार परोसने से खाने वालों को तकलीफ हो सकती है ।

५. परोसते समय क्या नहीं करना चाहिए?

परोसते समय स्वयं खाना या पीना, थाली को स्पर्श करते हुए परोसना, एक की थाली से उठा के दूसरे की थाली में डालना, बड़ी शीघ्रता से परोसना, थोड़ा सा परोस कर बाकी का या परोसा गया पदार्थ ज्यादा होने पर उसे थाली से उठा के पुन: परोसने के बर्तन में डालना, बाएं हाथ से परोसना, जोर से उँड़ेलना, मना करने पर भी परोसते जाना, पूछने पर भी नहीं परोसना, घी परोसते समय बहुत झुकना, जोर-जोर से चल कर थालियों में धूल उड़ाना, परोसना भूल कर बातों में जुट जाना, झगड़े पर उतारू होना, आँखों में आँसू लेकर रोते-रोते परोसना, रसोई के मूल बर्तन में से ही परोसना, बैठ कर परोसना, पदार्थों के क्रम को भूल के परोसना, पंक्तिभेद करना, एक को परोस कर दूसरे को नहीं परोसना - आदि काम नहीं करने चाहिए। अहितकर बातें नहीं करनी चाहिए । खाद्य पदार्थ-पेयों की निंदा मत करिए । किसी दूसरे काम के बहाने पकाए हुए सभी पदार्थ एक ही बार थाली में परोस कर नहीं लाना चाहिए । ऐसा नहीं हो सकता कि हमें अच्छा लगा हुआ पदार्थ दूसरों को भी अच्छा लगना ही चाहिए ।

क्या महिलाओं को पता है ?

१. क्या आपके घर की स्त्रियों को कपड़ों की सिलाई व फटे कपड़े सिल के उनको ठीक करना ज्ञात है?

फटे हुए कपड़े ढंग से सिल के उन्हें सही बनाना सामान्यत: घर की सभी महिलाओं को मालूम रहता है । कुछ महिलाएँ तो उस कपड़े का दोष ही दिखायी न दें, ऐसी रंगबिरंगे धागों से कशीदाकारी या चित्रकारी करते हुए, उसे और भी सुंदर बनाती हैं। यदि वे स्वयं सिलाई यंत्र के सहारे नए कपड़े सिलाई की कला सीख कर, अपने स्वयं के व घर वालों के नये कपड़े तैयार करती हैं, तो उनके अतिरिक्त समय का सद्विनियोग भी होता है और उसका अनोखा समाधान भी उनको मिलता है ।

२. क्या उनको अपनी कीमती साड़ियों की सुरक्षा करने का क्रम मालूम है?

अपने द्वारा पहने जाने वाले वस्त्र–प्रावरणों में प्रतिदिन के कपड़ों के अतिरिक्त सभा–समारोह, शुभदिन, तीज–त्योहारों में पहनने योग्य रेशम, ऊनी, जरदारी, कढ़ाई वाले कीमती वस्त्र, साड़ियाँ आदि भी होती हैं । उपयोग के पश्चात्-स्वच्छता करते हुए, उनकी सुरक्षा करना अत्यावश्यक होता है । रेशम आदि के पहनावों को बीच–बीच में धूप में डाल के निकाल रखना चाहिए । उनके किनारे आदि को हाथों से अच्छी तरह से घिस के, उन्हें पतले कपड़े में लपेट कर रखना चाहिए । किसी भी स्थिति में उन्हें प्लास्टिक की थैली में नहीं रखना है । इससे जरी की कढ़ाई/कशीदाकारी काली पड़ती है । उन्हें धोते समय साबुन या रासायनिक मार्जक चूर्ण का उपयोग नहीं करना चाहिए । कपड़ों

पर तेल आदि का दाग पड़ते ही, तत्काल उस पर चेहरे का पाऊडर या बेसन का आटा लगा कर, घिस के धोना चाहिए । उन्हें साफ करने के बाद, उनमें झुर्रियाँ या सिकुड़न न आवें ऐसे मोड़ कर रख देना चाहिए । कपड़ों की विशेष अलमारी या संदूक में क्रिमिनाशक गोलियाँ रखनी चाहिए ।

३. क्या गहनों को बीच-बीच में साफ करते हुए उन्हें सुरक्षित रखने की विधा आपको पता है?

नारियों को गहने अत्यधिक प्यारे होते हैं । सभी महिलाएँ गहने पहन कर अपने सौंदर्य में वृद्धि करना चाहती हैं । पुरुष भी अपवाद नहीं होते । गहने साफ रखने से उनकी चमक बनी रहती है । अत: बीच-बीच में झुमके, नेकलेस, अंगूठी आदि गहनों को रीठों के पानी से धो के रखना या नमक के पानी में भिगो के धोना अच्छा होता है। गहनों के सम्बंध में ऐसी सतर्कता बरतनी चाहिए ताकि उनमें जड़ें हीरे-मोती आदि पत्थरों में धूल, मैल या तेल आदि जम न जाए । स्नान, प्रवास आदि के समय, गहनों के लिए ही नियत डिबिया आदि में उन्हें रखना उचित होगा ।

४. क्या आपको पता है कि गहनों का उपयोग कब करना चाहिए? और कब नहीं?

गहनों में से कुछ तो नारियों को सदा ही पहनने चाहिए । उदा. मंगलसूत्र, झुमके, कंगन, पैरों में पहने जाने वाले चांदी के गहने आदि। इनके साथ ही कंठहार, नेकलेस, अंगूठी आदि गहने तीज-त्योहार, शुभ समारोह, उत्सव, पर्व आदि दिनों में धारण करने की प्रथा है । गहनों को यथासंभव सरलता से पहनना अच्छा होता है । गहने समृद्धि का द्योतक होने चाहिए, न कि, किसी आडंबर-आढ्यता के प्रदर्शन का । एकाकी संचार करते समय, प्रवास करते या रात के समय तथा दु:ख के प्रसंगों में गहने पहनना अच्छा नहीं होता ।

५. क्या आप अपने गहने दूसरों को पहनने के लिए देकर, स्वयं आनंद का अनुभव कर सकते हो?

अपनी वस्तुएँ दूसरों को उपयोग करने के लिए देने में आनंद का अनुभव कर सकना बड़ी भलमानसता का लक्षण होता है । उनमें भी, जिन्हें कीमती गहने, वस्तुएँ आदि पाना मुश्किल/असंभव हैं, ऐसे लोगों को इन्हें पहना कर, स्वयं आनंद पाना अच्छाई की बात है ।

घरकाम व घरेलू नौकर

१. क्या अपने घर में आप ही घर का काम करते हो?

अपने घर के कामकाज हमें स्वयं करना उचित रहता है । इससे हमारे शरीर व मन दोनों का भी अच्छा व्यायाम होता है । घर के लोग ही यदि घर के कामकाज करते हैं, तो पैसों की बचत भी होती है । अपने कपड़े हम स्वयं ही धोना, इस्त्री करना, रसोई के लिए आवश्यक मसाले आदि बनाना, घर का झाड़ू-पोंछा करना, घर की साफ-सफाई, घर के दरवाजे तथा बाहरी आवरण आदि का शुद्धीकरण करना, रंगोली डालना, रसोई के बर्तन माँज कर स्वयं ही धो कर रखना – सभी मायनों में अच्छा रहता है । कुछ बार केवल काम का तनाव या असंभाव्यता, या जड़ता-आलस्य के कारण, अथवा विशेष प्रसंग या खास दिन आदि अनिवार्य संदर्भों में ही काम वालों को लगाना चाहिए ।

२. काम वाले हो, क्या तो उनसे अपेक्षित सभी काम अच्छे ढंग से करा लेने की कला आपको अवगत है?

घर में काम वालों की अपरिहार्यता होने पर, उनको काम पर लगा कर, उन्हें अपेक्षित सभी कामों का विवरण देकर, उसे वे समर्पक ढंग से कैसे कर सकते हैं, इसके बारे में आवश्यकतानुसार समझाना होगा । प्रारंभ के दिनों में स्वयं खड़े होकर, काम का अवलोकन करते हुए उनका मार्गदर्शन करना चाहिए । क्रमशः उनको हमारी अपेक्षा के अनुसार अच्छा काम करने के योग्य बनना चाहिए । इतना होने पर भी, उनके द्वारा किए जाने वाले काम का निरीक्षण करते हुए, यथावश्यक सूचनाएँ देते रहना चाहिए

। यदि आप यह नहीं कर पाएं या ढंग से नहीं कर सकें, तो काम अच्छा नहीं होगा; मन को कष्ट व असंतोष होगा। लेकिन इन सूचनाओं की अतिशयता भी नहीं होनी चाहिए ।

३. क्या आप बच्चों को भी घर के काम सिखाते हो?

घर के सभी सदस्य अपने-अपने काम स्वयं करें, तो घर का काम सुगम होता है । किसी को भी बोझ नहीं बनता । इस दिशा में बच्चों को भी उनका काम सिखा देने से उनमें स्वावलंबन बढ़ता है । अपने-अपने कपड़े स्वयं धोना, भोजन की थाली-लोटा आदि को धो के रखना, पेड़-पौधों को पानी देना, सबसे अधिक, अपने शाला-कॉलेज की पुस्तकें-लेखनी-जूते आदि सभी वस्तुएँ सही ढंग से निकाल कर समुचित स्थान से लेना/में रखना, दुकानों से छोटी-मोटी वस्तुएँ लाना : ऐसे सब कामकाज सिखा देने चाहिए ।

४. क्या आपके सभी घर वालों में काम करने का आनंद व कुशलता दोनों ही हैं?

छुटपन से ही बच्चों में स्वालंबन विकसित करने से वे बड़े होने पर भी उन्हें घर के कामों का बोझ महसूस नहीं होता । इसके विपरीत उनको आनंद प्राप्त होता है तथा उस काम का निर्वहन कैसे करना चाहिए, इसका विवेक भी आता है । अनिवार्य प्रसंगों में सब कुछ स्वयं अकेले करने का सामर्थ्य भी प्राप्त होता है ।

५. नौकरों पर कौनसे काम सौंप सकते हैं?

काम वालों पर सामान्यत: घर के बाहरी काम ही सौंपना चाहिए। किसी भी कारणवश, घर के आंतरिक काम उनपर नहीं सौंपना है । घर के साफ-सफाई के काम तथा बाहरी काम उनसे करा सकते हैं ।

६. उनके प्रति हमारी धारणा क्या होनी चाहिए?

नौकर भी अपने विशाल परिवार के घटक जैसे होते हैं । इसलिए उनके साथ हमें स्नेह-सम्मान का बर्ताव करना चाहिए ।

फूल

१. क्या महिलाएँ हर दिन जूड़े में फूलमाला पहनती हैं?

फूल याने महिलाओं के सौदर्य में कलशप्राय होते हैं । हमारे पूर्वजों की धारणा थी कि जिस घर की महिलाएँ जूड़े में फूलमाला डाल कर, देहलीज पर फूल चढ़ा कर, भगवान को फूलों से सजाती हैं, उस घर में सदैव सौभाग्य, समाधान भरा रहता है । इसीलिए घर की सुहागनों को जूड़े में सदा फूलमाला पहननी चाहिए ।

२. क्या घर आए किसी एक को तो फूल देते हो?

अपने यहाँ एक कहावत है : 'फूल बाँट के पहनो और फल काट के खावो।' इससे हमें पता चलता है कि फूलों का महत्त्व कितना है? हिंदुओं में बिना फूलों की पूजा होती ही नहीं । इस प्रकार भगवान की पूजा में प्रयोगित फूल प्रसाद बन जाते हैं। उनको धारण करने वाली गृहिणी समाज में मान्यता पाती है । अत: घर आयी सुहागन को फल-फूल-तांबूल दिए विना रिक्त हाथ नहीं भेजा जाता ।

३. क्या आपके घर में मल्लिका कलियों का उपयोग साल में एक बार तो किया जाता है?

हिंदू संस्कृति में फूलों को महत्वपूर्ण स्थान है । उनमें भी मल्लिका, चंपा, मालती, सेवंतिका इनका स्थान विशिष्ट है ।.देवी पूजा में मल्लिका अति मुख्य है । सुहागनों को वायना देते समय, तीज-त्योहारों में मल्लिका अवश्य होनी चाहिए । ऐसे

मल्लिका फूलों के ही कारण, वसंत ऋतु में लड़कियों के जूड़ों में मल्लिका कलियों की मालाएँ पहनाने तक, या वे स्वयं पहनने तक यही बड़े उत्साह-उमंग का विषय रहता है । मल्लिका फूलों से सहस्र नामार्चन करना एक अति विशिष्ट कार्य है । इसीलिए हर घर में न्यूनतम एक मल्लिका की लता लगा के वढ़ा कर, उसके फूलों को पहन कर, तथा दूसरों को देकर आनंद महसूस करना चाहिए ।

४. विशेष दिनों में फूलों का इस्तेमाल कैसे करते हो?

विवाह आदि शुभ समारोहों में मल्लिका, सेवंतिका के फूल न हो, तो चलता ही नहीं । नवपरिणीता के जूड़े में मल्लिका-कलिकाओं की माला पहनाना तथा महिलाओं की नील वेणियाँ फूलों से अवश्य सजनी चाहिए । इसके सिवा, तीज-त्योहारों में फूलों की माला पहने बगैर चहल-पहल करने वाली नारी शायद ही मिलेगी । जूड़ों को सजाने के लिए गुलाब, सेवंतिका, कनकांबर आदि सब प्रकार के फूल जरूर चाहिए। इनके साथ ही ध्यान देने योग्य एक और बात याने फूलों से सजी-धजी महिलाओं के कारण घर में सर्वदूर सुगंध फैल कर, आनंदपूर्ण वातावरण निर्माण होता है ।

रसोई बनाना व परोसना

१. **क्या खड़े होकर रसोई बनाना स्वास्थ्यपूर्ण है? अथवा बैठ कर?**

बैठ कर रसोई बनाना बहुत उचित विधान है । खड़े होकर रसोई बनाने से नगरों में वास करने वाली महिलाओं को बहुतसी कष्ट का सामना करना पड़ रहा है । नारियाँ अपना अधिकतम समय रसोईघर में बिताती हैं । रसोई बनाते समय प्राय: खड़े होकर ही रहने से संपूर्ण शरीर का बोझ पैरों पर ही आकर, दूसरे अंगों को व्यायाम ही नहीं होता। पैर ही इस अतिरिक्त बोझ का नियंत्रण करने के कारण नारियों को कमरपीड़ा, पैरों में पीड़ा, घुटनों का पीडा आदि सता रहे हैं । नगरवासी महिलाओं में आजकल यह अति सामान्यसी बात बन गयी है । परंतु ग्रामीण प्रदेशों में इसका प्रादुर्भाव कम है । क्योंकि, वे वहाँ बैठ के ही रसोई बनाती हैं । अत: वस्तुएँ लेने या रखने के लिए उन्हें उठक-बैठक करनी पड़ती है । तथा, भूमि पर बैठ के ही रगड़े या चक्कियों में पीसना, कुचलना आदि काम करने से शरीर के सभी अवयवों का व्यायाम होकर, देह सुस्थिति में रख पाती है । इसीलिए यथासंभव बर्तन, सामग्री आदि उठ के या झुक के हथियाने, जमीन पर बैठ के ही रसोई बनाने या परोसने की आदत डाल लेनी चाहिए।

२. **जिस प्रकार रसोई बनाने से पहले हाथ-पैरों की सफाई करते हो, वैसे और क्या कुछ करना चाहिए?**

रसोई बनाने से पहले हाथ-पैरों को स्वच्छ करना आवश्यक है । उसी प्रकार रसोई का कमरा, चूल्हा, रसोई की स्थान, रसोई बनने के पश्चात उसे रखने की स्थान,

रसोई के लिए उपयोग में लाए जाने वाले बर्तन इन सबको हमें स्वच्छ रखना पड़ता है । साथ ही रसोई में प्रयुक्त दाल, चावल, सब्जी आदि सब सामग्री को भी शुद्ध करना चाहिए । रसोई बनाने के समय जैसे शरीर शुद्ध बनाने की आवश्यकता है, वैसे ही हमें अपना मन भी साफसुथरा बनाना आवश्यक है । हमारे द्वारा बनायी जाने वाली रसोई पर इसका भी गहरा प्रभाव पड़ता है ।

३. क्या आपके यहाँ 'मुष्टिधान्य' पद्धति है?

'मुष्टिधान्य' याने हमारे द्वारा रसोई बनाने के लिए प्रयोगित आहारसामग्री या अनाज-धान से एक मुष्टि (याने सुनिश्चित प्रमाण में) निकाल कर सामाजकार्य के लिए उसका विनियोग क़रना । हर दिन हम रसोई पकाने के पहले चावल, गेहूं या दूसरा कोई भी अनाज 'न मम' (मेरा नहीं) इस भाव से निकाल के रखना । वह अपेक्षित प्रमाण में संग्रहित होने पर, समाज के दीन, दलित, गरीब, अनाथ, छात्र, समाज पर विश्वास रख के जीवनयापन करने वाले, अपना समूचा जीवन समाज के लिए समर्पित व्यक्ति, संन्यासी, मठ-मंदिर, आश्रम आदि को दे देना । अपनी हिंदू संस्कृति में ऐसा नियम है कि अतिथि को परोसे बगैर, गृहस्थ स्वयं अन्नसेवन नहीं करेंगे । लेकिन आजकल अतिथियों की प्रतीक्षा के लिए समय ही नहीं है । अत: हर हिन्दू कुटुंब को 'मुष्टिधान्य' पद्धति का अवलंब अवश्य करना चाहिए । इससे आवश्यक व आर्त लोगों की सहायता करने का सदवसर प्राप्त होता है । इस व्यवस्था से अपना समाज दोषमुक्त होता है और अपनी उदारता भी बढ़ती है । खानेयोग्य आहार में से किसी अन्य जीवी को भी आहार बाँटने का संतोष भी प्राप्त होता है ।

४. रसोई बनाते समय क्या सावधानियाँ बरतते हो?

रसोई पकाते समय बहुतसी सतर्कताएँ बरतनी होती हैं । उनमें भी विद्युत्, गैस के चूल्हों में रसोई बनाते समय अधिकतम जागरूकता रखनी होती है । विद्युत् चूल्हे पर रसोई पकाते समय अपने पैरों तले लकड़ी का एक तख्ता रखना अच्छा होता है । चूल्हे पर उबालता दूध गिराना, बर्तनों की क्षमता से भी अधिक पदार्थ उनमें डालना, बर्तनों के तले थोड़ासा ही पदार्थ डाल कर वह जल जाए ऐसा करना आदि बातें नहीं करनी चाहिए। यथासंभव कपास के कपड़े पहन कर रसोई बनानी चाहिए । चूल्हे के समीप घासलेट का डिब्बा, माचिस आदि अग्निप्रेरक वस्तुएँ नहीं रखनी चाहिए । किसी भी

प्रकार की कष्ट, घाव, जलना आदि बातों से आपके शरीर को सुरक्षित रखना होगा। बच्चों वाले घरों में सावधानियाँ और भी अधिक कड़ी होनी चाहिए ।

५. क्या रसोई के बर्तन सदैव साफसुथरे रखते हो?

रसोई के बर्तन सदैव स्वच्छ रखने चाहिए । बिना कलई के बर्तन, पाची लगे बर्तन, मुरचा लगे तांबे के बर्तनों का उपयोग नहीं करना चाहिए। इनको अच्छी प्रकार से साफ करने के बाद ही उनका उपयोग करना चाहिए। पानी पीने का लोटा, दूध का बर्तन आदि गर्म पानी से स्वच्छ धोने चाहिए। विशिष्ट आहार के लिए विशिष्ट बर्तन ही उपयोग में लाना अच्छा होता है। उससे दूध का फटना, रसम्-सांभर-दाल आदि बिगड़ जाना आदि नहीं होता । बर्तनों को साफ धोने के पश्चात् वे पूरी तरह से शुद्ध हुए हैं, इसकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिए । कारण, पवित्रता में ही भगवान वास करते हैं । कुछ दिनों के बाद हर दिन प्रयोग में लाए जाने वाली वस्तुओं में कचरा-धूल-मैल आदि जम जाता है । वैसे बर्तनों/वस्तुओं के सभी कोनों को हते में एक बार तो ढंग से साफ करना चाहिए ।

६. क्या आपको अपने घर की रसोई परोसने, आतिथ्य करने की रीति के बारे में गर्व है?

रसोई बनाना व परोसना एक कला है । यदि भोजन करना यज्ञ की भाँति माना जाए, तो रसोई बनाना यज्ञ के समान तथा परोसना यज्ञकर्म ही है । अत: रसोई को स्वादिष्टपूर्ण ढंग से तैयार करना चाहिए तथा तैयार की हुयी रसोई आनंद के साथ परोसी जानी चाहिए । भोजन परोसते समय, भोजन के लिए बैठे लोगों के मन का इंगित समझ कर, परोसने की ओर ध्यान देना चाहिए । भोजनार्थी आपसे अमुक पदार्थ परोसने का अनुरोध करने के पहले ही हमें उसे भाँप कर परोस देना चाहिए ।

७. क्या यह विधा आपने बच्चों को भी सिखायी है?

बच्चों को सभी सद्‌गुणों का बोध कराना ज्येष्ठ जनों का दयित्व है। प्रारंभ में उनको परोसने का क्रम समझा कर, छोटी से छोटी वस्तु से आरंभ करते हुए, अनंतर सब कुछ परोसने का अभ्यास कराना होगा । असल में, इस प्रयोग का प्रारंभ हमसे ही होनी चाहिए ।

८. क्या आप पेयजल दुकानों से लाते हो?

पीने का पानी घर में शुद्ध करते हुए उपयोग में लाना चाहिए । पानी को उबाल

के ठंडा कर के उपयोग में लाना; मिट्टी के घड़ों में पानी का संग्रह कर के रखना; शोधकों का प्रयोग करते हुए, शुद्ध कर के उपयोग करना – ऐसा करना उचित रहेगा।

९. क्या आपके घर में भोजन करने की निश्चित ऐसा स्थान, समय, पद्धति जारी में है?

घर चाहे जितना छोटा हुआ तो भी, हर काम के लिए सुनिश्चित स्थान निर्धारित करना उचित होता है । भोजन करने, पढ़ाई करने, सोने के लिए, अतिथियों के साथ संभाषण करने, भगवान का ध्यान करने के लिए निश्चित स्थान का समायोजन हमारे लिए उपलब्ध घर में ही करना चाहिए। सोने के बिस्तर या मंच पर बैठ के भोजन करना; या पढ़ाई करना सर्वथा अनुचित है । अपनी हिंदू संस्कृति में भोजन करने की ओर भी अन्नयज्ञ के रूप में ही देखा गया है । यज्ञ याने् किसी भी विषय का निर्वहन एकाग्र चित्त से करना । यह 'अन्नयज्ञ' भी किसी स्वच्छसे स्थल पर, मन:पूर्वक, शांति के साथ संपन्न करना चाहिए । उसके लिए एक सुनिश्चित समय भी तय करना चाहिए । बगैर किसी समय की बंधन के, अन्न सेवन करते रहना अपने स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं होता । दिन में दो बार निश्चित समय पर अन्नसेवन करना चाहिए । अपरिहार्यता, अशक्तता, छुटपन या वार्धक्य में इस पाबंदी में थोड़ासा अंतर हो सकता है । साफसुथरे निश्चित स्थान पर शांति से, मौनाचरण करते हुए, परोसे हुए आहार को देवता-प्रसाद के रूप में, समाधान से बैठ के सेवन करना चाहिए । क्रोध से खाना, पदार्थों की निंदा करते हुए खाना निषिद्ध है ।

कभी भी संतुष्ट होने तक ही आहार सेवन करना चाहिए । अच्छा है, तो अधिक खाना; अरुचिकर है, तो कम खाना; तदुपरांत अन्यान्य पदार्थ खाते जाना; अथवा आधा-अधूरा खाकर छोड़ दिया पदार्थ थोड़े समय के बाद खाना अच्छा नहीं ।

जमीन पर बैठ के ईश्वरध्यान करते हुए आहार का सेवन करना अच्छा होता है । किसी भी बहाने परोसे हुए पदार्थ थाली में छोड़ना नहीं। भोजन के बाद पानी पीकर, खाना परोसने वाली महिला को वंदन करते हुए, *'अन्नदाता सुखी भव'* ऐसा कहते हुए, उस दिन हमारे लिए आहार प्राप्त कराने वाले सभी का शुभचिंतन करते हुए, जो लोग बिना अन्न के कराह रहे हैं, उनको भी आहार प्राप्त हो, सबका भला हो इस सदाशय के साथ भोजन समाप्त करना चाहिए । तदनंतर भोजन की थाली, लोटा स्वयं धोकर उस जगह को शुद्ध करना चाहिए ।

१०. **क्या आपके घर में भोजन जमीन पर बैठ कर या टेबल पर होता है?**

टेबल-भोजन आजकल प्रतिष्ठाप्राप्त, पश्चिमी संस्कृति का द्योतक बन गया है और उसे अनुकूल भी माना जाता है । लेकिन, स्वास्थ्य की दृष्टि से टेबल-भोजन उतना अच्छा नहीं है । सीधे जमीन पर बैठ कर आहार सेवन करते समय, आहार भी सीधे अन्ननलिका के द्वारा जठर में प्रवेश करता है, जो पचनक्रिया के लिए अनुकूल होता है।

११. **क्या आपके घर में परोसने की कोई पद्धति है? अथवा हर कोई स्वयं ही परोस लेता है?**

भोजन करते समय दूसरों द्वारा परोसा जाना उचित होता है । अपनी घर वाली प्यार-आदर के साथ परोसते समय, हर कोई अधिक खा पाता है । हमारे लिए वांछित पदार्थ बलात् परोसे गए, तो सत्व के साथ यह अपनापन व प्यार भी अपने देह में प्रविष्ट होता है । रसोई का स्वाद व वैशिष्ट्य ध्यान में आता है । स्वयं ही परोस लिया तो, इनका अनुभव नहीं होता । उससे समाधान भी नहीं मिलता । घर में एक परोसती है और अन्य सभी खाना खाते हों, तो एक-दूसरे की इच्छाओं का ध्यान रखा जाता है । किसे क्या भाता है, कितना चाहिए, आदि सब परोसने वाली को पता होता है । उसे वही पदार्थ अधिक परोसा गया तो, दोनों में भी धन्यता का भाव उत्पन्न होता है । साथ ही, कभी-कभार बीमार पड़ें, या उम्र बढ़ गयी हो, तो पथ्य-अपथ्य के पदार्थ भी सबको पता होते हैं । इसीलिए, सभी बच्चें माँ के हाथों के खाने व परोसने में ही प्यार का अनुभव करते हैं ।

१२. **क्या आप जानते हैं कि कौन क्या चाहता है? कितना और क्यों चाहता है? कब चाहता है?**

परोसना भी एक कला ही है । गहन, गंभीर निरीक्षण न हो, तो इसमें निपुणता प्राप्त करना उतनी सहज-सुलभ बात नहीं । परोसते समय इसका निरीक्षण करना चाहिए कि कौन, किन पदार्थों का, कैसे आस्वादन करता है? यह खाना खाने वाले की रुचि, मन:स्थिति, संदर्भ, स्वास्थ्य आदि बातों पर निर्भर होता है । दु:खी मन का सांत्वनात्मक रीति का उपचार किया, तो अच्छा होता है । युवाओं को परोसते समय, उनमें उत्साह भरना चाहिए । ज्योष्ठ जनों को उनके स्वास्थ्य के लिए अहितकारक पदार्थ रहें, तो उनपर काबू रखना होगा । इस प्रकार विवेक से सब कुछ तथा सबकी ओर देखते हुए, प्रसन्न मुद्रा व मन से परोसने की अभ्यास सबको होनी चाहिए ।

१३. **क्या आपके घर में, बाएं हाथ से परोसा ही न जाए, ऐसा नियम है?**

बाएं हाथ से परोसना अच्छा तरीका नहीं है । अपने शरीर के अंगांगों को एक विशिष्ट क्रम में विशिष्ट काम के लिए ही उपयोग करने की प्रथा है । तद्नुसार, हम कुछ भी देना चाहते हैं, तब केवल दाहिने हाथ का ही उपयोग करना चाहिए । इसीलिए जीवनसार रूपी आहार परोसते समय, दाहिना हाथ ही उपयोग में लाना चाहिए । दाहिने की तुलना में बाएं हाथ से काम करना थोड़ा कष्टप्रद है । बाएं हाथ से परोसने से पानी या आहार पदार्थ गिर जाने की संभावना अधिक होती है, जिससे खाने वालों को कष्ट भी पहुँच सकता है । अत: दाहिने हाथ से ही परोसना चाहिए ।

१४. **क्या महिलाएँ पुरुषों के भोजन के बाद ही भोजन करती हैं? या पहले? या उनके साथ?**

महिलाएँ पुरुषों के भोजन के उपरांत खाना खाती हैं, तो अच्छा है। इसमें ऐसी भावना नहीं लानी चाहिए कि महिलाएँ पुरुषों से कम स्तर की होती हैं । घर में सहज ही महिलाएँ ही रसोई बनाने का काम बिना नागा किए, चलाती आयी हैं । अत: घर वाली द्वारा ही बनायी हुयी रसोई अपने पति-बच्चों आदि को खिलाके, घर आए अतिथियों का सत्कार करने की परंपरा है । ऐसे समय, बनायी हुयी रसोई में कम-अधिक होना स्वाभाविक है । सबके खाने के पश्चात्, उसे सही करने की होशियारी महिलाओं में होती है। इसके साथ ही परोसते समय, महिलाएँ ही सबकी आवश्यकों इच्छाओं का ध्यान रखती हैं । अत: उन्हें बाद में ही खा लेना उचित होगा । और उनको परोसने की चिंता या व्यवस्था पुरुषों को करनी चाहिए ।

१५. **अपने घर में कितनों को भोजन करने की कला विदित है?**

जैसे रसोई बनाना एक कला है; वैसे ही बनायी हुयी रसोई का क्रमबद्धता से सेवन करना भी एक कला है । भोजन करते समय, धीरे-धीरे हमें जो कुछ चाहिए, उसे माँग कर उसका आस्वादन करना चाहिए। खाने से पहले, स्थान को साफ कर, वहाँ खाने की थाली या पत्रावली रखनी चाहिए । बाद में थाली के पास ही एक लोटे या गिलास में पानी प्रारंभ में ही रख लेना चाहिए । थाली में खाद्य पदार्थ परोसने के पश्चात्, उसे भगवान का प्रसाद मान कर, उसमें से थोड़ासा आहार पशु-पंछियों के लिए निकाल के रखना चाहिए । अनंतर थोड़ासा भात आँखों से लगा के खाना शुरू करना चाहिए । खाने के पहले, एक चम्मच घी-मिश्रित भात खाना चाहिए । अनंतर, अति [illegible]

दाल, बाद में सार, सांभर, अनंतर सब्जी, कोसंबरी आदि का सेवन करना चाहिए । भोजन के अंत में पानीयुक्त पतली छाछ का सेवन आरोग्य के लिए अच्छा होता है । भोजन पूरा समाप्त होने पर ही पानी पीना चाहिए । कुछ लोगों के मतानुसार, भोजन के पहले, या बीच में पानी पीना उचित नहीं है ।

१६. क्या बच्चों को खाना ढंग से मिश्रित कर, जमा के तथा नीचे न गिराते हुए भोजन करना सिखाते हो?

क्रमबद्ध रीति से भोजन करना यह बड़ों के लिए जितने गौरव की बात है, उतनी ही बच्चों के लिए भी है । बच्चों को ये बातें सिखाना अच्छा रहता है । बच्चे सदैव बड़ों का अनुकरण करते हैं । इसीलिए पहले माँ को चाहिए कि एक छोटीसी थाली में दाल-भात डाल कर, उसे ढंग से मिश्रित करते हुए, वह उसे खाता जाएं, ऐसा बच्चे को सिखाएं । "हाय, उसे मिश्रण करना ही नहीं आता; सब नीचे गिरा देता है" ऐसा कह कर, यदि माँ स्वयं ही उसे खिलाते गयी, तो बच्चे को भोजन करने की रीति, पदार्थों की रुचि, या उनका परिचय होगा ही नहीं। इसीलिए माताओं को बच्चें अपना भोजन स्वयं करने की विधा सिखाते रहना चाहिए ।

१७. भोजन करते समय, 'बाएं हाथ से नहीं खाना,नीचे नहीं गिराना' आदि नियम सिखाते हो क्या?

हम ही बच्चों को अपने साथ विठा कर, भोजन के नियमों का क्रम से पालन करते गए, तो सहज ही बच्चें वही सीख लेते हैं । भोजन करते समय हठ करना, नीचे गिराना, ऊब जाना, जम्हाइयाँ लेना आदि बातें अच्छी नहीं हैं, ऐसा धीरे-धीरे भोजन के बीच ही प्यार से समझाते गए, तो बच्चे बहुत शीघ्र सीख जाते हैं ।

१८. पानी पीते समय लोटा/गिलास मुँह से लगा के पीने के स्थान पर, उठा के पीना सिखाते हो क्या?

स्वच्छता, आरोग्य व संस्कृति की दृष्टि से पानी पीते समय लोटा या गिलास मुँह से लगा के पीने के बदले, उठा के पीना अच्छी पद्धति है। लोटा मुँह से लगाने पर, हमारा लार लोटे को चिपकता है । यदि उसी लोटे का उपयोग दूसरों ने भी किया, तो उनसे वह सहा नहीं जाएगा और यह उनके स्वास्थ्य के लिए भी अच्छा नहीं है । साथ ही, पानी पीने वालों को भी स्वयं से दूसरों को कोई भी कष्ट न हो, इसी प्रकार हमने पानी पिया है, इसकी तसल्ली भी होती है ।

पानी पीने वालों को शांति से बैठ के पानी पीना चाहिए; धीरे-धीरे पीना चाहिए। गड़बड़ी से या धांधली में पानी पीने से वह तालु तक चढ़ने की संभावना रहती है, यह भी बताना चाहिए। उनको यह भी समझाना चाहिए कि हंसते या रोते हुए पानी नहीं पीना चाहिए।

चहल-पहल करते पानी पीना, सोते हुए पानी पीना आदि चेष्टाओं को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए ।

१९. क्या घर में सब जानते हैं कि दूरदर्शन देखते हुए भोजन करना स्वास्थ्य के लिए अहितकर है?

दूरदर्शन देखते हुए भोजन करना निश्चित ही अच्छा नहीं है । क्योंकि, उन कार्यक्रमों में तल्लीन होकर भोजन किया, तो हमारे भोजन का प्रमाण, पदार्थों का स्वाद, भोजन का उद्देश्य इनमें से कुछ भी बच नहीं पाता । 'यद्भावं तद् भवति' इस उक्ति के अनुसार, खाते समय हमें नजर आने वाली क्रूरता, हिंसा, कत्ल, लूट-पाट, शोषण के दृश्य आहार पाचन प्रक्रिया पर अपना प्रभाव डाल के, भोजन के मूल उद्देश्य को ही निरर्थक बना देते हैं । अत: भोजन करते समय, भगवन्नाम जप करते हुए या सुमधुर संगीत सुनते हुए या मौन रहके भोजन करना चाहिए ।

२०. क्या आपको पता है कि खड़े होकर या चहलपहल करते भोजन करना आरोग्यकर नहीं होता?

खड़े होकर या चहल-पहल करते भोजन करना आरोग्य के लिए अच्छा नहीं होता । इससे अन्ननलिका में आहार सही रीति से उतरता नहीं और पदार्थों पर ध्यान न होने से अरुचि उत्पन्न होती है। अत: सदासर्वदा बैठ के ही भोजन करना चाहिए ।

२१. क्या आप सिखाते हो कि विशेष दिनों में क्या कुछ,और कहाँ-कहाँ परोसना होता है?

अपनी हिंदू संस्कृति के आचार-विचार-परंपरा में अतिथि/अभ्यागतों को भोजनोपचारादि करने की विधा तथा तीज-त्योहारों-पर्वों पर भोजन करने की विधा बहुत ही अपूर्व होती है। 'भारतीय आहार-खाद्य संशोधन विभाग' (सी.एफ.टी.आर. आई.)वालों ने भी अपनी भोजन विधा को 'अत्युत्कृष्ट' घोषित किया है । बनायी हुयी सभी विशेष रसोई आरोग्यवर्धन में सहकारी बनने की रीति से केले के पत्तों पर,

कौन-कौनसा पदार्थ कहाँ-कहाँ परोसना चाहिए, यह समझ कर परोसने की अपनी कला अतीव अद्भुत है । नोक वाले केले के कोमल पत्ते में दाहिने भाग के छोर पर अमृततुल्य पायस, अनंतर जीवरस भात के ऊपर घी व सांभर, दाल, बायीं ओर लवण-तिक्त मिश्रित चित्रान्न, ऊपरी भाग में सत्वपूर्ण हरी सब्जी व कच्चे दालों का संगमरूपी कोसंबरी, जीवनसत्वों से परिपूर्ण तरकारी-सब्जियाँ, ऊपरी दाहनी भाग में भात को स्वाद दिलाने वाला कूट, सांभर, छाछ की कढ़ी आदि इस केले के पत्ते में घम्घम् सुगंध फैलाने वाले इन मिष्ठान्नों को देखते ही किसी भी व्यक्ति के मुँह में पानी छूट सकता है । इन सब पदार्थों का यथाशक्ति आस्वाद लेने के पश्चात्, विशेष त्योहारों-व्रतों में तैयार किए हुए खाद्यपदार्थ सेवन करते हुए, हरा धनिया-कढ़ीपत्ता-सोंठ मिलाकर तैयार किया हुआ मठ्ठा पीने पर, भोजन का स्वाद वास्तव में अद्भुत लगता है । ये सब चीजें किस प्रकार परोसनी चाहिए, कैसे खिलानी चाहिए, किस पदार्थ से शरीर को कौन-कौनसे लाभ पहुँचते हैं, यह भी बच्चों को समझाना चाहिए ।

२२. आपको पता है कि पके-पकाए पदार्थ फ्रिज़ में नहीं रखने चाहिए?

फ्रिज़ का प्रचलित अर्थ 'बासे आहार की शीत पेटिका' ऐसा है। आहार पदार्थ अति गर्म रहते या अति ठंडे होने पर खाना स्वास्थ्य के लिए मारक है। इसके साथ ही, पकाए पदार्थों को फ्रिज़ में रखने से वे खराब नहीं हुए, तो भी अपना सत्व अवश्य गँवा लेते हैं। ऐसे आहारपदार्थों के सेवन से शरीर को कोई भी लाभ नहीं होता। अत: समय की बचत करने के विचार से हो, या हमें होने वाले परिश्रमों की बचत; आहार-पदार्थ अधिक प्रमाण में बना कर, फ्रिज़ में रखते हुए, उनको पश्चात् में उपयोग में नहीं लाने चाहिए।

२३. क्या आप भोजन के बर्तन तत्काल धो डालते हो? या पूरी रात वैसे ही रख देते हो?

रसोई के बर्तन, भोजन की थालियाँ, लोटे, गिलास आदि बर्तनों को हर भोजन के बाद तुरंत धोने की पद्धति का अवलंबन करना अच्छा होता है । अन्यथा बर्तन सूख जाते हैं और उन्हें बाद में धोना कष्टप्रद होता हैं । साथ ही, जूठनयुक्त बर्तनों के ऊपर मखियाँ, मच्छर आदि रोगाणुओं के वाहक कृमिकीट बैठ कर, बीमारियाँ फैलाने का कारण बनते हैं । इसके साथ ही, हर व्यक्ति अपना काम स्वयं करने से स्वावलंबन बढ़ता है और किसी एक पर बोझ नहीं आता; घर भी साफसुथरा रह सकता है । वरिष्टों द्वारा उपयोगित बर्तनों को छोटों द्वारा साफ किए जाने की पद्धति भी श्रेयस्कर होती है ।

अत्यावश्यक ग्रंथ

१. क्या आपके यहाँ शब्दकोश है? किस भाषा का?

इस शब्दकोश से दैनिक प्रयोगित शब्दों के विभिन्न अर्थ, सूच्यार्थ आदि सब ज्ञात हो सकते हैं । सामान्यत: अपनी बोलचाल की या प्रयुक्त भाषाओं के शब्दकोश अपने पास होने चाहिए । हिंदी, संस्कृत, इंग्लिश, कन्नड़, तेलुगु, तमिळ, मलयाली, मराठी, गुजराती, पंजाबी, बंगाली, ओड़िशी, असमी आदि अपने व्यवहार की जो भी भाषाएं हैं, उनके भाषा विषय से संबंधित शब्दकोश तथा इसके साथ ही मानवी शरीर, उसकी संरचना, आरोग्य, अपने आसपास के देश, काल, परिस्थिति व वातावरण के बारे में जानकारी से युक्त पुस्तकों का संग्रह भी अपने पास रखना उचित रहेग।

२. क्या उनका उपयोग हो रहा है?

समय-समय पर शब्दकोशों का अध्ययन करते रहने से अपनी व्यवहारभाषा के अपने ज्ञान का संवर्धन होता है। शब्दकोश से शब्दार्थ ज्ञात होने पर, अपना शब्दभंडार बढ़ता है। भाषा भावनाओं के संवहन का माध्यम होती है। इसीलिए शब्द-भाषा माध्यम के द्वारा अपना भाव प्रकटीकरण सही होता है। हर दिन ५-६ शब्दों का मूल अर्थ समझते हुए, समय-समय पर उनका प्रयोग हम करते गए, तो हम भाषा पर प्रभुत्व पा सकते हैं ।

३. बच्चों को भी शब्दकोश का उपयोग सिखाते हो?

बच्चों को शब्दकोश का परिचय करा के, आरंभ में जाने-पहचाने शब्दों का अर्थ, विस्तार पढ़/पढ़ा कर, अनंतर ही एक शब्द देकर, उसे ढूंढ निकालने को कहिए व

समझाइए । अपने स्वाध्याय के समय आने वाले नए व कठिन शब्दों के अर्थों की एक लिखित सूची बना कर रखने के लिए प्रेरित कीजिए । आगे, शब्दों व उनके अर्थों के साथ खेल खेलने की कला भी समझा देनी चाहिए ।

४. क्या आपके पास अमरकोश है?

सामान्यत: संस्कृत को सभी भारतीय भाषाओं की माता माना गया है । अमरसिंह नामक एक कोषकर्ता ने करीब ई.स.५वीं सदी में संस्कृत के अनेक शब्दों के मूल रूप, उनके और भी बीसियों रूप श्लोकबद्ध करते हुए लिख के रखा है । उसे सीखने से उन शब्दों से बना अपना शब्द-भंडार बढ़ता है । आगे, व्युत्पत्ति समझ लेने के पश्चात्, उन वस्तुओं का मूल अर्थ समझ कर, उनके गुणों को समझने में अनुकूलता होती है। अनेक शब्द यहीं से ही अपनी भाषा में स्वीकृत होने के कारण, भाषा की शब्दनाविन्यता हम देख सकते हैं । अत: सभी के घरों में अमरकोश तथा अन्य कोशों का संग्रह अवश्य होना चाहिए ।

बच्चों की भाषाशुद्धी के लिए कुछ प्रयोग करना आवश्यक हैं । बच्चें शब्दों को सुन कर, उनका अनुकरण करते हुए, स्वयं भी उनका उच्चारण करने का यत्न करते हैं। लेकिन कुछ बार गलत प्रयोग होना स्वाभाविक है । तब वे हमें मीठे-मीठे लगें, तो भी उनके बड़े होने पर, वही अवगुण बन जाते हैं । भाषासंस्कार, भाषालालित्य, भाषाप्रसार-प्रचार के लिए अनेकानेक शब्दों की जरूरत होती है । अत: बच्चों को अमरकोश के श्लोक कंठस्थ कराने चाहिए ।

५. क्या आप के घर में मानचित्र है?

मानचित्र हमें समूची धरती को दिखाता है । इससे सामान्यत: प्रदेशों का सुनिश्चित स्थान, वहाँ के सभी गुणविशेषतायें हमें पता चलते हैं । उन प्रदेशों की प्राकृतिक पृष्ठभूमि, विश्व में उनका स्थान-मान आदि ज्ञात होता है । अलग-अलग देशों का परिचय, राजधानियाँ, आस पास के देश, वहाँ के नगर, उस देश की भाषा, खंडोपखंड आदि भी समझते हैं । अत: भूपटों का अध्ययन जरूरी है । सभी घरों में भी समूचे संसार, देश, राज्य, जिले के मानचित्र आवश्यक होने चाहिए ।

६. क्या उनके साथ खेल खेलना आपको मालूम है?

बच्चों में सामान्यत: खेल खेलने की प्रवृत्ति होती है । उसका मूल कारण याने

उनका कुतूहल ही होता है । वे हर बार नयी-नयी बातें करने में अपनी अभिरुचि दिखाते रहते हैं । उसके लिए उपलब्ध साधन भी अनेक होते हैं । हम बड़ों को चाहिए कि उनके इस कौतूहल का उपयोग करते हुए, उनको हमें अनेक विषय समझाते रहना चाहिए । उसके लिए अनेक घरेलू खेल भी हैं । खेलों के उन साधनों में भूपट/नक्शा भी एक है । खेल के द्वारा उससे संबंधित अनेक विषयों को समझा सकते हैं । खेलने योग्य खेल याने –

१.	देश	:	राजधानी
२.	देश	:	खंड
३.	अक्षांश	:	रेखांश
४.	स्थान	:	देश
५.	समुद्र	:	नदी
६.	समय		
७.	प्राकृतिक विशेषताएँ आदि		

७. क्या आपके घर में पंचांग है?

पंचांग याने भारतीय कालगणना पद्धति का एक भाग है । इस पंचांग पद्धति से पांच अंगों से युक्त दिन का परिचय करा सकते हैं । वे हैं तिथि, दिन, नक्षत्र, योग और करण । यह हमारे प्राचीन पूर्वसुरियों की अद्भुत सृजनशीलता का ही परिचायक परिणाम है । अत्यंत निखरता से कालनिर्णय करने की अद्भुत प्रतिभा व कलात्मकता हमारे पुरातन ऋषिमुनियों के पास थी, इसका ही एक जीताजागता उदाहरण है यह पंचांग व्यवस्था ।

भारतीयों के अनुसार, ९ प्रकार से काल का मापन कर सकते हैं। वे हैं ब्राह्मवर्ष, दैववर्ष, पितृवर्ष, प्राजापत्यवर्ष, बार्हस्पत्यवर्ष, सौरवर्ष, चांद्रवर्ष, सायनवर्ष तथा नाक्षत्रवर्ष । अभी प्रचलित दिन और उपयोग में लाया जाने वाला दिनमान है केवल चांद्रमान, सौरमान तथा नाक्षत्रमान मात्र । इन सबको हम पंचांग द्वारा समझ सकते हैं । १६ तिथियाँ, २ पक्ष, ७ वार (रविवार, सोमवार आदि), अश्विनी-भरणी आदि २७ नक्षत्र, विष्कंभ आदि २७ योग तथा भव आदि ११ करण हैं ।

चैत्र शु. प्रतिपदा ही हमारे वर्षारंभ का दिन है । उसे पाड्य, पड़वा भी कहते हैं । उस दिन से आरंभ करते हुए, हम संपूर्ण वर्ष के दिनों की गणना करना शुरू करते हैं । यह अत्यंत वैज्ञानिक है । हर दिन भी इन पंचांगों के द्वारा उस दिन के वैज्ञानिक संकेत/

गणना, विशेषताएँ आदि सब कुछ देखने की आदत होनी चाहिए । बच्चों को भी पंचांग देखने की विधा आत्मसात करानी चाहिए ।

८. क्या आपके घर मे भगवद्गीता है?

सभी हिंदुओं के घर में अत्यावश्यक रूप में रहनी चाहिए ऐसी पूज्य कृति है भगवद्गीता । वह १८ अध्यायों वाली, ७०० श्लोकों से युक्त विश्व की अति श्रेष्ठ कृति है। इसका विश्व की अधिकतम भाषाओं में अनुवाद हो चुका है । इसे अपने घर के हर एक को व्यक्तिगत संपदा के रूप में माना जाना चाहिए । बच्चे बड़े होने पर, अति अमूल्य देन के रूप में भगवद्गीता की पुस्तक लाकर उन्हें देनी चाहिए । परिवार के हर सदस्य के पास उसकी व्यक्तिगत प्रति के रूप में उसे रखना चाहिए ।

९. क्या हर दिन गीता के १-२ श्लोक दोहराते हो?

घर में सब लोग सामूहिक रूप में प्रार्थना, भजन आदि करते समय, इस भगवद्गीता के चार-छः श्लोक तो दोहराने चाहिए । उसके अर्थ के बारे में चर्चा, चिंतन करना चाहिए । इस प्रकार, प्रारंभ में चिंतन नहीं हो सका, तो भी आगे जीवन में उसका अनुसरण करना चाहिए ।

पुस्तकस्था तु या विद्या परहस्तगतं धनम् ।
कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम् ।।

(पुस्तक में रखी विद्या व दूसरों के जेबों में रखा धन अपनी आवश्यकता के समय हमारे काम में नहीं आता ।) वैसी विद्या व वैसा धन होकर भी क्या प्रयोजन? यदि ज्ञान पुस्तक तक ही सीमित रहा, तो उसका उपयोग शून्य होता है । इसीलिए उसमें स्थित ज्ञान कंठस्थ करा लेने का स्वभाव ही बन जाना चाहिए । वैसे कंठगत होने के बाद, उसके अध्ययन में अधिक समय की आवश्यकता नहीं रहती । अवकाश के समय, बातचीत के मध्य उसका स्मरण कर सकते हैं ।

१०. क्या संपूर्ण भगवद्गीता साल में एक बार तो पढ़ते हो?

भगवद्गीता में ७०० श्लोक हैं । हर दिन न्यूनतम दो श्लोक के हिसाब से उसका अभ्यास किया गया, तो एक सालभर में संपूर्ण भगवद्गीता का सार आत्मसात हो सकता है । भगवद्गीता का केवल अध्ययन करने से भी अभ्यसित गीता का आचरण करना अधिक श्रेयस्कर है । अतः वर्ष में एक बार तो भी संपूर्ण गीता का पाठ करते

हुए, उसके बारे में एकाध कार्यक्रम का आयोजन करना चाहिए । उदा. गीताजयंति आदि के दिन इस कार्यक्रम का आयोजन कर सकते हैं । तब आसपास के लोगों को भी बुला कर, गीता का महत्व-सार-विशेषता इनके बारे में समझाना चाहिए।

११. क्या आपको अत्यंत भाया हुआ श्लोक कहीं पर लिख के रखते हो? क्या उसे किसी अन्य के सम्मुख दोहराते हो?

नित्य अध्ययन से मन की भावनाएँ प्रफुल्लित होती हैं । उन्हीं भावनाओं को और अधिक विकसित कर सकने वाले, बोधप्रद ऐसे श्लोकों का संग्रह करते हुए, उनको एक जगह लिख कर रखना उचित होता है । उनको बार-बार पढ़ते रहने से अपने मन को और भी अधिक सुख-आनंद-प्रेरणा प्राप्त होती है । इतना ही नहीं, इस प्रकार के संग्रह हमारे व्यक्तित्व को और भी अधिक सौंदर्य-तेज-ओज प्रदान करते हैं। हजारों शब्दों वाले संदेशों के बदले, इन मौक्तिक-उक्तियों के इस तरह किए गए संग्रहों के बारे में दूसरों को भी समझा देना चाहिए । उनको भी इस कार्य की प्रेरणा देते रहना चाहिए ।

१२. आपके घर में कौन-कौनसे धर्मग्रंथ हैं?

अपनी आस्था के अनुसार घर में कोई न कोई धर्मग्रंथ जैसे त्रिपिटिका, गुरु ग्रंथ साहेब, तिरुक्कुरल, तुकाराम गाथा, ज्ञानेश्वरी, रामचरित मानस, जैन ग्रंथ आदि ग्रंथ रखना एक सत्प्रथा है ।

भावचित्र

१. **क्या आपके घर में भावचित्र हैं? यदि हैं, तो किनके?**

चित्र केवल चित्ताकर्षक मात्र नहीं, तो चित्तसंस्कारात्मक भी होते हैं । इसीलिए महापुरुषों व ज्येष्ठों के भावचित्र घर में लगाने से उनके गुणों का अंगीकार करने की प्रवृत्ति बनती है । भावचित्रों का चयन करने के बारे में सावधानी व चिंतन आवश्यक होता है । स्वत: का भावचित्र लगाना श्रेयस्कर नहीं है ।

कुछ लोगों को जलप्रपात, अरण्य-वनश्री, हरियाली, नदी के आसपास का परिसर अच्छा लगता हो, तो कुछ अन्य लोगों को मरुभूमि, वहाँ का जनजीवन, विविध लोकजीवन आदि भाते हैं । कुछ लोगों को कुछ वस्तुविशेष, वास्तुविशेष मोहित करते हैं । उसी तरह और भी कुछ जनों को घटनाएँ, प्रसंग आकृष्ट करते हैं । व्यक्तियों के भावचित्र कुछ लोगों को भाते हैं । लेकिन इन चित्रों के दर्शन से हमारे ऊपर क्या संस्कार होंगे, इसका चिंतन करना उचित रहेगा ।

'समाज ही अपने जीवन का अत्युन्नत ध्येय है' ऐसा कहने वाले ही महापुरुष बनते हैं । उसी प्रकार, संपूर्ण राष्ट्र के लिए ही अपना जीवनपुष्प अर्पित करने वाले, देशमाता के संरक्षणार्थ अपने सर्वस्व का त्याग करते हुए क्रांति कें द्वारा इस देश के सौभाग्य-सुरक्षा हेतु संघर्ष करने वाले क्रांतिकारी, धार्मिक जागरण के जरिए संपूर्ण समाजोत्थान तथा समाजोत्कर्ष कार्य के प्रति निरंतर कार्यरत संत-महंत हमें प्रेरणा देते हैं । हर दिन इन श्रेष्ठ सत्पुरुषों के दर्शन करते हुए, हम स्वयं और हमारे परिजन भी उनके अनुसार बनने का प्रयास करना उचित रहेगा ।

२. क्या आपके घर में ॐकार है?

यह 'ॐकार' सभी हिंदुओं के घर में अनिवार्य रूप से रहना ही चाहिए । ॐकार सबका आदि है । सभी हिंदुओं का अति पवित्र चिह्न है। इस ॐकार के द्वारा ऋषि-मुनिजनों, दार्शनिकों ने अनगिनत अद्‌भुत उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। अ+उ+म् इन तीन अक्षरों के सम्मिलन के कारण यह प्राणायाम तथा ध्यान का मूल है। हर दिन इस प्रतिमा के सम्मुख बैठ कर, इसीका ध्यान करते हुए, प्राणायाम करते गए, तो हमारे अंतरंग की दृढ़ता वृद्धिगत होती है। इतना ही नहीं, तो मन भी परिशुद्ध होता है। इसीलिए हमें न केवल ॐकार को अपने घर में रखना है, बल्कि उसका उच्चारण, पुरश्चरण भी करना चाहिए। संस्कार प्रदान करने वाला ॐकार घर के प्रमुख स्थान पर लगाना चाहिए ।

३. क्या आपके घर में भारतमाता का चित्र है?

भारतीयों के लिए अपना देश याने केवल जगीन का एक टुकड़ा मात्र नहीं; वह हमारी पवित्र मातृभूमि है । हर एक को इस भूमि को माता के रूप में ही देखना चाहिए । 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' यह हमारी अमरवाणी है । दिन में एक बार तो अनिवार्य रूप से देशमाता का स्मरण करना चाहिए । उसके लिए जीने, उसके लिए मरने का भाव हर दिन अपने मन में संजोते रहने से, हमारे द्वारा किए जाने वाले हर कार्य को एक नया अर्थ, नया रूप प्राप्त होता है । हमारी अनेक समस्याओं के लिए अपने आप समाधान मिलता है । इसीलिए भारतमाता का चित्र भी घर में प्रमुख स्थान में रखते हुए, स्वयं अपने जीवनपुष्प से उसे सजा कर, अपने कार्यदीप से उसकी आरती उतारने की योजना व चिंतन करना चाहिए ।

४. क्या समय-समय पर भावचित्र साफ करते हो?

हम अपने आनंद, उल्लास, प्रेरणा, भक्ति, श्रद्धा, गौरव के लिए भावचित्र लगाते हैं । उस प्रकार का गौरव, सम्मान आदि प्रदान करने की यदि हमारी इच्छा हो, तो उन भावचित्रों में से कोई खराब, टूटा-फूटा, धुंधला ढीलाढाला हुआ हो, तो उसे तत्काल सही करना चाहिए । इसीलिए उनको समय-समय पर साफ करते हुए, सुंदर दिखे ऐसा करना चाहिए । इतना भर नहीं, उनके बारे में बच्चों में भी गौरव बिंबित करते हुए, विशेष प्रसंगो पर उनको सजाने की प्रेरणा भी देनी चाहिए । उसी तरह पानी, धूल, कूड़े आदि से उनको बचाना चाहिए ।

५. क्या घर में आपकी कुलदेवता/देवालय का चित्र है?

अपने पूर्वजों द्वारा परंपरागत रीति से हमें प्रदान की हुयी बातों में यह भी एक है । उनकी ओर से हर घर/कुल का एक अंकुर, गोत्र, देवता, व्यवसाय आदि बातें हमें विरासत में प्राप्त हुयी हैं । उसी तरह, उन्होंने हर घर को एक कुलदेवता प्रदान किया है । अत: हम उसकी परंपरागत रीति से पूजा करते आए हैं । उसे हम गृहदेवता या कुलदेवता कहते हुए, हर तीज-त्योहार के अवसर पर अन्य या संबंधित देवताओं के साथ इसकी भी पूजा करने किया है पद्धति है । घर में उस कुलदेवता की प्रतिमा, या उस कुलदेवता के मूलस्थान के मंदिर या उसी देवता का भावचित्र या उसके तत्व आदि को बिंबित करने वाले किसी चिह्न को घर में रखना चाहिए । इनको भी गौरवयुक्त स्थान पर रखते हुए अर्चना करनी चाहिए ।

६. क्या जीवित व्यक्तियों का चित्र लगाना उचित है?

इसका उत्तर यही होगा कि भावचित्र लगाने का उद्देश्य यदि ठीक प्रकार से समझा गया हो, तो सामान्यतया यह प्रश्न उठता ही नहीं। लेकिन आध्यात्मिक मार्गदर्शक या गुरुदेव के चित्र के लिए यह सूत्र लागू नहीं है।

दूरभाष

१. आपके घर में कितने दूरभाष हैं?

जैसे-जैसे आधुनिक विज्ञान विकसित होते गया, वैसे-वैसे जगत् छोटा होता गया; अर्थात् जनसंपर्क अधिक हुआ है । इसके लिए आज हमारे द्वारा उपयोगित अन्यान्य माध्यम ही कारण हैं । समाचारपत्रों के जरिये किसी भी भूभाग का किया गया वृत्तांकन भोर होने तक हमारे घर की खबर बन जाती है । टी.वी, आकाशवाणी भी इसके पूरक ही हैं । चाहे जितने दूरस्थ देश-विदेश के किसीभी कोने में वास करने वाले अपने सगे-संबंधी, परिचित, आत्मीय जनों के साथ संपर्क कर उनका कुशलमंगल जानने, उनको आपात् संदेश भेजने के लिए दूरभाष एक महत्त्वपूर्व साधन बन गया है । अब वह जनजीवन का एक अपरिहार्य आवश्यक उपकरण बन चुका है । लेकिन, 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' (सब प्रकार की अतिशयता सब स्थानों पर वर्ज्य करनी चाहिए ।) इस उक्ति के विपरीत, आवश्यकता हो या नहीं, आज कई घरों में एक से भी अधिक दूरभाषयंत्रों का होना नागरीकता, प्रतिष्ठा का संकेत बन गया है । घर में सबके उपयोगार्थ एक दूरभाषयंत्र का होना ठीक है । उद्योजक, पर्यटक, विक्रय प्रतिनिधि आदि अपने लिए निजी दूरभाष का उपयोग कर सकते हैं । इसे छोड़ कर, घर के सब लोगों के पास अनावश्यक रूप में अलग-अलग दूरभाष रखना उचित नहीं है ।

२. दूरभाष का प्रयोग बढ़ रहा है, पर सुविधाएँ क्या हैं?

इसमें कोई दो राय नहीं हैं कि दूरभाष आज की जीवनशैली का एक अभिन्न अंग

बन गया है । दूरभाष के बहुत से उपयोग हैं । आज के नगरजीवन व्यवस्था में सुबह घर छोड़ने से लेकर रात घर लौटने तक कुछ भी घटित हो सकता है, कौनसी भी आपात् स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। ऐसे समय, दूरभाष का एक बुलावा प्राण भी बचा सकता है; बड़ी संकट टाल सकता है । घर के लोगों के भय का निवारण करने, तत्काल संदेश पहुँचाने का उत्तम साधन याने दूरभाष है । ऐसे अनमोल माध्यम का उपयोग महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए करना अच्छा है ।

३. दूरभाष से क्या कोई कष्ट हुयी है? क्या समस्याएँ उत्पन्न होती हैं?

एक वस्तु का जितना उपयोग होता है, उतनी ही कष्ट भी होती हैं । अकाल बजने वाली दूरभाष की घंटी हमारी नींद, धैर्य को बिगाड़ देती है । अनामिक बुलावे हमारे अंदर डर पैदा करते हैं । उनमें भी नवयुवतियों को आने वाले अश्लील बुलावे उनपर अनहोनी ढहा सकते हैं। कुछ विपणन संस्थाएँ अनचाहा, बिनमाँगा ऋण देने के लिए बार-बार दूरभाष के द्वारा सताती रहती हैं । भोजन-ध्यान आदि के समय या उल्लास में घर वालों के साथ बैठे समय अनावश्यक बुलावे हमें बाधित करते हैं ।

४. आरोप है कि आप अपने निकटस्थ संबंधियों के घर जाते नहीं । इसका क्या उपाय आपने खोज रखा है?

आधुनिक मनोरंजन साधनों की शरण गया आज का मानव अब 'सींप का भीतरी जीव; बन गया है । अत: अब हमें इस कवच को त्याग कर, सामुदायिक जीवन का स्वागत करना चाहिए । उसके लिए अपने बंधु-मित्रों से अपना संपर्क बढ़ाना चाहिए। बीच-बीच में सगे-संबंधियों, परिचितों के घर जाकर उनसे मिलना चाहिए । उनको छुट्टियों के दिनों तथा तीज-त्योहारों में आमंत्रित करते हुए अपने घर में आतिथ्य-सत्कार करना, सभी मिल कर हास्य-विनोद, खेल-कूद करते हुए आनंद का अनुभव करना अच्छा रहता है । इससे बच्चों का जनसंपर्क भी बढ़ता है और वे उत्तम नागरिक बनने में सहायक होता है ।

५. कहते हैं कि पत्र लिखना बंद ही हुआ है । आपने इसका क्या उपाय ढूंढ लिया है?

हमारे जनजीवन में पहले से ही पत्रव्यवहार प्रचलित रहा है । अत: बादल जैसी आसमानी, जड़ वस्तु या पशु-पक्षियों का भी इस्तेमाल किया जाता था । कबूतर, तोते,

कुत्ते आदि को डाकिये की भूमिका में ढाला गया था । कालिदास ने तो अपने महाकाव्य का नाम भी 'मेघदूत' ही रखा है । इस प्रकार पत्रव्यवहार एक रोचक अनुभव ही होता है । चाहे जितने आधुनिक साधन आकर संपर्क सुलभ हुआ होगा, तो भी पत्रव्यवहार का अनुभव ही अद्‌भुत है। पत्रलेखक अपने मन का आनंद, दु:ख, तड़पन, संघर्ष आदि को वाचक के मन में सीधे उतर जाए, ऐसा लिख सकता है। आमने-सामने या दूरभाष पर नहीं कह सकने वाली बातें पंत्र में जस की तस उतारी जा सकती हैं । अपने प्रियपात्रों के पत्र समय-समय पर पढ़ते रहने से मन को आनंद मिलता है । कुछ बार तो ये पत्र प्रमुख साक्ष्याधार के रूप में खड़े होते हैं । अपने आत्मीयजन, स्नेही-मित्रों के साथ अपनी भावनाओं को बाँट लेने वाला पत्रव्यवहार अवश्य रहना चाहिए । बच्चों में भी समय-समय पर अपने मित्रों को पत्र लिखने की परिपाटी विकसित करनी चाहिए।

६. दूरभाष हाथ में लेते ही पहले क्या कहते हो?

सामान्यत: सभी लोग दूरभाष हाथ में लेते ही कहा जाने वाला शब्द है 'हैलोऽ'। लेकिन यह कितना उचित है, इसके बारे में सोचना जरूरी है । क्या हमें हर बात में विदेशियों का अनुकरण करना आवश्यक है? निश्चय ही नहीं । उसके स्थानपर, हमें उचित लगने वाला 'हरिॐ', 'अभिवादनम्', 'नमस्कार', 'शरणु', 'नमस्ते' 'सत्श्री अकाल', 'वणक्कम्' जैसे शब्दों का प्रयोग करना योग्य होगा ।

७. दूरभाष पर बोलते समय व्यर्थ की बातें न करते हुए, क्या जितना आवश्यक है, उतना ही बोलते हो?

यंत्र हो या उपकरण, उसे मानव के अधीन रहना चाहिए । दूरभाष पर बोलते समय भी वही बात लागू होती है । जितना आवश्यक है, उतना ही बोलना चाहिए । हमें बुलावा करते समय, हमसे संभाषण करने वाले व्यक्ति के साथ क्या कुछ बोलना है, उन विषयों/बिंदुओं को अपने मन में ही गूँथ लेने के पश्चात् ही बोलना शुरु करना चाहिए । तब यदि आप अति आत्मीयता से अनाप-शनाप गपशप, असंबद्ध विषय बोलते गए, तो समय व धन दोनों ही जाया होते हैं । इसके अतिरिक्त, दूसरी ओर के व्यक्ति का मनोभाव तथा उसके निरत कार्य दोनों भी बिगड़ सकते हैं । इसीलिए जो कुछ बोलना/बताना है, उसे समग्रता से लेकिन संक्षेप में बता कर, बात समाप्त करना सर्वथा योग्य होता है ।

८. उस प्रकार की परिमित बातें करने हेतु आप किन बिंदुओं की ओर ध्यान देते हो?

दूरभाष पर बोलते समय हमें समयप्रज्ञा तथा दूसरों का मनोभाव ध्यान में लेना/रखना पड़ता है। लेकिन बहुत बार, हम आवश्यकता न होते हुए भी ऐसा करते हैं। हमें बगैर समयप्रज्ञा के, या घर के लोग किसी विशेष विषय पर चर्चा करते समय, या प्रवास के दौरान, या कार्यालय में काम करते समय, उनको कष्ट होगी इससे बेखबर होकर, अनावश्यक दूरभाष नहीं करना चाहिए। इसके विपरीत, किसी दूसरे का या किसी कंपनी/दफ्तर का दूरभाष है, इसीलिए अनावश्यक होते हुए भी उसका उपयोग करना भी उचित नहीं है।

९. कहते हैं कि दूरभाष पर बोलते समय बोलने वाला प्रत्यक्ष अपने सम्मुख न होने के कारण, कुछ बार अपनी भाषा ग्राम्य, कठोर हो सकती है। इसका क्या उपाय आपने सोच लिया है?

यह एक सर्वसाधारणसी बात है। काम के दबाव में या किसी व्यक्ति से गहन विचार विनिमय करते समय, परिजनों के साथ आनंद से बैठे समय अनावश्यक दूरभाष आने पर सहज ही अपनी बातों में असहनीयता, क्रूरता झाँक सकती है। दूरभाष करने वाले व्यक्ति के बारे में सद्भाव होने पर भी, ऐसा हो सकता है। अत: ऐसे समय, दूरभाष की संख्या व उनका नाम देख कर, अपने मन का निग्रह करते हुए, यथासंभव मृदु मधुर भाषा में ही बोलना चाहिए।

१०. दूरभाष पर सुने बिंदु तत्काल कागज पर अंकित करते हुए, क्या संबंधितों को बता देते हो?

संचारी दूरभाष (मोबाईल) सभी घरों में हर किसी के पास नहीं होता। इसीलिए स्थिर दूरभाष सभी घर वालों के लिए आवश्यक होता है। अत: दूरभाष के पास एक छोटी पुस्तिका रखते हुए, घर के किसी दूसरे को बुलावा आया हो, तो उसे करने वालों का नाम, उन्होंने किस विषय के संबंध में दूरभाष किया था? क्या वे फिर से दूरभाष करने वाले हैं? अथवा उनको यहीं से दूरभाष करना चाहिए? यदि हाँ, तो उनकी दूरभाष-संख्या आदि बातें उस दिन के दिनांक के साथ लिख के रखी जाएं, तो अनुकूल होता है तथा दूरभाष करने वाले व्यक्ति की पूरी जानकारी भी मिल पाती है।

११. क्या आपके पास दूरभाष सूची है?

दूरभाष यंत्र के पास ही एक दूरभाषों की सूची रखनी चाहिए । इसे अंग्रेजी भाषा में Telephone Directory कहते हैं । उसमें व्यक्तियों का नाम, पता, दूरभाष संख्या होती है । इसके साथ ही केवल हमसे संबंधित, अड़ोस पड़ोसी, सगे-संबंधी, आप्त-मित्र ऐसे सभी अपेक्षित लोगों के दूरभाषों की संख्याएँ क्रमबद्ध रीति से लिख कर रखनी चाहिए। यहाँ एक बात ध्यान में लेनी होगी । ऐसी दूरभाष-सूची तैयार करते हुए, उसे दूरभाषयंत्र के समीप ही रखनी चाहिए । लेकिन इन संबंधितों, आप्तमित्रों, परिचितों, रसोई गैस-विद्युत-जल आदि विभागों का नाम, पता, ई-मेल आदि सब अकारादि क्रम में लिख कर रखना चाहिए । करीब ४-५ वर्षों के पश्चात्, उसे बाहर न फेंकते हुए, आवश्यक लोगों की दूरभाष-संख्याएँ नयी सूची में लिखकर, पहली वाली सूची को किसी सुरक्षित स्थान पर रख देना चाहिए । बच्चों को भी इसका प्रयोजन समझा देना चाहिए । थोड़ेसे बड़े हो जाने पर, उनको ही लगेगा कि ऐसी एक सूची स्वयं भी बना लेनी चाहिए ।

रुग्ण-सेवा

१. **क्या आपको पता है कि घर में कोई बीमार हो तो उनपर करने योग्य प्रथमोपचार कौनसे हैं?**

सामान्यतः शरीर के संतुलन में होने वाले अंतर को ही 'रोग' कहा जाता है। उसके कारण अलग-अलग हो सकते हैं। आज सबसे पहले दवाइयों की गोलियाँ देने की पद्धति प्रचलन में आ चुकी है। जैसी-जैसी नागरीकता, विज्ञान विकसित होते जा रहे हैं, वैसे-वैसे शरीरस्वास्थ्य को प्रमुखता देनी होती है। बीमारियों की जानकारी, संज्ञान, उनके उपचार, प्रति-औषधियाँ, प्रतिकर्म, प्रथमोपचार आदि के सम्बंध में समझ लेना आवश्यक है। सर्दी-जुकाम-खाँसी-बुखार कभी भी आ सकते हैं। इनकी घरेलू औषधियाँ देकर या केवल पथ्य पालन कर के ही, उनका निवारण कर सकते हैं। हाथ-पैरों में चोट लगने, खून निकलने पर करने योग्य प्रथमोपचारों की जानकारी होना अत्यावश्यक है। वैद्यों के पास जाने से पहले, प्रथमोपचार की कल्पना व आचरण इन दोनों के बारे में हमें पता होना जरूरी है।

२. **क्या आपको पता है कि घर में उपलब्ध वस्तुएँ, पथ्य, विश्रांति, गर्म पानी आदि से अनेक बीमारियों का निवारण होता है?**

'घर-आँगन की वनस्पति औषधि नहीं होती' इस व्यंगोक्ति का अर्थ अनेक लोगों को विदित नहीं है। आँखों को दिखायी देने वाली हर वस्तु किसी-न-किसी प्रकार से मानव के लिए सहायक होती है। उसमें भी घर में हर दिन प्रयोगित होने वाली वस्तुओं

में अनेकविध पोषकांश, रोग-निवारक शक्तियाँ होती हैं । उदाहरण के तौर पर बताना हो तो, नमक दाँतदर्द के लिए रामबाण है; स्वाद की समस्या का परिहारकारक है । तुलसी सर्दी-खाँसी का शमन करती है । धनिया रोगनिवारक, मूँगदाल शीतकारक, नारियल का पानी व विविध फल उत्तम पोषक होते हैं । नारियल या अरंडी का तेल, चंदन, भस्म-विभूति आदि बीसियों समस्याओं पर उचित औषधियाँ हैं । शक्कर, शहद आदि वस्तुएँ भी सहायक हैं ।

आयुर्वेद बताता है कि 'बिना पथ्य के स्वास्थ्य नहीं।' इसीलिए किन-किन संदर्भों में क्या-क्या और कितने प्रमाण में सेवन करना है, इसकी जानकारी होनी चाहिए।

विनापि भेषजैः व्याधिः पथ्येनैव निवार्यते।
न हि पथ्यविहीनानां भेषजानां शतैरपि ।।

यह चरक संहिता की उक्ति है । पथ्य का महत्त्व समझाते हुए चरक महर्षि कहते हैं, 'पथ्य के चलते वैद्य ही न हो, तो भी व्याधियाँ मिट जाती हैं '। अब यह नहीं दिखायी देता कि आधुनिक वैद्यकीय पद्धति में पथ्य पर अधिक बल दिया है । ज्यादा से ज्यादा, बुखारग्रस्त रोगी को ठंडा पानी नहीं पीना चाहिए, बस । लेकिन, औषधि/गोलियाँ खायी हैं, इस बहाने, पथ्य का पालन नहीं किया, तो स्वास्थ्य निश्चय ही बिगड़ता है । अतः हर समस्या का पूरा शमन केवल पथ्य से ही संभव है ।

पानी या गर्म पानी देह के लिए बहुत ही आवश्यक है । शरीर के लिए पानी की भूमिका महत्त्वपूर्ण है । मनुष्य के स्वास्थ्य की दृष्टि से सभी प्रकार से साफसुथरा पानी पीना अच्छा होता है । शरीर की स्वास्थ्यरक्षा के लिए शुद्ध पेयजल ही आवश्यक है । ऐसा शुद्ध पानी न मिलता हो, तो गर्म पानी पीना श्रेयस्कर होता है । बीमारी में अवश्य ही गर्म पानी पीना चाहिए। साथ ही नया पानी भूमि पर आते ही उसे उबाल के ठंडा कर, छान के पीना चाहिए ।

विश्राम से देह तथा मन दोनों को आराम मिलता है । शरीर स्फूर्ति पाता है । विश्रांति को आलस्य नहीं मानना चाहिए । उचित समय में विश्राम करना स्वस्थ व्यक्ति का लक्षण है।

इस प्रकार पथ्य, गर्म पानी व विश्राम से अनेक प्रकार की बीमारियों का निवारण होता है ।

३. 'अस्पताल में भर्ती करना ही अच्छा मार्ग है' ऐसा निर्णय क्या आप आनन-फानन में लेते हो?

आजकल एक और चलन चल पड़ा है। घर में किसी को थोड़ासा बुखार ही

क्यों न आया हो, उसे तत्काल दौड़ते हुए अस्पताल में भर्ती किया जाता है । अस्पताल में भी वहाँ के वैद्य तथा परिचारक प्रथम फलाँ-फलाँ परीक्षण करा लाने के लिए कह के, उनके फलितों की प्रतीक्षा करते हैं । सामान्या बुखार आदि आना मनुष्य के स्वास्थ्य का लक्षण है, जो शरीर के संवर्धनार्थ व संपोषणार्थ ही होता है । उसपर घर में ही प्राथमिक चिकित्सा करने के पश्चात् भी स्थिति सुधरी नहीं या और अधिक बिगड़ गयी, तो अस्पताल में भर्ती कराने का विचार करना उचित होगा । प्रारंभ में ही, अस्पताल में भर्ती करना ही एकमात्र विकल्प है ऐसा निर्णय करना सही नहीं है ।

४. यदि घर में कोई बीमार हो, तो 'उसे क्या-कुछ देना चाहिए?' यह सोचकर आप क्या करते हो?

आयुर्वेद के अनुसार, शरीरस्थ धातु व मल इनका सामान्य संतुलन बिगड़ जाना ही बीमारी का कारण होता है ।

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियाः ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ।।

यह चरक संहिता का श्लोक है। यहाँ दोष याने वात-पित्त-कफ नामक त्रिदोष; शरीर के विविध भागों में स्थित उष्णता ही अग्नि; रक्त-अस्थि-मांस-मेद-मज्जा-वीर्य-रस आदि सप्तधातु; इन सबकी साम्य अवस्था, मल-मूत्र विसर्जन क्रियाओं में सहजता व मन-इंद्रिय-आत्मा की प्रसन्न अवस्था को स्वास्थ्य या आरोग्य कहा गया है। तद्नुसार, 'आधि' याने शारीरिक व व्याधि याने मानसिक समस्याएँ होती हैं। अतः किसी रोगी का उपचार करना याने उसके रोग या शरीर की क्षमता के आधार पर करना होता है। ऐसा होने पर भी, व्यक्ति के गुणलक्षणों के अनुसार दी जाने वाली औषधियाँ, उपचार आदि सही ढंग से चलाने पड़ते हैं। प्रारंभ में अवश्य ध्यान देने योग्य कार्य याने शुचिता अर्थात् निर्मलता। सबको निर्मलता का परिपालन करना चाहिए। उसके उपरांत रोगी के शरीरधर्मानुसार चिकित्सा देनी चाहिए। वैद्यों की अनुज्ञा से ही समय-समय पर औषधोपचार-पथ्य-विश्रांति-आहार आदि ढंग से समझकर, प्राथमिकता के अनुसार उनका पालन करना चाहिए । उससे रुग्ण के रोग का निवारण होकर, घर में आनंद पुनः स्थापित होता है।

५. क्या आप रोगी के लिए आवश्यक सान्त्वना का वातावरण निर्माण कर सकते हो?

शरीर की स्थिति पर रोग के लक्षण निर्भर होते हैं । मानसिक रुग्ण होने पर भी, वह उसके हर दिन की गतिविधियों पर प्रभाव डालता है। उसका निवारण करना घर के सभी लोगों का कर्तव्य है। अत: सबको चाहिए कि वे बीमार व्यक्ति के स्वास्थ्यलाभार्थ समुचित प्रतिक्रिया देते रहें। रोगी के बारे में घृणा प्रदर्शन न करते हुए, उसके बारे में चिंता व चिंतन करना ही प्रथम शुश्रूषा है । रुग्ण के पास रह कर, उसके छुटपुट काम, खानपान, उसकी आवश्यकता ओं के प्रति संवेदनशीलता बरतना यह अनंतर की स्थिति है । हमारा व्यवहार उसके विश्राम के लिए पूरक ही रहना चाहिए । बीमार व्यक्ति को बहुत बोलने के लिए प्रेरित करने से बीमारी बढ़ सकती है। इसके विपरीत, हमें उनका उचित ध्यान रख कर, उत्साह भर कर, उनका चित्त प्रसन्न रखने की व्यवस्था करना चाहिए ।

इसके साथ ही, उनके लिए और भी कुछ बातों का त्याग करने की आवश्यकता भी पड़ सकती है । उनमें उसके पथ्य की रसोई बनाने पर, हमें नाक नहीं सिकोड़ना चाहिए; उसके विश्राम के समय अपने सुखार्थ संगीत-नृत्य-टीवी आदि लगा कर नहीं देखना चाहिए; जोर से बोलना या हँसना भी नहीं चाहिए । इस प्रकार सब के द्वारा ऐसा वातावरण रखा जाना चाहिए, जिससे उनकी बीमारी अपने आप ही दूर हो जाए।

६. क्या आप समय-समय पर स्मरणपूर्वक औषधि, समुचित आहार देना जानते हो?

बीमार व्यक्ति की सबसे पहली आवश्यकता होती है अच्छी बातचीत, परिशुद्ध माहोल, अनंतर औषधि-उपचार-पथ्य-आहार-विश्रांति आदि । दैनिक आहार के स्थान पर, सुपाच्य व देह को शक्ति दे सकने वाला आहार देना उचित होता है। उसके लिए समयबद्धता के भी नियम होते हैं। अत: तत्कालीन ऋतुओं व समय के अनुसार, उनको उपचार प्रदान करना चाहिए । चाहे वह भोर हो या मध्य रात्रि, हमें उनका उपचार करना चाहिए। बीमारों को भी ऐसा कभी भी नहीं लगना चाहिए कि वे एकाकी/अकेले हैं । घर में स्थित रुग्ण केवल सभी घर वालों के श्रम-सहयोग से ही शीघ्र भलाचंगा हो सकता है । समय-समय पर उपचार बहुत आवश्यक है, इसी कारण से उनको गालियाँ देकर, डाँटते, फटकारते हुए उपचार करने के स्थानपर सम्मान के साथ, प्यार से, समुचित औषधि-आहार देते हुए, हमें उनकी शुश्रूषा के लिए आगे आना चाहिए ।

७. **क्या आप उनकी विश्रांति में बाधा न आवें, इस प्रकार घर के कामकाज चलाते हो?**

घर में कोई व्याधिग्रस्त हुआ, तो पूरे घर की सामान्य व्यवस्थाएँ रुकती नहीं, रुकनी भी नहीं चाहिए । किंतु अपने घर में कोई बीमार है, इसकी सजगता सब सदस्यों में सदैव रहनी चाहिए । जब वे सोए रहते हैं, तब साफसफाई के नाम पर या अकारण, उनको व्यर्थ में अनावश्यक रुप से नहीं जगाना/उठाना चाहिए तथा अशुचिता को वैसा ही रखना भी नहीं चाहिए । उलटे, बीमार व्यक्ति उस स्थान से जब दूर रहता है, तब इस काम को निपटाना चाहिए । उसी प्रकार उनके विश्राम के समय जोर से गीत गाना, नाचना आदि नहीं करना चाहिए । उनके कमरे के पास अधिक शोरगुल या उनको पीड़ा, वेदनादायक काम नहीं करना चाहिए । उनका उपहास या व्यंग करना, पीड़ा पहुँचाना, किसी भी बात का अनावश्यक अति आग्रह करना आदि में से कुछ भी न हो, ऐसी सावधानी बरतनी चाहिए।

८. **रात में जागने का समय आया, तो क्या आपको उसकी किरकिरी लगती/होती है?**

हमें अपनी संस्कृति ने अपना सब कुछ अग्नि को अर्पित करने की बात सिखायी है । अपने ही घर के लोग व्याधिग्रस्त होने पर, उनके लिए रात भर जागने की जरूरत आयी, तो वह काम हँसते-हँसते करना चाहिए। इसे भगवान के द्वारा हमारे उद्धार के लिए ही दिया हुआ वरदान मान कर, तद्नुसार आचरण करना चाहिए । तभी कष्ट में भी आनंद लेने का भाव हममें जाग्रत होता है ।

९. **अस्वस्थ व्यक्ति का मलमूत्र साफ करने का प्रसंग आया, तो क्या आप वह काम प्यार से करोगे?**

कुछ बार, अस्वस्थ व्यक्ति की मानसिक-शारीरिक-आंतरिक शक्ति क्षीण होती है। तब वे अपने मल-मूत्र-वमनादि पर संयम नहीं कर पाते। वैसे प्रसंगों पर वे बिस्तर में ही विसर्जित कर देते हैं । लेकिन, उन्हें देख कर, हमें ऊब नहीं जाना चाहिए, उनकी निंदा या आलोचना नहीं करनी चाहिए। उनको दु:ख पहुँचे ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिए । उलटे, उनका धीरज बाँधना चाहिए । इस भाव से कि मानो कुछ हुआ ही नहीं, उनकी स्वच्छता कर देनी चाहिए । साधारणत: अति वृद्ध व अति छोटे आयु वाले

बच्चों में यह अधिक प्रमाण में होता दिखायी देता है । जाति-लिंग-पंथ-आयु का भेदभाव न करते हुए, हर किसी की सेवा करनी चाहिए, वह भी प्यार से ।

१०. रोग समाप्त होते ही स्वास्थ्यलाभ के वीच आहार-पथ्य आदि का अनिवार्यत: पालन करते/कराते हो?

अनेकों की धारणा होती है कि बीमारी समाप्त होते ही वे स्वत: को पूर्ण स्वस्थ मानने लगते हैं । लेकिन निवारण की रीति, रोग का कारण, रुग्णावस्था में उसकी दशा अपने ध्यान में आती ही नहीं । किंतु यह बात थोड़ासी गंभीर होती है । बीमार अवस्था में शरीर-मन-बुद्धि तीनों ही इस रोग पर ही केंद्रित हुए होते हैं । शरीर, मन व कई बार बुद्धि का अधिकतर ध्यान इस व्याधि के चहुँ ओर ही रहता है; दूसरा कोई विचार-भावना आती ही नहीं । तब सब कुछ शरीरकार्य में आकर समा जाता है । बल्कि जैसे-जैसे बीमारी क्रमश: कम होते जाती है, वैसे-वैसे शरीर-मन-बुद्धि की गतिविधियाँ बदलती जाती हैं । परंतु, रोगनिवारण के कुछ दिनों तक सामान्य प्रमाण से भी अधिक विश्रांति, अधिक सतर्कता की आवश्यकता होती है । बुखार कम होते ही ठंडे पानी से स्नान करने से बुखार फिर लौट सकता है । अत: रोगनिवारण होते ही, तुरंत हम स्वत: अपनी सामान्य गतिविधियों में पूर्णरूपेण पूर्ववत् जुट जाने के बदले, धीरे-धीरे पथ्य-आहार, औषधियाँ, विश्राम इनका पालन कर, अपने मूल कामकाज में क्रमश: जुट जाना उचित होगा ।

११. औषधि-गोलियाँ हाथ लगने जैसी रखते हो?

चिन्तनीया हि विपदाम् आदावेव प्रतिक्रिया: ।
न कूपखननं युक्तम् प्रदीप्ते वह्निना गृहे ।।

(आने वाली अनहोनी-दु:खों का विचार पहले ही करते हुए, उसके उपायों को तैयार करके रखना चाहिए । घर को आग लगने के बाद कुँआ खोदना निरर्थक है) आगामी विपदाओं के बारे में पहले ही सोच कर, प्रारंभ में ही उन पर उपाय-योजना करनी चाहिए । समय रहते ही उसका प्रतिकार या कार्रवाई करनी चाहिए। घर को आग लगने पर कुँआ खोदना उचित नहीं । औषधि की सभी सामग्रियाँ, सभी आवश्यक मरहम, कपास, वेदनाशामक तेल आदि सब कुछ सुलभ उपलब्ध हो सकने वाले किसी पूर्वनियोजित स्थान पर रखना चाहिए । विशेष कर, ये सब बुजुर्गों के कमरे के समीप ही

रखना अच्छा होता है । लेकिन, वे बीमार व्यक्ति या बच्चों के हाथ न लगें, ऐसी सावधानी बरतनी चाहिए ।

१२. क्या आपको एक सामान्य नियम ज्ञात है कि घर में अंग्रेजी दवाइयाँ रखनी ही नहीं चाहिए या केवल वैद्यों के कहने के पश्चात् ही खरीदनी चाहिए?

अंग्रेजी दवा अथवा ऍलोपॅथी चिकित्सा पद्धति में उपचार केवल रोग का होता है, रोगी का नहीं । अर्थात्, रोगी का स्वभाव चाहे जैसा भी हो, उसे चिकित्सा दी जाती है केवल उसके रोग मात्र को । सभी दवाइयों की एक प्रभावसमाप्ति की तारीख (Expiry Date) होती है । उसके बाद, यदि उन औषधियों का सेवन किया गया, तो उससे शरीर में/पर अनेक दुष्परिणाम होते हैं । कुछ दवाइयाँ आसपास के वातावरण पर भी प्रभाव डालती हैं । अत: उनको घर में रखना खतरे से खाली नहीं होता । वैद्यों के मार्गदर्शन के बगैर, ऍलोपॅथी की दवाइयाँ खानी/लेनी ही नहीं चाहिए। अज्ञानवश या किसी अन्य कारणों से यदि वैसा किया/हुआ, तो दुष्परिणामों की संभावना अधिक है । अत: घर में ऍलोपॅथी की दवाइयाँ सबके हाथ लगने जैसी रखनी ही नहीं चाहिए।

दूरदर्शन

१. क्या आपके घर में दूरदर्शन है?

३० वर्ष पहले अपने समूचे देश में दूरदर्शन के प्रसार का प्रारंभ होते समय, कृष्ण-धवल दूरदर्शन संच ही अधिक संख्या में प्रचलित थे। लेकिन आजकल सभी घरों में रंगीन टी.वी. आ गया है । टी.वी. एक मनोरंजन का साधन है । यह घर के प्रमुख भाग में, सब बैठने के, चहल-पहल करने के स्थान पर एक हो, तो पर्याप्त है । टी.वी. देखना ही मनुष्य को लोकसंपर्क से दूर ले जाते समय, घर के हर कमरे में टी.वी. स्थापित करने से घर के सदस्य ही एक-दूसरे से अपरिचित हो जाएंगे इसमें संदेह नहीं । इसके अतिरिक्त, अधिक टी.वी. हो, तो 'हमें उनमें से कौनसा कार्यक्रम देखना चाहिए, कौनसा नहीं', इसके बारे में कुछ भी समझ नहीं पाएगा ।

२. क्या आपके घर में दूरदर्शन (टी.वी.) देखने के बारे में कुछ व्यवस्था/क्रम है?

दूरदर्शन हमारे जीवन में प्रवेश करने से पहले सब छात्रों, जनसमुदायों तथा सभी क्षेत्र के जनसामान्यों के सम्मुख एक प्रश्न रखा गया था । की क्या दूरदर्शन / टी.वी. आवश्यक है? या नहीं?

तब अनेकों ने बताया था, ''यह जानकारी/वैचारिकता व ज्ञान संवर्धनार्थ सहकारी है । इसे केवल मनोरंजन के लिए उपयोग नहीं करना चाहिए । लोगों में इसके बारे में ज्ञान, परहेज दोनों आवश्यक हैं ।''

लेकिन आज की पीढ़ी के लिए दूरदर्शन का मुख्य उद्देश्य केवल मनोरंजन ही है। यह प्रतिष्ठा का संकेत भी है। लेकिन वास्तव में यह, विपुल पैसा देकर बीमारी मोल लेने जैसा है। कोई भी उपकरण हो, उसके उपयोग की जानकारी रखना आवश्यक है। केवल बड़ी हाँडी में पानी है, इसीलिए उसे पी लेना ही चाहिए; यह ठीक नहीं है। अत: दूरदर्शन के कौन-कौनसे कार्यक्रम, कौन, किस-किस समय, कितने समय तक कैसे देखने हैं, इसका एक क्रम/व्यवस्था निश्चित करना आवश्यक है।

३. टी.वी. लगाना ही नहीं, ऐसा समय कौनसा है?

घर में टी.वी. देखने का समय निर्धारित होना चाहिए। हर हमेशा टी.वी. देखना उचित नहीं है। घर में कोई अभ्यागत, आप्त-मित्र आदि आए हों, तब उनका यांत्रिकता से स्वागत करते हुए, उनको किसी कोने में बिठा कर, आप अपनी ही आबो-हवा में अपनी इच्छित धारावाही या कार्यक्रम देखते हुए बैठ जाएं, यह नहीं चलेगा। साथ ही घर में यदि कोई बीमार, वरिष्ठ आदि हों, तो जोर से टी.वी. चला कर उनको कष्ट नहीं देनी चाहिए। घर में सुबह के काम करते समय, बच्चों के अभ्यास के समय टी.वी. देखना उचित नहीं है। घर में देवपूजा, बच्चों के समारोह या खेलकूद या उनके भोजन के समय, रात १० बजने के पश्चात् तथा रात की नौकरी कर लौटे श्रमजीवी लोग घर में हों, तब टी.वी. देखने की मनाही होनी चाहिए।

४. क्या आपके घर में दूरदर्शन उपयुक्त हो गया है? या विपरीत?

नये सिरे से दूरदर्शन का परिचय कराते समय, सभी टी.वी.परक लोगों ने बताया था कि उससे ज्ञानसंवर्धन संभव है। उन्होंने यह भी कहा था कि दृश्य माध्यम अत्यंत प्रभावशाली होने के कारण वह छात्रों के लिए बहुत ही अनुकूल है। लेकिन कुछ लोगों ने चेतावनी भी दी थी कि विपरीत सिद्ध होने पर, यह छात्रों के लिए मारक हो सकता है। तब बताया गया 'Education' आज infotainment में परिवर्तित हो गया है। अनेक छात्र-छात्राओं का कहना यह है कि दूरदर्शन के द्वारा आज मनोरंजन (Entertainment) के साथ-साथ 'जानकारी' (Information) भी मिलती है। इस Information की व्याख्या में ही वास्तविक मर्म छिपा है। उनका कहना ऐसा है कि टी.वी. के कारण आज बाहर क्या कुछ चल रहा है? कौन-कौनसी वस्तुएँ बाजार में आयी हैं? किस प्रकार वे लोगों को ठगते हैं? इनकी जानकारी प्राप्त होती है; तथा नये-नये प्रदेशों का परिचय आदि होता है। हाँ, यह सब कुछ हमें चाहिए। लेकिन कितनी मात्रा में?

इसका संज्ञान न होने के कारण, समस्याएँ बढ़ रही हैं । इन सबके साथ ही, अनावश्यक विचारों की बौछार भी हमारे मन-मस्तिष्कों पर हो रही है । इससे अपेक्षित बातों से भी अधिक अप्रत्याशित विचारों की जानकारी लोगों को अधिक मिल रही है ।

इसीलिए घर में कौन-कौन, कितना समय, क्या कुछ देखना है, इसके बारे में पता होना चाहिए । कामकाजों के बीच केवल विश्राम के लिए ही दूरदर्शन है, अन्यथा वही एक काम नहीं बन जाना चाहिए ।

५. क्या आपका नाश्ता/भोजन टी.वी. के सामने ही होता है? या भोजन का कोई पृथक स्थान है?

आज साधारणत: दूरदर्शन के सामने ही सभी क्रियाकलाप चलते हैं । विशेष कर, अनेक घरों में धारावाही या अन्य कार्यक्रम देखते-देखते अर्थात टी.वी. के सामने ही खान-पान चलता है ।

लेकिन हमारे पुरखों ने अपने भोजन के भी कुछ नियम बना के दिए हैं । वे हैं -

★ आहार-सेवन अति धीमी गति से या अति शीघ्रता से न किया जाए । न्यूनतम ५-१० मिनटों की सीमा तो रहनी ही चाहिए ।

★ भोजन याने एक पूजा, संस्कार, यज्ञ है । एक स्वास्थ्य पद्धति के अनुसार, हर निवाला न्यूनतम ३२ बार चबाके निगलना चाहिए ।

★ शुद्धिकृत स्थान/प्रदेश में, शुद्ध परिसर में, बिना किसी दबाव/तनाव के, शांत चित्त से खाना खाना चाहिए ।

★ भोजन का पात्र/थाली हाथ में पकड़ कर खाने के बजाय, जमीन पर ही रख कर खाना उचित है ।

★ हर निवाला लेते समय, यही भावना रहनी चाहिए कि यह मेरे लिए नहीं, तो उस भगवान के लिए है ।

★ यह सद्भावना भी रहे कि यह भोजन मेरे संस्कार के लिए, मेरे तन-मन को सुस्थिति में रखने के लिए ही है ।

अनुभवसिद्ध बात यह है कि भोजन के समय हम जिस भावना से खाना खाते हैं, वही संस्कार हमारे ऊपर होता है । इसीलिए नाश्ता/भोजन आदि टी.वी. के सामने करना सही नहीं है ।

६. क्या टी.वी. का उपयोग कैसे व कितना करना? इसके बारे में समय-समय पर घर वालों के साथ आप चर्चा करते हो?

इसके बारे में घर में चर्चा अवश्य होनी चाहिए । क्योंकि, घर में सबको सब कुछ देखना संभव नहीं है; देखना भी नहीं चाहिए । हर एक की आयु, दूसरों की समयानुकूलता आदि का ध्यान रख कर, अन्यों को पीड़ा न पहुँचे इस ढंग से, अल्पसा विराम पाने के लिए टी.वी. देखना योग्य रहेगा । घर में यदि छोटे बच्चे हैं, तो उनको पूरा दिन कार्टून नेटवर्क, पोगो आदि चैनल्स देखने के लिए बिठाना उचित नहीं है ।

बड़े-ज्येष्ठजन घर के छात्रों को समझाएं कि वे कौन-कौनसे चैनल्स/कार्यक्रम देखें या देखें ही नहीं । उन्हें अपनी बुद्धि विकासार्थ परिश्रम करना चाहिए । उनके कौतूहल को बिगाड़ने के बजाय, उसका गढ़न करना चाहिए । अन्यथा अनहोनी घटित हो सकती है । अब ज्येष्ठों को भी तय कर लेना पड़ेगा कि अपने चहुँओर का वातावरण कैसा है? बीमार, बच्चे, छात्र निकट रहते समय, अपना आचरण तथा दूरदर्शन देखना कैसा हो? कुल मिला कर, हर एक की मानसिक स्थिति, दूसरों की अनुकूलता-प्रतिकूलताओं की चर्चा करते हुए, उनको समझते हुए टी.वी. का उपयोग करना चाहिए ।

७. टी.वी.के कारण आपके घर ने क्या कुछ गँवा दिया है?

आज टी.वी. ने हर घर की अत्यावश्यक वस्तुओं की सूची में अपना स्थान बना लिया है। 'पेट के लिए रोटी नहीं, तो भी चोटी को घी चाहिए' इस मनोभाव का साधन बन चुका है । इससे हम बहुत कुछ खो चुके हैं, इसकी प्रज्ञा हममें जगाना जरूरी है। टी.वी. देखने में ही बहुत सारा समय बरबाद करते हुए, अड़ोस-पड़ोस वालों से संपर्क, संवाद, परिचय आदि सब कुछ खोते जा रहे हैं। छुट्टियों में सगे-संबंधी, बंधु-मित्रों के साथ घुल-मिल के, एक-दूसरे के घर जाते हुए, उनके सुख-दु:खों में सहभागी होना मानो हम भूल ही गए हैं। सबसे बढ़ कर, अपने तीज-त्योहारों के सभी उत्साह-उमंगों पर इस टी.वी. ने पानी फेर दिया है। आनंद-संतोष-संतुष्टि से भोजन करना तो टी.वी. देखने के उत्साह में बीते जमाने की बात बन गयी है। बातें खोखली होकर, टी.वी. के किरदार, धारावाहिक आदि ने पूरे घर को ही मानो घेर लिया है। अपने आचार-विचार-दर्शन-पहनावा आदि सब कुछ दूरदर्शन का ही अनुकरण बन गया है। बच्चों की पढ़ाई के लिए तो, यह काँटा ही बन चुका है। मानव की नैतिक-धार्मिक आदि सभी मर्यादाओं को लाँघ कर, दूरदर्शन पर दिखाई देने वाले मनोरंजनात्मक प्रसार के परचम फड़फड़ा रहे हैं । इस प्रकार, टी.वी. के कारण अपने बैठे स्थान पर ही कुआचार

बैठे रहने का स्वभाव बढ़ कर, संवाद-संपर्क-संबंध आदि मानो सब अदृष्य से हुए हैं ।

८. टी. वी. पर आने वाले विज्ञापन हमारे लिए कैसे हैं? सहनीय या असहनीय?

आज यह धारणा बन गयी है कि 'सभी माध्यम पैसा कमाने का माध्यम है।' अत: इन विज्ञापनों की अपरिहार्यता की स्थिति आ चुकी है। बच्चे, पौगंडावस्था (Teen-age) के बाल-बालाएँ, मध्य आयु के आदमी, अंत में वयस्क व बीमारों को भी अपनी ओर खींच लेने हेतु विज्ञापनदाताओं द्वारा किए जाने वाले प्रयास कोई कम नहीं हैं। उनमें से कुछ स्वास्थ्यपूर्ण हैं, तो कुछ अप्रत्याशित व अश्लील भी होते हैं । हर दिन हर क्षेत्र को प्रभावित करने वाले ये विज्ञापन कई बार अनुचित रास्ते पर ले जाने वाले होते हैं । कार्यक्रमों के बीच में ही इन विज्ञप्तियों की कारोबारी चलती है । इससे भावनाएँ भड़कती हैं । इनका उपयोग भी बहुत कम होता है । अत: इनके बारे में सजगता से सोचना बहुत आवश्यक है ।

९. यदि असहनीय लगते हैं, तो क्यों देखते हो? क्या उन्हें रोकने का मार्ग दिखायी नहीं देता?

इसी कारण, अनेक घरों में टी.वी. को ध्वनिहीन बना के रखने की पद्धति जारी की गयी है; या उस कार्यक्रम के बीच वाले विज्ञापनों के दौरान दूसरा काम निपटा लेते हैं । हर दिन के कार्यक्रमों की सीमाएँ समझ कर, उन संदर्भों में दूसरे कामों को निपटा लेना उचित होगा ।

१०. टी.वी. के द्वारा आपने प्राप्त किया ज्ञान, नया सबक, उत्तम आचरण आदि कौनसा है?

विश्व की जानकारी, दुनिया की आज की अवस्था, संसार में किन-किन प्रकार के जनसमुदाय हैं? उनकी विचारधाराएँ क्या हैं? पवित्र क्षेत्र, दूर-दूर के परिचय, सृष्टि-सौंदर्य, विज्ञान का विकास, प्रचलित गतिविधियाँ, महान व्यक्तियों का दर्शन, अपनी देश की जमीन, जल, जंगल, जन, जानवर आदि जगत की विशेषताएँ, वैचित्र्यपूर्ण परंपराओं के बारे में टी.वी. के जरिए हमें प्राप्त हुई जानकारी, नये सबक, उत्तम आचरण आदि हो सकते हैं ।

११. टी.वी. के कारण आपने कौनसे संबंध, परंपराएँ, आचरण खो दिए हैं?

धर्मग्रंथों का पठन-श्रवण; अड़ोस-पड़ोसियों से आत्मीय संबंध-संपर्क; प्रभु नामजप; गीत गाना, भजन, घर में कर सकने वाले अन्यान्य ललितकला के कार्यक्रम, दूसरों के घर जाकर उनका परिचय करा लेना एवं उसे दृढ़ बनाना, स्वाध्याय, सच्चिंतन, घरकाम, बच्चों को पढ़ाने की प्रक्रिया, देवालय जाकर आने की पद्धति आदि बातें हमने खोयी हैं।

१२. क्या मित्र/अतिथि आते ही टी.वी.तत्काल बंद करते हो?

आजकल इन जैसे प्रश्नों के बारे में चर्चाएँ होने लगी हैं । दूरदर्शन तथा अन्य चैनलों में प्रसारित किए जाने वाले कार्यक्रमों के कारण अनेकों के मन-मस्तिष्क लूटे गए हैं । इसीलिए, आँखें फाड़ के देखने की हद्द तक उनमें लोगों की अभिरुचि बढ़ गयी है । अत: यह बात आतंकित करने वाली भी है । माताओं का अपने बच्चे के बारे में चिंता करने के स्थानपर धारावाहिक या दूरदर्शन के कार्यक्रमों में मग्न हो जाना, ज्येष्ठ जनों-बीमारों की अपेक्षाओं के प्रति संवेदनशील न रहना, अतीव आवश्यक ऐसे कार्य में व्यस्त होने पर भी, उनको अकारण आगे ढकेल देने के प्रसंग घटित हो रहे हैं । तो यह सब कितना सही है, इसका विचार करना चाहिए।

आगंतुक अतिथियों का स्वागत घर के दहलीज से ही करने की पद्धति थी । अनंतर हम जहाँ हैं, वहीं से खड़े होकर उनको उत्थापन देने की आदत शुरू हो गयी । लेकिन, अब दूरदर्शन के कार्यक्रम में दृष्टि गढ़े लोग, बैठी स्थान से ही उनको उंगली दिखाते हुए बैठने की सूचना करने की स्थिति आ गयी है । अतिथियों को देवता के रूप में देखने की हमारी संस्कृति है । लेकिन उनके आने पर, क्या उनकी ओर ध्यान ही न देना उचित है? मित्र, सगे-संबंधी, आप्त-बांधव, अतिथि आदि आते ही अपना काम छोड़ कर, उनकी ओर जाकर, उनका स्वागत करना चाहिए । दूरदर्शन के कार्यक्रम देख रहें हो, तो भी उनको तुरंत बंद करते हुए, उनकी ओर ध्यान देना चाहिए।

१३. टी.वी. के बारे में कौनसी सतर्कता बरतते हो?

टी.वी. यह एक मनोरंजन तथा ज्ञानप्राप्ति का साधन है । उसका सही ढंग से उपयोग करने में ही चतुराई है । अब हम सोचें कि क्या हम उसका सदुपयोग इस प्रकार कर सकते हैं?

★ टी.वी. देखने से पहले तब तक करने योग्य सभी काम पूरे होने चाहिए ।

★ वरिष्ट–बीमारों की स्थिति–गति तथा छात्रों के अभ्यास का ध्यान रखना चाहिए।

★ आसपास का वातावरण कैसा है (खास कर, कौन–कौनसे कार्यक्रम देखते समय वहाँ पर कौन–कौन हैं?) यह भी देखना चाहिए ।

★ तेज आवाज, अति समीप बैठना, बहुत समय तक देखते बैठना स्वास्थ्य के लिए उचित नहीं है ।

★ विश्राम–विराम के लिए टी.वी. देखना चल सकता है । उसे देखते समय, घर के अन्य काम–कार्य–दायित्व की ओर यथावश्यक ध्यान देना चाहिए।

★ केवल अपने मन को मान्य, संस्कारप्रद, संस्कृति को बिंबित करने वाले कार्यक्रमों को ही देखना चाहिए ।

महिलाओं व वरिष्ठों का सम्मान

१. **क्या आपके घर की सभी महिलाओं को आदर-सम्मान प्राप्त होता है?**

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रिया: ।।

यह मनुस्मृति की उक्ति है । जहाँ महिलाओं को आदर-सम्मान प्राप्त होता है, वहाँ पर देवता प्रसन्न रहते हैं । जिस घर में स्त्रियों को गौरवादर नहीं मिलता, वहाँ किए जाने वाले सभी यज्ञ-पूजा आदि निष्फल होते हैं ।

स्त्रियों को आदर-गौरव न देने वाले लोग असंस्कृत कहलाते हैं। हिंदू संस्कृति में नारियों को उन्नत स्थान दिया गया है । परायी नारियों को अतीव ऊँचे ऐसे मातृस्थान पर विराजित करते हुए, उनका गौरव करने का संकेत दीया गया है । पत्नी को भी सहधर्मिणी, अर्धांगिनी मानते हुए, उसे पुरुष के आधे भाग के रूप में देखा गया है । शंकराचार्य ने अपने सौंदर्य-लहरी के प्रथम श्लोक में –

शिव: शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्त: प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशल: स्पन्दितुमपि ।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्य: प्रभवति ।।

इसका अर्थ इस प्रकार है : 'हे भगवती! विश्वनिर्मात्री शक्ति का साथ रहा तो ही, सदाशिव संसार का सृजन करने में समर्थ होते हैं । इस प्रकार, शक्ति का साथ न हो, तो

वे चलने में भी असमर्थ हो जाते हैं। अत: हरिहर–ब्रह्मादि के लिए भी पूजार्ह रहे आपका नमन या स्तवन करने के लिए कोई पुण्यार्जनहीन व्यक्ति कैसे समर्थ हो सकता है?'

ऐसा बताया गया है कि प्रकृति–स्वरूपिणी स्त्रीरूपा शिवा के न होने पर, विश्वसृजन करना हरिहर–विरंची आदि के लिए भी असंभव है। इसीलिए घर की स्त्री, चाहे वह माता के रूप में हो, अथवा भार्या, भगिनी, या पुत्री के, वह सदैव हमारे आदर की पात्र है ।

२. **उनके प्रति अपना सम्मान कैसे दिखाते हो? बुलाने में, उनके बारे में बोलते समय आवाज में, उनको काम बताने की शैली में आदि?**

हिंदू संस्कृति में महिला को अपार आदर दिया है । उसे पूज्य भाव से माँ कह के बुलाना अति सामान्य सी बात है। चाहे छोटी हो या बड़ी, वह मातृस्वरूपा ही है । इसके साथ दीदी, बहन, पुत्री इस प्रकार हमारा बंधुप्रेम, पितृप्रेम दर्शाना तो है ही । महिलाओं को संबोधित करते समय 'अरी', 'जारी', 'आ न', 'ओय्', 'एय्' आदि शब्दों का प्रयोग कभी भी नहीं करना है । इसके साथ ही, उनके बारे में बोलते समय, तुच्छ भाषा, हेय शब्द, असहनीय भाव जगाने की रीति में संबोधित नहीं करना चाहिए। वैसा ही उनके बारे में चर्चा भी नहीं करनी चाहिए । कुल मिला कर, स्त्रियों को संबोधित करते समय, उनके बारे में अपना पूज्यभाव व्यक्त करते हुए, सदैव अपना आदर ही जताना चाहिए।

३. **क्या पति को अपनी पत्नी के प्रति आदर दिखाना चाहिए? कैसे?**

सति–पति, भार्या–भ्रतार, श्रीमति–श्री, लक्ष्मी–नारायण, पार्वती–परमेश्वर ऐसे अनेक शब्दप्रयोग हैं । इनमें स्त्री को पहला स्थान देकर, वैवाहिक संबंधों में भी हिंदू धर्म ने स्त्रीप्रधानता ही समझायी है । दुनिया के किसी भी अन्य समाज में, इस प्रकार स्त्रियों के बारे में पूज्यभाव दिखायी नहीं देता । अपने पुराण–इतिहासादि में भी पति द्वारा पत्नी का संबोधन करने के लिए 'प्रिये', 'आर्ये', 'मानिनी', 'भार्ये', 'शुभांगी' आदि प्रियवचनों का प्रयोग ही दिखायी देता है । इसके साथ ही, पुरुष अपने कौटुंबिक–वैचारिक विषयों में आज भी महिलाओं की सलाह–सुझावों को ध्यान में रख कर, उनके प्रति अपना आदरभाव दर्शाता है ।

४. **क्या मनुस्मृति में बताया गया – 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' यह विचार सही है?**

मनुस्मृति के ९वें अध्याय के ३रे श्लोक में यह कहा है :

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।

रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा: न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ।।

'बचपन में स्त्री की रक्षा पिता करता है, यौवन में पति रक्षा करता है, वृद्धावस्था में बच्चे उसकी रक्षा करते हैं । अत: वह स्वतंत्र है ही नहीं।' (अर्थात् उसे सदैव सुरक्षा की आवश्यकता होती है ।)

दुर्बलों, अशक्तों की रक्षा करना ही हिंदू संस्कृति का ध्येय है । स्त्री कितनी भी शक्तिशाली रही, तो भी कुछ नैसर्गिक कारणों से वह कुछ बार दुर्बल कहलायी जाती है। साथ ही, पुरुष व स्त्री दोनों को एक ही काम करना न उचित है, न फलदायक। हर एक की शारीरिक क्षमताओं के अनुरूप, स्त्री-पुरुषों के लिए अलग-अलग काम निर्धारित किए गए है। इस प्रकार गृहकार्य आदि सुक्ष्मकार्य कामों द्वारा स्त्री के लिए अपनी रक्षा के स्थान पर दूसरों के बारे में चिंता-चिंतन करना उचित माना गया। अपने लिए दिनरात परिश्रम उठाने वाली स्त्री की रक्षा का दायित्व पुरुष वर्ग ने अपने ऊपर ले लिया। तदनुसार, उसके बचपन में उसकी दायित्व सम्हालना पिता का कर्तव्य हुआ। तारुण्य में उसके दायित्व का निर्वहन पति पर सौपा गया तथा बुढ़ापे में उसकी इंद्रियों की शक्ति कुंठित होने के उपरान्त, उसका मातृऋण चुकाने हेतु बच्चे आगे आए। यह कोई स्त्री को उसके स्वतंत्रता से वंचित करने का सूत्र नहीं है, न कि उसके विरुद्ध कोई षड्यंत्र, या कोई कुतंत्र है । समूचे समाज को ही अपनी शक्ति-युक्ति के आधार पर चलाने वाली, हमें जन्म देकर समाज को साकार करने वाली स्त्री की समाज में स्थित दुष्प्रवृत्ति से रक्षा करने हेतु स्वयं पुरुषों द्वारा ही प्रकटित कृतज्ञता है यह । इसे गलत अर्थ में प्रस्तुत करते हुए, पुरुषों द्वारा महिलाओं पर चलायी गयी मनमानी सत्ता ऐसा मानना सही नहीं होगा ।

५. **स्त्रियों को जितनी स्वतंत्रता मिलती है, उतना घर, समाज, देश उजड़ जाता है: इस धारणा के बारे में आपका अभिमत क्या है?**

एक कहावत के अनुसार, 'पालने को झुलाने वाला हाथ समशेर भी चला सकता है।' तो उपरोक्त बात का महत्व ही नहीं है। हम अपने पुराण-इतिहास में देखते हैं कि पुरुषों के साथ समानता से खड़ी होकर, महिलाओं ने देश और घर को अच्छी तरह से चलाया है। वीर-रमणी झाँसी की राणी लक्ष्मीबाई, शिवाजी महाराज की माता जीजाबाई, राणी दुर्गावती, तथा कर्नाटक की कित्तूर चन्नम्मा, वणके ओब्बव्वा, बेलवड़ी मल्लम्मा, उल्लाळ की देवी अब्बक्का - आदि सभी वीरांगनाओं ने देश की स्वाधीनता के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में संघर्ष किया है। घर के कामकाजों में तो गृहिणी अति

चपल व सफल रही है । इसीलिए, 'स्त्रियों' को जितनी स्वतंत्रता मिलती है, उतना ही घर, समाज व देश उजड़ जाता है यह बात बिलकुल ठीक नहीं है । लेकिन स्वतंत्रता याने अपने ही मनमानी, उच्छृंखल ढंग से चलना तथा स्वच्छंदता से विचरण करना, ऐसा मानने वाली महिलाओं की ओर से मात्र सवाल उठाए जाते हैं ।

६. घर में अतिथि आने पर क्या कुछ करते हो? स्वागत के आत्मीय शब्द, बैठने के लिए आसन, थोड़ासा जल, निष्कपट प्यार भरी बातचीत तो मिलनी ही चाहिए । क्या यह सही है?

'अतिथिदेवो भव' यह हिंदुओं की परंपरागत चली आयी रीति है । यह अपनी संस्कृति है । घर आए अतिथियों की प्रतिष्ठा, स्थान-मान, धन-दौलत इनमें से किसी की भी गणना न करते हुए, उनका हृदयपूर्वक स्वागत करना चाहिए । पुराने जमाने में कोई अतिथि घर आया, तो उसके भोजन किए बगैर, घर का मालिक खाना नहीं खाता था। आज भी किसी भी हिंदू घर में अतिथि के रूप में पधारे व्यक्ति का स्वागत हँसते-हँसते करते हुए, उनका परिचय प्राप्त करते हैं; अंदर बुला के, उसको आसन देकर, सत्कार करते हैं; यदि गर्मी के दिन हो, तो थोड़ासा गुड़ देने के पश्चात् कोई भी ठंडा शरबत अथवा जल या छाछ पिला कर उनका उपचार किया जाता है । यदि जाड़े के दिन हों, तो गर्मागर्म चाय, कॉफी, दूध, कषाय (काढ़ा) इनमें से वे जो कुछ चाहते है, वही उनको देनेकी पद्धति थी । इसके साथ ही, घर में किसी विशेष दिन के विशेष खाद्य-पदार्थ खिला कर, उसमें धन्यता का अनुभव किया जाता था । इस विषय में जाति-मत, भाषा-प्रांत आदि भेदभाव नहीं होता था । ग्रामीण प्रदेश के गरीब किसान भी यदि कोई अपने घर आया, तो उसकी प्यास बुझाने हेतु उसे गुड़-पानी देकर, अपना हृदयवैशाल्य दर्शाते थें ।

घर वालों व छोटों को सम्मान मिलने पर

१. **घर के किसीको भी सम्मान, पुरस्कार, मान्यता प्राप्त हुई, तो क्या आपको आनंद होता है?**

'अपने' कहलाने वालों में से किसीको भी सफलता, सम्मान प्राप्त होने पर, आनंद होना एक सहज-स्वाभाविक क्रिया होतीं है । यदि वैसा नहीं हुआ तो मानना पड़ेगा कि उसकी मानसिकता रुग्ण की है, सड़ी-गली है । उसे प्यार-दुलार और संवाद से ही ठीक करना चाहिए। अब घर के किसीको भी सम्मान प्राप्त होने पर यदि आनंद नहीं हुआ, तो वह उस घर का दुर्भाग्य ही है । क्रोध, निंदा से उसे ठीक नहीं कर सकते । स्नेह, प्रेम तथा सतर्क व्यवहार से ही उसे ठीक करना चाहिए ।

२. **यदि आपका छोटा भाई, पुत्र, पुत्री, पत्नी, या बहू समाज में प्रभावी बनती है, तो क्या आपको आनंद व गर्व होता है? या दु:ख, मात्सर्य अशांति?**

सामान्यत: वरिष्ठ जनो में यही धारणा होती है कि घर के सभी लोग 'अपने' हैं। वैसे लोग यही आशा-प्रयास-सहयोग भी करते हैं कि अपने सभी छोटे सदस्य बढ़ें, प्रभावी बनें। लेकिन, ज्येष्ठ जनों में ही स्वयं का अहंकार, सब कुछ अपनी मुठ्ठी में रखने का स्वार्थी भाव रहा तो, घराने के बारे में आदर-गौरव का भाव मन से दूर होकर, अपना निजी स्थान-प्रतिष्ठा उभरने लगती है। वैसे लोग छोटों का बड़प्पन सह नहीं पातें। वे उनको अपने प्रतिस्पर्धी मानते हुए, उनको रौंदने का प्रयास करते हैं। इतना कुछ होने पर भी छोटे/दूसरे

ऊपर उठें ही, तो वे उनसे द्वेष करने लगते हैं। इसे अनेक घरों में 'दायादी' (अर्थात् जायदाद से संबंधित) 'असूया-मत्सर' इस नाम से पहचाना जाता है। अनेक संस्था-संगठनों में भी इस परिदृश्य का दर्शन आज होता है। परंतु, आज भी अधिकतम परिवारों में छोटे प्रभावी रीति से बड़े हो गए, तो वरिष्ठ को अवश्य आनंद होता है; होना भी चाहिए।

३. तब अपना आनंद आप कैसे प्रकट करते हो?

अपने सभी सम्बंधि यों को समाचार देकर; मिठाई बाँट कर; कीर्ति-अर्जित व्यक्ति से मिल के अपना आनंद प्रकट कर; सामूहिक अभिनंदन आदि का आयोजन भी कर सकते हैं । किंतु यह काम याने अपनी स्वयं की डींगमारी न हो, इसकी सतर्कता बरतनी चाहिए ।

४. क्या आनंद न होने के प्रसंग भी हैं?

यह सम्मान न्यायोचित या व्यक्ति की योग्यता न होने पर, अथवा यह सम्मान किसी दूसरे के साथ ठगी करने के उद्देश्य से किया गया हो, तो हमें आनंद नहीं हो सकता; होना भी नहीं चाहिए । उसी प्रकार, सम्मानित व्यक्ति के साथ अपने संबंध अच्छे नहीं रहे हो, तो भी आनंद नहीं हो सकता । लेकिन एक बात अपने घर के सभी सदस्यों को ज्ञात होनी चाहिए कि चाहे किसी भी उत्तम या सज्जन व्यक्ति को यदि सम्मान प्राप्त होता है, तो हमें अवश्य आनंद होना चाहिए।

५. छोटों को प्राप्त सम्मान के कारण हुआ आनंद आप किनके साथ बाँट लेते हो?

छोटों को सम्मान मिलने पर हमें होने वाला आनंद बहुत ही श्रेष्ठ, महत्वपूर्ण व अनमोल होता है । वह अपनी सुसंस्कृति का लक्षण है । एक सुभाषित ही हैं : 'पुत्रादिच्छेत्/शिष्यादिच्छेत् पराजयम् '। बताते हैं कि अर्जुन के बाणों से विंध जाने पर भीष्माचार्य सबको सुनायी देने वाली आवाज में कहते रहे, ''देखिए, ये बाण अर्जुन के हैं। मुझे दर्द हो रहा है। दूसरों के बाणों के घाव याने मच्छर काटने के समान हैं ।'' छोटों को पुरस्कार मिलने के उपरांत होने वाला आनंद सबके सम्मुख प्रकट करना चाहिए । महत्त्व की बात यह है कि ज्येष्ठ के इस आनंद से छोटों को अधिक बल और आत्मविश्वास प्राप्त होता है । उनके मित्रों के साथ भी इसे बाँट लेना उचित रहेगा । लेकिन, उसमें भी एक सावधानी बरतने की आवश्यकता है । अपने बड़प्पन की डींग हाँकने के लिए इस प्रसंग का उपयोग नहीं करना चाहिए ।

बड़ों के सामने बैठना नहीं

१. **क्या आपको ज्ञात है कि बड़ों के सामने कैसे व्यवहार करना चाहिए?**

बच्चों को चाहिए कि वे अपने माता-पिता, दादा-दादी, दद्दू-दीदी जैसे बड़ों के साथ बहुत ही विनय-आदरपूर्वक बर्ताव करें । वे यदि बैठ के बातें कर रहे होते हैं, तब स्वयं खड़े होकर उनका पूरा कहना शांति से सुन लेना चाहिए । उनके सामने पैरों पर पैर रख के या पैर फैला कर नहीं बैठना चाहिए । उनके द्वारा किए जाने वाले सभी कामों को ध्यानपूर्वक देख लेना चाहिए । बड़े यदि कोई श्रम का काम कर रहे तो, तब उन्हें उस काम से छुड़ा कर, यथासंभव स्वयं ही उस काम को करना चाहिए । अन्यथा, अपने लिए जो संभव है, वह सहायता करनी चाहिए ।

२. **क्या पहले जो करते थे, वही आपको सही लगता है? या अब समय परिवर्तित होजाने से ऐसा लगता है कि पुराना सबं कुछ छोड़ देना चाहिए?**

पहले, किसी भी काम को पूरे अनुभव से जान कर ही किया जाता था । अत: यह तर्क ही ठीक नहीं है कि वह सब ठीक नहीं था । वे सब बातें आज भी ग्राह्य ही हैं। देश-काल के अनुरूप उनमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर सकते हैं । स्पष्टीकरण के साथ 'यही सही है' ऐसा सुनिश्चित उत्तर देने के उपरान्त भी, हम उसका परिशीलन, परीक्षण करके देखते हैं और 'उन सभी विषयों की सत्यता निर्धारित कर के ही देखेंगे' ऐसी प्रतीत चुनौती देकर, व्यर्थ परिश्रम उठाने के बाद भी पुन: उसी सत्य की शरण जाना

कितना समुचित है? अत: पहले का सब कुछ सही है, इस नीति का त्याग करते हुए, कन्नड़ के दार्शनिक कवि श्री डी.वी.गुंडप्पा जी की काव्यपंक्ति के अनुसार, 'नये पल्लव-पुरानी जड़ें एकत्रित रहने में ही पेड़ की शोभा है;' अत: आज अपनी संस्कृति की जड़ों के आधार पर ही अपने आचरण-कुसुमों को खिलाना वांछनीय रहेगा ।

३. क्या यह सही है कि बड़ों के रहते, उनके समकक्ष या उनसे भी उँचे स्थान पर नहीं बैठना चाहिये?

बड़ों के सामने उनके समकक्ष बैठना सभ्यता नहीं है। क्योंकि, बड़ों की तुलना में विद्या, ज्ञान या अनुभव में बहुतही छोटे होते हैं । यदि उनके समान ज्ञानी हों, तो बड़ों के समकक्ष छोटे बैठ सकते हैं । बड़ों को अपनेसे भी अधिक उँचाई वाले स्थान पर बिठा कर, उनका सम्मान करना चाहिए । यह बड़ों की श्रेष्ठता व छोटों की विनम्रता का द्योतक है ।

४. क्या यह सही है कि बड़े जब बोल रहे होते हैं, तब बीच में ही, 'यह ठीकनहीं है' ऐसा टोकना ठीक नहीं?

हाँ । केवल बड़े ही नहीं, तो कोई भी हो, उनकी बातचीत को पहले शांति से सुनने के बाद उसका मनन करना चाहिए । कुछ बार मतभेद होते हुए भी, उनकी बातें समाप्त होने के बाद ही छोटे अपना अभिप्राय बहुत ही सावधानी के साथ बता कर, 'उसे इस प्रकार कहा होता तो अच्छा होता न?' ऐसा विनयपूर्वक पूछना चाहिए । किसी भी संदर्भ में अपने अभिप्रायों को धृष्टता से या दूसरों को पीड़ा हो, इस प्रकार उन पर थोपना नहीं चाहिए । यह बच्चों को उनके छुटपन से ही समझा देना होगा।

५. बड़ों के सामने पैर नहीं फैलाना चाहिए । क्यों?

बच्चों द्वारा बुजुर्गों का आदर-सम्मान करने की परिपाटी ही है । उनकी उम्र, अनुभव, ज्ञान व अन्य अनेक कारणों से वे हमारे संपोषक, संवर्धक होते हैं । उनसे शिक्षा पाने वाले हम, उनके बच्चों की भाँति ही होते हैं । अत: हमें ज्ञान, विवेक प्रदान करने वाले वरिष्ठों के सामने पैर फैला कर, या उनसे भी ऊँचे स्थान पर बैठना, पैर पर पैर रख कर बैठना आदि सब अशिष्ट आचरण एवं अविधेयता का प्रतीक बन जाता है । बच्चों को प्रारंभ में ही बड़ों के सामने आदरपूर्वक खड़े होकर उनको क्या चाहिए, क्या नहीं, इसकी पूछताछ करना; उनके सभी प्रश्नों का विनम्रता से सम्यक् उत्तर देना, मृदु आवाज में बातें करना आदि सज्जनता के बिंदुओं को अपने में विकसित कर लेना चाहिए ।

६. उनके सामने जोर से आवाज निकालते हुए जम्हाई नहीं लेनी चाहिए। क्यों?

सबके सामने जोर से आवाज के साथ जम्हाई लेना, छींकना आदि बातें अशिष्टता कहलाती हैं । अत: यथासंभव इनका नियंत्रण करना होगा । यदि संभव नहीं हुआ, तो उस स्थान से दूर जाके खड़े होकर या बैठ कर मंद आवाज में उन प्राकृतिक दोषों का शमन करा लेना चाहिए । प्रारंभ से ही इन क्रियायों का नियंत्रण करने का स्वभाव बनालिया तो और अच्छा है । कई बार, किसी गहन बात का प्रतिपादन करते समय, इस प्रकार जोर से जम्हाई या छींक निकाली गयी, तो वहाँ विषयांतर होकर, उसमें फिर परिवर्तन होने की संभावना रहती है।

७. बड़ों के सामने जोर से आवाज निकालते हुए चिल्लाना नहीं चाहिए। क्यों?

जानेमाने व्यक्ति व वरिष्ठ बैठ के किसी गहन चर्चा में व्यस्त हों, तब जोर से चिल्लाना, शोरगुल मचाना आदि असभ्य बर्ताव नहीं करना चाहिए । आपकी जो चाहे तिलमिलाहट हो या अति आवश्यक विषय, या कोई प्रमुख बात, उनके समीप थोड़ा समय खड़े होकर, उनका ध्यान अपनी ओर मुड़ने के बाद ही, उनको विनयपूर्वक अनुरोध करते हुए, उस विषय के बारे में बातें करनी चाहिए । साथ ही, कोई निजी विषय हो, तो उनके सब कार्यकलाप समाप्त होने के पश्चात्, धीरे से अपना विषय बता कर निर्णय करना चाहिए ।

८. बड़ों को उनका निजी नाम लेकर मोटी आवाज में नहीं पुकारना चाहिए। क्यों?

अपने हिंदू संस्कारों में हर एक के लिए निजी नाम रखने की एक विधि है । प्राय: उस नाम को गोपनीय रख के, केवल महत्त्व के संदर्भों में ही उसे प्रचुर किया जाता है । आचार्य, पिता, गणमान्य व्यक्ति, (या महिला हो तो पति) को नाम लेकर पुकारना/बुलाना सर्वथा निषिद्ध है । उनको सज्जनता के साथ 'आचार्यजी', 'सज्जनों', 'सन्मान्य महोदय', 'पिताजी', 'श्रीमान', 'महोदय' इस प्रकार संबोधित करना चाहिए । यदि महिला हो, तो 'माताजी', 'दादीजी', 'दीदी' आदि आदरयुक्त/आत्मीय शब्दों से संबोधन करना चाहिए; इसके बजाय, उनको उनके निजी नाम से अथवा एकवचन में नहीं बुलाना/पुकारना चाहिए । साथ ही, अपनी संस्कृति को अमान्य रहें 'मिस्टर', 'मिसेज़', 'ऑन्टी', 'अन्कल' इन विदेशी संबोधनों से संबोधित नहीं करना चाहिए ।

९. व्यंग्य से प्रश्न नहीं पूछना चाहिए । क्यों?

ज्येष्ठ सब दृष्टि में हमसे श्रेष्ठ होते हैं । ज्ञान, मन या जीवन के अनुभव हों, बड़ों की तुलना में छोटे हर दृष्टि से बहुत ही छुटके होते हैं । इसीलिए उनका लोकज्ञान हो या अनुभव, उसे समझने के लिए जब भी हमें किसी भी प्रकार के मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है, तब अपनी समस्या क्या है? अपनी शंकाएँ क्या हैं? उनका कौनसा समाधान हो सकता है? पुराने जमाने में किसने कौनसा समाधान बताया है? सद्य स्थिति में क्या वह प्रासंगिक होगा? इस प्रकार का कौतूहल निर्माण होते ही, उनको विविध प्रकार से मना कर, सही समाधान कौनसा होगा? इसका पता लगा लेना चाहिए । कुछ बार, उस उत्तर से हमें संतुष्टि नहीं भी हुयी, तो उनसे भी अधिक ज्ञानी–अनुभवी लोगों के पास जाकर विषयों का संकलन करना चाहिए; पर, उनके द्वारा कही गयी बात सही है या नहीं – इसके बारे में अनाहुत प्रश्न नहीं पूछना चाहिए । उससे व्यंग्य प्रश्न पूछने वाले के स्तर का ही पता चलता है ।

१०. अश्लील/ग्राम्य शब्दों का उच्चार ही न करें। क्यों?

'जिव्हा वंश का परिचय देती है ।' 'हे आचारविहीन जिव्हा! अब तो अपनी नीच बुद्धि का त्याग कर !' 'बिना हड्डी की जिव्हा, तुम चाहे जैसी घूम सकती हो ।' : ऐसी अनेक अनुभवजन्य बातें हम सुनते रहते हैं । इनकी पुनरुक्ति का कारण इतना मात्र है कि जिव्हा को अपने काबू में रख लेना चाहिए । इससे कोई भी अनुचित बात या विषय अपने मुँह से बाहर ही नहीं आ पाएगा । हम अपने आसपास या अन्यान्य कोनों से चाहे जो शब्द, पदप्रयोग सुनते रहते हैं। तब बच्चों को उन पदों का अर्थ बताते हुए, उनको समझाना होगा किं ऐसे अपशब्द किसीभी कारणवश उनके मुँह से नहीं निकलने चाहिए, और वैसे हीन शब्दों के बदले, दूसरे अच्छे उच्चारणीय शब्द उनको बता देने चाहिए । इसीलिए एक कवि कहता है –

जिह्वे प्रमाणं जानीहि भाषणे भोजनेऽपि च ।
अत्युक्तिरतिभुक्तिश्च सद्यः प्राणापहारिणी ।।

'हे जिव्हा! भोजन तथा भाषण में अपनी मर्यादाओं को तू समझ ले । अच्छी प्रकार से ध्यान में रखना कि अति भोजन, अति विषयसेवन तथा अतिकारी भाषण दोनों भी प्राणों का अपहरण कर सकते हैं ।'

लक्ष्मीर्वसति जिह्वाग्रे जिह्वाग्रे मित्रबान्धवा: ।
जिह्वाग्रे बन्धनं प्राप्तं जिह्वाग्रे मरणं ध्रुवम् ।।

'अपनी जिव्हा के अग्र पर ही लक्ष्मी व आप्त-बांधवों का वास रहता है । उसी प्रकार जिव्हा की नोक पर ही बंधन-मरण भी रहते हैं ।'

११. बड़ों की बातों के बीच उठ कर नहीं जाना चाहिए । क्यों?

ज्येष्ठ जन जो भी बोलते हैं, वह उनके जीवन के अनुभव का सार होता है । उनके द्वारा कही जाने वाली बातें शांत व एकाग्र चित्त से सुन लेनी चाहिए । बड़े-बुजुर्गों को चाहिए कि बच्चे गलती करने पर, उनको नीतिबोधक कथा, प्रसंग बताके उन्हें तद्नुसार चलने का आग्रह करें । बच्चों को भी बड़ों की बातों का पालन करना चाहिए । उनके द्वारा इन बातों का विवरण मिलते समय, 'यह सभी व्यर्थ की पुराण-कथाएँ हैं' या 'इनका यह कथा-पुराण सदा चलता ही रहेगा' ऐसी असहिष्णुता न दिखाते हुए, बैठ कर सुनना तथा उनकी सत्यता के बारे में विश्लेषण करते हुए तद्नुसार चलना चाहिए।

१२. उनके बारे में नहीं पूछना चाहिए । क्यों?

वरिष्ठ तथा ज्ञानी लोग उनको ज्ञात विषयों को समझाते समय, कुछ बच्चे निरर्थक व अप्रयोजनकारी प्रश्न पूछ कर, उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करते हैं । यह योग्य नहीं है । उनके द्वारा बतायी गयी बातों में अपने लिए ग्राह्य बातों का ग्रहण करते हुए, जटिल लगने वाले विषयों की चर्चा उनके लिए अनुकूल समय का पता कराके, उसी समय उनको मनाते हुए, अपनी समस्या का समाधान पाना चाहिए। उनके बारे में ही पूछना या बताना सज्जनता नहीं है । वरिष्ठ लोग अपने बारे में बातें करना नहीं चाहते । वही बताओ ऐसा आग्रह करना भी उचित नहीं है । समझ लेने की रुचि या कौतूहल हो और उनसे सही जानकारी मिलने की संभावना हो, तो अन्य लोगों से उस जानकारी का संकलन कर सकते हो ।

सिखाना चाहिए

१. **बच्चों को यह सिखाना चाहिए कि 'उनके द्वारा देखी हर वस्तु उनको चाहिए' ऐसी हठ न करें?**

अपने यहाँ 'चद्दर देख कर पैर फैलाएं' ऐसी एक कहावत है । याने अपनी मर्यादा से अधिक की अपेक्षा किसी भी स्थिति में नहीं करनी चाहिए । इस बात का अनुसरण स्वयं करने के पश्चात् ही बड़े वरिष्ठजनें द्वारा उसे बच्चों को सिखानी चाहिए । देखी हुयी हर वस्तु माँगते गए, तो सही मायने में उसकी मूल्य-महत्त्व-आवश्यकता आदि हमारे ध्यान में आती ही नहीं । अतः बच्चों को ये सभी बातें समझाते हुए, अपने लिए अतीव आवश्यक वस्तु ही क्रयकरने का संयम सिखाना होगा । देखी हुयी हर चीज चाहने वाले मन को उसके लाभ-हानि, सुख-दुःख की परवाह नहीं होती । इसके परिणामस्वरूप अंत में कोई बड़ा दुर्घटना भी हो सकता है ।

२. **क्या परायी वस्तु की अपेक्षा न रखते हुए, वह उन्हींके पास रहने दो ऐसा सिखाना होगा?**

बच्चे अपने पास जो वस्तु नहीं है, उसे देखते ही 'वह हमें चाहिए' ऐसा आग्रह, करते हैं । यह बालसहज स्वभाव है । ऐसे समय, बहुत सावधानी बरतते हुए, अभिभावकों को चाहिए कि वे उनको सही ढंग से समझाएं । दुर्लभ वस्तुएँ दूसरों के पास देखने के पश्चात आनंदित होना चाहिए । दूसरों की पुस्तकें, लेखनी, खेल की वस्तुएँ, खाद्यपदार्थ आदि कुछ भी स्वयं के लिए माँगना प्रारंभ कर देने का हठीला मनोभाव बच्चों को नहीं

सिखाना चाहिए । अपनी क्षमता न होते हुए भी, बच्चों के मन को दुःख पहुँचता है ऐसा सोच कर देखी हुयी हर वस्तु उनको दिलाना भी नहीं चाहिए । किसी भी वस्तु की आवश्यकता के बारे में बच्चों में पहले सजगता उत्पन्न करनी होगी ।

३. क्या उनको सिखाना होगा कि पीठ पीछे किसीकी भी बुराई या आलोचना नहीं करनी चाहिए?

यह काम माताओं को करना चाहिए । क्योंकि, बच्चों को छुटपन में माता का सानिध्य ही अधिक होता है। वे अपना हर सुख-दुःख अपनी माता के साथ ही बाँट लेते हैं। तब माता को बच्चे की बोलचाल, अपने मित्रों के बारे में उसकी धारणा आदि सब कुछ ठीक से निरीक्षण करना चाहिए । पाठशाला में या खेलते समय या समूह में बच्चों का आपसी झगड़ा होना सहजसी बात है। तब, बच्चे को दूसरा बच्चा उसके शत्रुसा लगता है । किंतु तदुपरांत, वह फिर से उसके साथ स्नेह से रहता है । क्षुब्ध होने पर बच्चे दूसरों की चुगली करना सहज ही है । तब बड़ों को चाहिए कि वे इस स्वभाव से बच्चे को मुक्ति दिलाके, उसको समझाना चाहिए कि 'दूसरों की आलोचना करना गलत है।' साथ ही, बच्चे अपने माता-पिता के आचरण का अनुकरण करने के कारण, उनके सामने दूसरों के बारे में हेय शब्दों में बोलना या सबके सामने उनकी कथनी-करनी की आलोचना आदि नही करनी चाहिए ।

४. क्या उनको यह भी सिखाना चाहिए कि वे असभ्य, अमंगल शब्दों का उच्चार तक न करें?

जहाँ सुसंस्कृत शब्दों का उच्चार होता है, वेद-मंत्रों का पठण, भगवन्नाम जप, उनका गायन, शिवशरणों के वचन आदि चलते हैं, वह 'भक्तों का घर' कहलाता है । वहाँ शांति रहती है । यदि इसके विपरीत जिस घर में झगड़े-मारपीट, गुस्सा-तनाव आदि रहता है, वहाँ शांति नहीं रह सकती । तब असभ्य, अनिर्वाच्य शब्द मुँह से निकल जाते हैं। उनके अर्थ से अनजान बच्चे भी उनका प्रयोग करना शुरू करते हैं । इसीलिए हर घर में भी वैसे अनिर्वाच्य शब्दों का उच्चार खुद भी नहीं करना चाहिए और बच्चों को भी न करने की सूचना देनी चाहिए ।

५. **बच्चों को सिखाना चाहिए कि वे अपने बड़ों तथा अपने द्वारा सम्मानित व्यक्तियों की आलोचना न सुनें/सहें । यदि उसका खंडन नहीं कर सकें, तो वहाँ रहना ही नहीं चाहिए । क्या यह सही है?**

हमें अपने वरिष्ठों का सम्मान करना चाहिए । उनके बारे में हमारे मन में आदर-गौरव-विश्वास होना चाहिए । साथ ही अपने महापुरुष, राष्ट्रभक्त, साधु-संत, देवता इनके बारे में भी बहुत आदर होना अवश्यक है। यह सावधानी बरतनी होगी कि किसी भी कारणवश, उनका तिरस्कार या अपमान न हो । यथासंभव इसका प्रतिकार करना चाहिए । दुष्ट, धोखेबाज तथा कुत्सित मनोभाव वाले लोगों द्वारा इन महापुरुषों या किसी गुरु-वरिष्ठों के बारे में आलोचना प्रारंभ होते ही, यदि हम उसका प्रतिकार करने की स्थिति में न हों, तो उस स्थान से तुरंत दूर निकल जाना चाहिए ।

६. **क्या आपने घर के बच्चों को बोलना, वह भी शुद्ध बोलना सिखाया है?**

'घर ही पहली पाठशाला, माता ही पहली गुरु।' माता ही बच्चे के सर्वांगीण विकास का कारण होती है । बच्चा माता की बोल-चाल, हावभाव आदि का अनुकरण करता है । इसीलिए माता को बच्चों की बोल-चाल का अति सूक्ष्मता से निरीक्षण करते हुए, यदि वे त्रुटि करते हैं, तो बिना ऊबे उनमें सुधार लाना चाहिए । माता को स्वयं भी शुद्ध बोलना, सज्जनता का बर्ताव करना चाहिए । तब बच्चा सहज ही माता की भाँति सहज सज्जनता की बोल-चाल सीख लेता है । अल्पप्राण-महाप्राण, ह्रस्व-दीर्घ, हकार-शकार आदि शुद्ध हो, इसका ध्यान रखना पड़ेगा । गलती होते ही उसे सुधार कर सिखाना होगा ।

७. **क्या हाथ जोड़ के नमन करना सिखाया है?**

अपनी हिंदू परंपरा के अनुसार, बड़ों को देखते ही, देवालयों में, देवता के सम्मुख, नया परिचय होने पर व आगंतुकों से विदाई लेते समय, उनको हाथ जोड़ कर आदर दिखाना चाहिए । माता को चाहिए कि यह बात बच्चों को उनके छुटपन में ही सिखाएं । उसी तरह, वरिष्ठों को देखते ही उनका वंदन करते हुए, उनसे आशीर्वाद लेना भी सिखाना चाहिए । इससे बच्चों में अहंभाव नहीं, बल्कि बड़ों के बारे में आदरभाव बढ़ता है।

८. **उनको 'पधारिए, बैठिए' ऐसा बोलना सिखाया है?**

'अतिथिदेवो भव' यह एक आर्य उक्ति है । अत: कोई भी व्यक्ति के आगमन पर, उनकी ओर आदरपूर्वक देखते हुए, गौरव से उनका स्वागत करना चाहिए। आगंतुक

व्यक्ति को 'अंदर आइए, बैठिए' ऐसा कह कर, उनके आगमन के उद्देश्य की पूछताछ करते हुए, वे जिनसे मिलने आएं हैं, उनके साथ भेंट कराने की व्यवस्था करनी चाहिए । उनके द्वारा बताए विषय संबंधित व्यक्ति तक पहुँचा देना चाहिए ।

९. क्या पधारे व्यक्ति को आसन देते/दिखाते हो?

आगन्तुक व्यक्ति को, चाहे वह शत्रु ही क्यों न हो, अतिथि के रूप में देखते हुए, आसन देकर उसका सत्कार करने की प्रथा अपने हिंदू धर्म में है । घर पधारे व्यक्ति को अपने घर की चटाई या कुर्सी आदि में से कोई भी आसन देकर बिठाना चाहिए । आगमन का कारण पूछ कर, यह भी जान लेना चाहिए कि वे किनसे मिलना चाहते है?

१०. पधारे व्यक्ति को पानी देकर, पीजिए कहते हो?

घर आएं अतिथि या तो वाहन में प्रवास कर के या चल कर के थकेमाँदे आए होते हैं । इसीलिए उनके आते ही, जीवनरूपी जल देकर उनका सत्कार करना चाहिए। पुराने समय में अर्घ्य-पाद्य-मधुपर्क देकर आगंतुक अतिथियों का सत्कार किया जाता था । तब आज जैसी वाहन सुविधा न होने के कारण, चल के ही आना अनिवार्य होता था। अत: थके-भागे आए अतिथि, पैर-हाथ-मुँह आदि ठंडे पानी से धोकर अंदर आने पर, उनको पानी-दूध-केले आदि दिए जाते थे । देहातों के किसान भी घर आने पर अतिथि को हाथ-पैर धोने के लिए पानी देकर, आसन बिछाते थें । अनंतर उनको लोटे में पीने का पानी व गुड़ के टुकड़े दिया करते थे । तदनुसार हमें भी घर पधारे व्यक्ति को पीने का पानी देने की वात सिखानी चाहिए ।

११. क्या बच्चे भी अपना परिचय कैसे करा दें, इसका क्रम आप जानते हो?

आज-कल माता-पिता दोनों के भी काम पर जाने की संभावना होती है व घर की गृहिणी को भी मंदिर, समारंभ आदि के लिए बाहर जाना पड़ता है । तब घर में रहने वाले बच्चों को ही घर आएं अतिथियों को पहले अपना पूरा परिचय करा देने का क्रम समझा कर, वाद में उनको अपना परिचय स्वयं ही करा देना उचित होता है। गोत्र मालूम हो, तो प्रवर बता कर बड़ों को नमस्कार करना भी सिखा देना चाहिए।

१२. अतिथियों को क्या कुछ चाहिए, इसे स्वयं भाँप कर, क्या आप उनकी पूर्ति कर सकते हैं?

घर आए मेहमानों का सुजनता से आदर करते हुए, उनके साथ मृदु आवाज में

बातें कर के, उनके आगमन का कारण जान लेना चाहिए। उनके आगमन की पूर्वसूचना व उनको देय वस्तु-पदार्थ आदि के बारे में ज्ञात हो, तो यथासंभव वह उनको पहुँचा देना चाहिए ।

१३. क्या आप इसका ध्यान रखते हो, जिससे किसीके भी बारे में अपनी ओर से आलोचनात्मक बातें न हो?

'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्' (याने, केवल सत्य व प्रिय बातें ही बोलनी चाहिए)। यह हमें अपने बच्चों को पढ़ाने योग्य पहला पाठ है । महत्त्वपूर्ण यही है कि किसी भी कारणवश झूठ नहीं बोलना चाहिए । वैसे ही किसी के भी साथ खराब या कठोर बातें या बर्ताव नहीं करना चाहिए। इसीलिए बच्चों में अच्छी बातें करना, दूसरों की आलोचना न करना आदि सद्‌गुण बचपन से ही विकसित करने चाहिए । किसीके भी बोलचाल में कोई दोष दिखायी देने पर, वही उसको प्रकर्षण दिखा देने के स्थानपर, वह दोष हमसे कभी भी न हो, इस प्रकार खुद को ही सुधार लेने की शिक्षा बच्चों को देनी चाहिए।

१४. अपने बच्चों को घर में ही क्या कुछ सिखाते हो?

समाज में सीखने से पहले, बच्चों को बहुत सारी बातें घर में ही सीखनी होती हैं । बच्चे की हर बोल-चाल के विकसन में घर के सभी सदस्य कारणकर्ता होते हैं । इसीलिए वे पाठशाला जाने से पहले ही, पिता-माता को चाहिए कि वे अपने बच्चों को सज्जनता, सौजन्य, सत्यसंधता, स्वाभिमान, स्वावलंबन आदि बातें सिखाएं । इस देश में बच्चों को देवता के समान मानने की पद्धति है । नये जन्मे बालक भी इससे अपवाद नहीं। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से भी हर नवजात शिशु 'एक अद्‌भुत' ही होता है । इस धरातल पर आने के पहले माँ के गर्भ में करीब ९ मास ९ दिन बिताने के पश्चात, वह इस भूमि का संपर्क पाता है । वैसे तो वह जन्मते ही श्वसन प्रक्रिया से आरंभ करते हुए सब कुछ सीखने में जुट जाता है। ऐसे बालक को क्या कुछ और कितना कुछ सिखाना चाहिए, इसकी कल्पना अभिभावकों को होनी चाहिए ।

माँ ही बच्चे की प्रथम गुरु होती है। अपनी छाती का दूध पिलाने से बच्चे का पहला पाठ शुरु होता है । बच्चों द्वारा बोले जाने वाले शब्द, की जाने वाली क्रीडा, उनका बर्ताव सब कुछ उनके परिसर पर अवलंबित होता है । किसी भी बालक को अपनी गतिविधियाँ कैसी सम्हालनी होती हैं, इसकी शिक्षा बहुत आवश्यक है। उसका हर कार्य ध्यानपूर्वक देखने पर ही, हम भी उसे समझ कर, उसका संवर्धन करना हमारे लिए संभव

हो सकता है । उदा. बच्चों को कब व कैसे जगना/उठाना चाहिए? उठने के पश्चात उनके क्रियाकलाप क्या होने चाहिए? उनकी अभिरुचियाँ-स्वभाव-आरोग्य आदि सब बातों का सूक्ष्मता से निरीक्षण करते हुए, उनमें सुधार करना, यह बड़ों का कर्तव्य है । इसीलिए, बच्चों को घरों में बड़ों द्वारा प्रमुखता से बताने योग्य अथवा उनको आत्मसात करने योग्य सब बातों को हमारे यहाँ संस्कार कहते हैं ।

बच्चों का मन बिलकुल ही कोरे कागज की भाँति होता है । उसके ऊपर हमारे द्वारा लिखे गए शब्द बच्चों पर प्रगाढ़ परिणाम करते हैं । अत: बच्चों के जीवनयापनार्थ आवश्यक सभी संस्कार हमें उनको अपने घर में ही प्रदान करने चाहिए ।

१५. घर में क्या सीखाना है? जो सीखना होगा, वह पाठ शाला में सीखेंगे ही : इसके बारे में आपका अभिमत क्या है?

बच्चे जितना पाठशाला या परिसर में सीख पाते हैं, उससे भी अधिक वे अपने कुटुंब में ही सीखते हैं । हमारे द्वारा सिखायी सब बातों का अनुसरण करने की तीक्ष्ण बुद्धि से युक्त बच्चे बड़ों की सब बातों का अनुकरण करते हैं । पहनावा, खान-पान, दूसरों के साथ व्यवहार, बोलचाल, सब कुछ घर में ही सीखते हैं । ये सभी बातें बच्चों के लिए ग्राह्य हो, इस रीति से सिखानी होगी । पाठशाला में दूसरे बच्चों के साथ यह बालक समरस होता है । किंतु घर में उसका बर्ताव जल्दी ध्यान में आता है । अत: 'जो कुछ सीखना है वह केवल पाठशाला में' यह भावना छोड़ कर, 'शाला केवल अध्ययन के लिए ही है, शेष सभी सामाजिक आचरण की विद्या घर में ही' यही विवेक हमसे अपेक्षित है ।

१६. ऐसी कोई बात है क्या कि जो पाठशाला में नहीं पढ़ सकते? कौनसी? क्या वह हम उनको घर में पढ़ा सकते हैं? कब?

'पाठशाला में पढ़ाते नहीं' इसके बदले, 'वहाँ बच्चों के ध्यान में न आने वाली बात' कहना अधिक उचित होगा । स्वावलंबन, बड़े-बुजुर्गों के प्रति विनम्रता, घर के आचार-विचार-संस्कृति-स्वच्छता-ममता-वात्सल्य-संबंधों का महत्त्व आदि बातें केवल घर में ही सिखाना संभव है। ये सब बातें बच्चों के अध्ययन-सोने-खेलकूद-खाते-पीते आदि सभी समय में समझा-बुझा कर सिखा सकते हैं । प्रात: शीघ्र उठना, दाहिनी ओर से उठना, देवता स्तोत्र दोहराना, हर दिन स्नान करना, बड़ों की मदद करना आदि सब बातें घर में ही पाने योग्य ऐसी शिक्षा-प्रशिक्षण है ।

१७. क्या आपको इसका भय लगता है कि यदि ये सारी बातें उनको सिखाने निकलेंगे, तो उनपर इनका बोझ अधिक होकर, वे हम पर ही उलट गए, तो हम क्या करें?

वड़ों को चाहिए कि वे स्वयं बच्चों को सिखाने से पहले, उन आचार-विचारों को समझ कर, तद्नुसार स्वयं आचरण करते हुए, अपने बच्चों को भी समझा कर, इससे होने वाली साधक-बाधक बातों का सोदाहरण विवरण देते हुए, समझाया तो बच्चे निश्चित ही नहीं उलटेंगे। यदि किसी एकाध संदर्भ में उन्होंने उल्टा बर्ताव किया, तो भी स्वत: विचार करने की क्षमता आने के बाद, उस गलती को सुधार लेने के लिए वे सक्षम हो जाते हैं। घर में सिखाना याने केवल बोल देना मात्र नहीं। हम स्वयं वैसा करते हुए, उनको भी उसी प्रकार करने की प्रेरणा देना, इसकी सजगता मात्र हमारे अंदर होनी चाहिए।

१८. क्या आपके सगे-संबंधी आपके घर आते हैं?

सगे-संवंधियों का अर्थ कितना अच्छा है! सं+बंधी=अच्छे बंधन से युक्त अर्थात् कुटुंब या परिवार से जुड़ें लोग, अपने सुख-दु:ख में सहभागी होने वाले, एक ही पेट से उपजे लोग, ताऊ-ताई, चाचा-चाची, बुआ-फूफ़ा, दादी-दादा आदि सभी लोग एक बंधन में बँधे होते हैं। ये सारे अपने सुख-संतोष, दु:ख-आनंद आदि सभी प्रसंगों में भागी होते हैं। इसीलिए ये सारे हमारे घर आते-जाते रहने चाहिए । उसी प्रकार हमें भी अपने सगे-संबंधियों के घर जाते-आते रहना चाहिए ।

१९. क्या उनके तथा उनसे संबंधों के बारे में बच्चों को बता सकते हो?

हिंदू समाज में संबंधों को उनके संबोधनों से ही समझ पाते हैं। दादा, दादी, फूफ़ा, बुआ, मामा, मामी, ताई, ताऊ, चाचा, चाची, दद्दा, दीदी, भाई, बहन, आदि सब यही सुझाते हैं कि उनसे हमारा क्या संबंध है । हमें अपने बच्चों को इन सभी संबंधों व किन-किन को किस-किस प्रकार संबोधित करना है, यह समझाते हुए, उनका सम्मान करना भी सिखा देना चाहिए । तब पधारे हुए लोगों को भी अपने बारे में, अपने घर के बारे में आत्मीयता बढ़ कर, वे स्नेह-समीपता के साथ व्यवहार कर सकते हैं ।

२०. आपको कितने संबंधसूचक शब्द ज्ञात है?

दादा-दादी, नाना-नानी, पिता-माता, बुआ-फूफ़ा, दीदी-बहन, दद्दा-भाभी,

भाई–ननद, जेठ–जेठानी, देवर–देवरानी, चाचा–चाची, बेटा–बहु, बेटी–दामाद, समधी–समधिन, भतीजा–भतीजी, भाँजा–भाँजी, मामा–मामी, पोता–पोती, आदि सब एक परिवार से संबंधित निकटतम आप्त–बांधव हैं ।

२१. अब आप भूल चुके संबंधसूचक शब्द कितने हैं?

अब हम बहुतसे संबंधसूचक शब्द भूल चुके हैं । सभी संबंधों के लिए 'आँटी-अंकल' ये अंग्रेजी संबोधन सामान्यसे बन गए हैं । माता–पिता को भी हम प्यार से माँजी–पिताजी ऐसा बुलाने के बजाय 'मम्मी–डैडी' कह के बुलाते हैं । सौत, बड़ी माँ, छुटकी माँ, शालक, छुटका मामा, बड़ा मामा आदि का उपयोग मानो थम सा गया है ।

अपनी संस्कृति और भाषा में संबंधित संबंधों के लिए पृथक-पृथक शब्द विपुल पैमाने में हैं । इसीलिए हमें उनका उपयोग निश्चित ही करना चाहिए । इससे अपनी संस्कृति व अपनी भाषा दोनों ही बचती हैं। अत: घर में अपने बच्चों को इन संबंधो के बारे में विवरण देते हुए, अपने बुजुर्गों को यह आग्रह करना होगा कि वे सभीको संबंधित संबंधसूचक शब्द से ही संबोधित करें।

आर्थिक व्यवस्था व बचत

१. आपका व्यय आपकी आय से अधिक है या कम?

एक कहावत है, 'जितनी चद्दर, उतने ही पैर पसारो।' हर एक को व्यय अपनी आय से कम करना चाहिए । सौ रुपयों की आय वालों को नब्बे से कम रुपयों का व्यय करने की स्वभाव डाल लेनी चाहिए । इससे जीवन में आर्थिक संकट उत्पन्न नहीं होगा । अनावश्यक व्यय न होकर, पैसा भी व्यर्थ जाया नहीं होता । सरल, सीधासादा जीवन चलाना अनुकूल होता है । ऋण देने वालों से तकलीफ नहीं होती । शांति, तसल्ली का जीवन चला सकते हो । अपना आत्माभिमान, सत्यशीलता आदि सद्गुणों की रक्षा कर सकते हो । 'आमदनी अठन्नी खर्चा रुपय्या' हुआ, तो आदमी रीति-रिवाज, नीति-नियम, आत्माभिमान आदि सब कुछ छोड़-छाड़ के दुर्गुणों के अधीन हो जाता है ।

२. क्या आप मानते हो कि ऋण का होना ही सम्मान का लक्षण है?

'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' (याने, ऋर्ण लेकर घी पियो) । यह चार्वाक संस्कृति है तथा विदेशियों का मूल मंत्र । लेकिन इसे हम नहीं चाहते । हम अल्पसंतुष्ट बने रहेंगे । पहले, कर्जा माँगना ही व्यक्ति की दीनता का संकेत था; उसकी असहायकता का प्रतीक था । पर आश्चर्य की बात याने आज पाश्चात्य संस्कृति की शरण गए हम जैसे लोग उनके सभी विचारों को आत्मसात कर रहे हैं । लेकिन यह कहाँ तक सही है? अपनी संस्कृति पृथक है; उनकी पृथक है । अब मनुष्य जन्मते ही हर चीज के लिए कर्जा लेने के पीछे पड़ जाता है । ऋण करना यह हमारी अधोगति का सूचक है । बच्चे

अध्ययन के लिए ऋण लेते हैं, शादी का ऋण, काम कराने हेतु ऋण, चिकित्सा सेवा के लिए ऋण, वाहन क्रयकरने का ऋण, इस प्रकार जन्म से मृत्यु तक मनुष्य ऋण में ही डूबा रहता है।

जरा सोचिए, क्या ये सब आवश्यक हैं? क्या इससे हमें सुख-सकून मिलता है? निश्चय ही नहीं । हिंदू अवधारणाओं के अनुसार, मरते समय मनुष्य को सभी प्रकार के ऋणों से मुक्त हो जाना चाहिए । उसे देवऋण, पितृऋण व ऋषिऋण नामक ऋणत्रयों से मुक्त होना चाहिए। लेकिन, अब ऋण याने केवल आर्थिक क्षेत्र से ही आबद्ध शब्द बन गया है। ऋण लेकर हम सभी सुखसुविधाएँ पा सकते हैं, इस भ्रम में ऋण के रूप में मनुष्य अपने अस्तित्व को ही समाप्त किया जा रहा है । अत: वही उत्तम नागरीक बनता है, जो इस ऋण के आडंबर से बाहर रह पाता है ।

३. क्रेडिट कार्ड के बारे में आपका अभिमत क्या है?

कोई भी वैकल्पिक मार्ग किसी एक समस्या के निवारणार्थ ही जन्मता है । यह क्रेडिट कार्ड भी वैसा ही एक साधन है । कुछ बार कुछ व्यक्तियों के लिए यह निश्चित ही आपात् रक्षक के रूप में आता है । वह कुछ लोगों के लिए अनिवार्य भी होता है । व्यापारी, उद्यमी, देशसंचार करने वाले, प्रवासी लोगों के लिए यह एक अत्युत्तम साधन है। लेकिन जिनको इसकी आवश्यकता ही नहीं है, ऐसे लोगों द्वारा रूखीसूखी प्रतिष्ठा के लिए क्रेडिट कार्ड का उपयोग करना सही नहीं है। विवेकशील व्यक्ति के पास की हर वस्तु उपयुक्त ही बनती है । लेकिन उसका उपयोग ही न जानने वाले, चंचलमना, मन पर काबू न रखने वाले लोग जब इसका उपयोग करते हैं, तो केवल अनर्थ ही घटित होता है। एक और दृष्टिकोण से भी सोचा जाए, तो यह मनुष्य के लालच को और अधिक बढ़ाता है । क्योंकि, कैसे भी व कुछ भी क्रय करने की सुविधाएँ होने के कारण, देखी-अनदेखी, आवश्यक-अनावश्यक, सुनी-अनसुनी ऐसी सब चीजें खरीदने की चाहत ही उभर के आ रही है । इससे हमें यह पता चलता है कि मनुष्य ऋण के पिंजरे में जकड़ता जा रहा है । आने वाले कल के लिए अर्जित किया जा सकने वाला धन आज ही व्यय करना/कराने का लालच और व्यवस्था दोनों ही उचित नहीं है ।

४. क्या अधिक व्यय करना ही सम्मान का लक्षण है?

'अधिक खर्चा मत करना', 'आडंबर के लिए व्यय मत करना' ऐसा कहने वाले को पागल मानने की परिस्थिति आज उत्पन्न हुयी है । धनिक वर्ग अपनी

प्रतिष्ठा का प्रदर्शन करने हेतु व्यय करता है, तो निर्धन वर्ग उनका अनुकरण करने के प्रयासों में व्यय कर रहा है । यह होड़ उचित नहीं है । हमें प्रमुखता देनी चाहिए अपने काम, श्रद्धा, नियम, संस्कारों को, न कि आडंबर को ।

प्रतिष्ठा के लिये बच्चों को व्यवसाध्य शालाओं में भर्ती कराना, आडंबर के विवाह आदि किस पुरुषार्थ साधना के लिए हैं? पहले, 'रहने के लिए अपना ही एक आशियाना हो' ऐसी आस होती थी। लेकिन, अब हर एक का सपना होता है ऐशो-आराम वाला बंगला, खर्चीला फर्नीचर, अत्याधुनिक सुविधाएँ आदि । अधिक वाहन यह कोई सम्मान का संकेत नहीं है । इनके अर्जन के लिए दिन-रात मेहनत करते हुए, मनुष्य को अपनी आत्मोन्नति की ही अनदेखी करनी पड़ रही है । हमारे तिरोहित होने के बाद, इनमें से कुछ भी हमारे पीछे नहीं आता। हमारे सत्कार्य, हमारी हार्दिकता ही हमारा सम्मान-गौरव बढ़ाते हैं ।

इसीलिए अधिक खर्चा करने की नीति को त्याग कर, देश की उन्नति, आत्मोन्नति, सत्कार्यों में मन को जुटाना ही श्रेयस्कर है ।

५. धड़ल्ले की अपव्ययता कैसे तय करनी चाहिए?

आज के दिनों में धड़ल्ले की अपव्ययता (Extravaganza) इस शब्द का प्रयोग सामान्यसा बन गया है । बिना अनिवार्यता के, अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह, प्रदर्शन, वितरण करना - यह सब अपव्ययता ही है। यह अपव्यय अब हम हर पड़ाव पर देख रहे हैं । भूख न होने पर भी प्रदर्शनार्थ होटलों, बेकरियों में खाना, घर में चाहे जितने कपड़े होने पर भी नये-नये फैशनेबुल कपड़े खरीदना, बच्चों को पॉकेट मनी देना, केवल प्रदर्शन के लिए खर्चीली वस्तुओं का संग्रह करना, इस प्रकार अपव्यय बढ़ती ही जा रही है ।

६. अर्थार्जन की २५% बचत व २५% धर्मार्थ इस परंपरा, नीति के बारे में आपका अभिमत क्या है?

अर्थशास्त्र ही बताता है कि हर मनुष्य को अपने अर्थार्जन का आधा भाग उदरभरण-परिवारपोषण, पाव भाग धर्मार्थ तथा शेष पाव हिस्सा आपात्काल के लिए बचा के रखना चाहिए । मनुष्य के नाते जन्म लेने के पश्चात् अपना कुल-देश-भाषा-धर्म आदि के प्रति अल्प ही क्यों न हो, कृतज्ञतापूर्ण सेवा समर्पित करनी चाहिए । यह

तन-मन-धन इनमें से सब या कुछ भी हो सकता है । इनमें से पहले दो केवल मनुष्य

मात्र अर्पित कर सकता है । तीसरी बात जो धन है, उसे परोपकारार्थ श्रम करने वाले संघ-संस्था-व्यक्ति इनमें से किसी में तो निवेश करते हुए, धर्मकार्य में सहभागी हो सकते हैं । बचत तो आज के दिनों में बहुत ही अवश्यक है । भविष्य में बिना परावलंबन का जीवनयापन करने के लिए बचत करना अनिवार्य है । धन का अर्जन करने के तुरंत बाद, अपनी आगे की आवश्यकताओं तथा धर्मकार्यों के लिए थोड़ा धन निकाल कर रखना बहुत ही वांछनीय काम होगा ।

७. धर्मकार्य याने क्या कुछ कर सकते हैं?

अपने लिए नहीं, बल्कि दूसरों के लिए किया जाने वाला कोई भी नि:स्वार्थ कार्य 'धर्मकार्य' कहलाता है । यह तन-मन-धन ऐसे किसी भी स्वरूप में हो सकता है; जैसे विकलांगों, मानसिक दृष्टि से दुर्बलों को आत्मस्थैर्य का आश्वासन व आर्थिक दृष्टि से दुर्बल लोगों के लिए अपने से जितनी हो सकता है उतनी आर्थिक सहायता करना आदि। कुल मिला कर, सहायता की अपेक्षा रखने वालों को दी जाने वाली सभी प्रकार की सहायता धर्मकार्य कहलाती है । विद्याविहीन लोगों को विद्यादान, पीड़ितों की सहायता ये धर्मकार्य ही हैं । आर्थिक दृष्टि से सबल हो, तो एकाध छात्र-छात्रा के विद्यार्जन का दायित्व स्वीकारना, किसी वृद्ध के स्वास्थ्य की दायित्व सम्हालना भी धर्मकार्य ही है । पशु-प्राणियों की रक्षा, पेड़-पौधे, जल-जमीन-जंगल का संवर्धन, गरीब-दीन-दलितों को सुखी जीवन चलाने योग्य बनाना आदि सब धर्मकार्य ही हैं ।

८. बचत का पैसा कैसे रखना है? सुरक्षा कहाँ है?

आजकल बचत का पैसा बैंक के बचत खाते में या बचत सर्टिफिकेटों की खरीदी करते हुए सुरक्षित कर सकते हैं । यहाँ सुरक्षित रखा हुआ पैसा अपने आपत्काल में हमारे ही काम आता है । हम जिस कार्य के लिए उनकी बचत करते हैं, उसी समय उसे पुन: प्राप्त करने की व्यवस्था इन स्थानों में उपलब्ध होती है । अधिक ब्याज की अपेक्षा या कर-चोरी के उद्देश्य से असुरक्षित स्थानों पर उन्हें रखा गया, तो मूलराशि से ही हाथ धोने की नौबत आके धमक सकती है । वैसे सैंकड़ों, हजारों मामले आज हमारे सामने हैं । अत: होशियारी इसमें है कि सुरक्षा प्रदान कर सकने वाली सरकारी संस्थाओं में धन का निवेश करें । अब पैसों का प्रमाण अधिक हो तो स्वर्ण या जमीनजायदाद में निवेश करना और भी अच्छा है। शेयरों में पूंजी लगाना उचित नहीं है ।

९. क्या बच्चों को बचत करना सिखाया है?

बचत याने घर में एकाध व्यक्ति द्वारा ही करनेयोग्य काम नहीं है। घर के सभी सदस्यों को भी अपनी अनावश्यक माँगों पर नियंत्रण पाकर, बचत करना चाहिए । इस प्रक्रिया में वरिष्ठों को छोटों के लिए आदर्श बनना चाहिए । क्योंकि, बच्चे बड़ों के चाल-चलन का अनुकरण करते हैं । बच्चों को आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति करते समय, उनकी कल की व जीवन की आवश्यकताओं के बारे में समझा के, कितनी जागरूकता से उनका उपयोग-विनियोग करना है, इसके बारे में प्रभावी मार्गदर्शन करना चाहिए। जन्मदिन आदि विशेष प्रसंगों पर अनवश्यक वस्तुओं को क्रय करने के स्थानपर, उपयुक्त सामग्री क्रयकरना सिखा देना चाहिए। अच्छी पुस्तकों का संग्रह करना भी योग्य रहेगा । बैंकों में बच्चों के नाम से खाता खोल कर, वहाँ पैसों का संग्रह करते हुए, बच्चों में सद्विनियोग करने की आदत विकसित करनी चाहिए । घर में ही बच्चों के निधिसंग्रहार्थ एक पेटिका दिला कर, उसमें उनको मिले पैसों का संग्रह करना सिखा देना चाहिए ।

१०. आपके यहाँ हुंडी/गोलक का रिवाज प्रचलित है?

'बूंद-बूंद से सरोवर' यह एक कहावत है । क्या वास्तव में आप इसकी सत्यता के बारे में जानते हो? घर में कोई भी आपात्काल आते ही, हुंडी का यही पैसा तत्काल अपनी सहायता के लिए आता है । हमारे अनजाने ही संग्रहित किया गया एक-दो रुपया भी एक बड़ी राशि बन कर कुछ बार तो प्राण-मान रक्षा का माध्यम बन जाता है । साथ ही, भगवान या धर्मकार्य के नाम पर संग्रह कर रखी हुंडी के धन का सद्विनियोग होता है । हुंडी की दो विधाएँ हैं - एक, अपने स्वत: के उपयोगार्थ तथा दूसरी, देव-दान-धर्मार्थ । हमे अधिक बोझ न हों, इस तरह की हुंडी संग्रह पेटिका हर परिवार में होना जरूरी है ।

११. बच्चों को आप क्या देना चाहोगे? आपके माता-पिता से आपको जो मिला, उसमें से क्या दोगे?

माता-पिता अपने बच्चों को अपना सार-सर्वस्व ही देते हैं । लेकिन, हमें अपने बच्चों को देने योग्य सबसे बड़ा धन याने विद्याभ्यास, सज्जनता तथा स्वावलंबन के द्वारा जीवन जीने का साहस । देश के लिए आवश्यक ऐसे वीर, शूर, प्रामाणिक सपूतों के रूप में अपने बच्चों को यदि बढ़ाया, तो सही अर्थ में हम एक अच्छे माता-पिता बन

सकते हैं । इस प्रकार सद्गुण-संपन्न बच्चा स्वयं ही ढेर सारी दूसरी संपत्ति अर्जित कर सकता है । हमारे द्वारा अर्जन कर के दी हुयी कोई भी चर-स्थिर संपदा से इसकी तुलना ही नहीं हो सकती। अपने माता-पिता से हमें प्राप्त सद्गुण, सत्परंपराएँ, उदार गुण ही हमारे द्वारा अपने बच्चों को देने योग्य धरोहर है । अपने आदर्श आचरण के द्वारा ही हमें उन्हें प्रदान करना चाहिए । बच्चों को बारह वर्ष होने से पहले, अपने कुल की आस्था, आचार व संस्कृति सिखानी चाहिए ।

१२. क्या आपके बच्चे, पोते, पोतियाँ देवभक्त-देशभक्त हैं?

'बुवाई जैसी फसल, जुताई जैसी जमीन' अपने स्वत: के चालचलन के द्वारा ही सिखा कर, बच्चों में अच्छी संस्कृति, बोलचाल आदि सद्गुणों के संस्कार बिंबित करने चाहिए । यदि हम अनुचित राह पर चलते हैं, तो वे भी उसी मार्ग पर चलते हैं । अत: उनको छुटपन में ही आत्मगत करायी आदत, गुण, चालचलन ही मनुष्य में अंत तक शाश्वत रूप में रह पाते हैं। यदा-कदा किसी सहवासदोष से कुछ समय तक वे अनुचित मार्ग पर चलें, तो भी उनके संस्कार उनको अधिक दिनों तक वाम मार्ग पर रहने नहीं देते। अत: बच्चों में बचपन से ही सज्जनता बढ़ानी चाहिए । देवभक्ति, देशभक्ति छुटपन में ही बिंबित करनी चाहिए ।

१३. आपके द्वारा प्रदत्त कौनसी बात बच्चों के जीवन के अंत तक सहचरी, सहकारी बन सकती है?

चर-अचर संपदा सभी नश्वर हैं । ये कुछ ही लोगों के पास होती है । लेकिन सज्जनता, सत्परंपराएँ, विद्या, संस्कृति, परोपकारी बुद्धि, राष्ट्रप्रेम, विनम्रता, आज्ञाकारिता, बड़ो के बारे में आदर, ईश्वरभक्ति, स्वावलंबन आदि सब का अर्जन अपने घर के सब लोगों को करना चाहिए । इसके लिए किसी भी प्रकार का शुल्क अदा नहीं करना पड़ता । उसे हमें बचा के रखना होगा । लेकिन उसका वास्तविक मूल्य अपार होता है । यदि मनुष्य का जन्म सार्थक होना है, तो हमें इन सभी सद्गुणों को आत्मसात करना पड़ेगा; उनको बचा के भी रखना पड़ेगा व अपनी संतानों को भी उनकी रक्षा करते हुए उनका अर्जन करना भी सिखाना पड़ेगा । यही माता-पिता द्वारा अपने बच्चों को प्रदान करने योग्य अनमोल संपदा हो सकती है ।

दिनचर्या - समयपालन

१. क्या आपके घर की कोई दिनचर्या है?

दिनचर्या याने कौनसा काम, किसे, किस समय करना चाहिए - इसका क्रम होता है । यह सामान्यत: सभी घरों में होना चाहिए । अपनी-अपनी संस्कृति-परंपराओं का अवलंब करने में भिन्नता नहीं रहनी चाहिए। लेकिन सभी समूहों में स्नान-भोजन-निद्रा-उठना आदि सभी निश्चित समय पर करने की प्रथा चली आयी है । वह हर घर में भी होती है ।

२. क्या आपके यहाँ उठना, देवता-नमस्कार, भोजन, भजन, मिल कर बातचीत करना आदि बातें हैं?

हिंदुओं के लिए कुछ विषय महत्त्व के हैं । वह यहाँ की संस्कृति का फल है । उसमें सर्वप्रथम स्थान है भगवान का । यहाँ हर घर में देवता, हर व्यक्ति का इष्टदेवता, सबके लिए समान एक देवता - इस प्रकार 'भगवान एक, बल्कि उसके नाम अनेक' यही अपनी व्यवहारोचित प्रज्ञा है । साथ ही मानवीय संबंध व आवश्यकता ओं के अनुसार, निराकार ईश्वर विविध रूप धारण कर विविध नामों से आते हैं । उनके सामने जप-भजन-पूजन-आराधना आदि चलती है । यह हर घर की विशेषता है । उनके अनुसार ही हर दिन की दिनचर्या बदलती है । लेकिन आज, जैसे-जैसे सभ्यता बदल रही है, वैसे-वैसे इनमें भी बदलाव दिखायी देते हैं । साथ ही दिनचर्याविहीन घर भी हैं ।

३. क्या आपके सभी घर वालों को समय-पालन की प्रज्ञा आयी है?

दिनचर्या का महत्त्वपूर्ण अंग है समयपालन । सभी घर वालों को कोई एक काम मिलकर करना है, तो उस काम का कोई निश्चित समय होने से ही वह संभव होता है; तद्नुसार सभी समायोजन कर लेते हैं। किंतु, आज के बदले हुए परिवेश में हर किसी का काम किसी दूसरे के काम से मेल न खाने के कारण, दिनचर्या लागू नहीं हो सकती। अपने लिए अनुकूल वक्त अपना काम पूरा करते जाते हैं । प्रकृति द्वारा निर्धारित दिनचर्या ही अनेक बार बदल जाती है । (भोजन, नींद जैसे सहज कार्य भी बदल गए है) वैसे प्रसंग में समयप्रज्ञा बिंबित नहीं होती ।

४. क्या आपके घर के सभी लोग हर दिन स्नान, ध्यान, व्यायाम करते हैं?

पुरानी व आज की पीढ़ियों में बहुत अंतर दर्शाने वाली ये तीन बातें हैं । अपने यहाँ हर दिन, वह भी सुबह का स्नान अनिवार्य है । यदि वह नहीं हो पाया, तो तिलमिलाहट होनी चाहिए कि हमने कुछ तो खोया है, भूल होगया है। लेकिन गतिमान जीवन, स्नान के महत्त्व से अनभिज्ञ सभ्यता का निकटतम साहचर्य, चिंतन कम व अंधानुकरण अधिक वाली शैली, 'स्नान क्या बड़ी बात है?', 'नहीं किया तो क्या दोष?' ऐसी बुद्धूपन की बातें – ये सब मिल कर, बिना स्नान के रहने पर पाप का अनुभव होने के बदले, कोई उपलब्धि हासिल करने का भाव होता है । उसे पार करते हुए, स्नान को अपने दैनंदिन के जीवन का हिस्सा बनाने की ओर ध्यान रहे । वही स्थिति ध्यान व व्यायाम की हुई है । जिस प्रकार मानव की बाहरी आँखें अच्छी होनी चाहिए, वैसे ही उसके अंत:चक्षु भी कार्यशील रखने व उसे प्रभावी द्रष्टा बनाने हेतु, ध्यान भी उतना ही प्रबल साधन है। आरंभ में श्वसन प्रक्रिया की ओर मन को केंद्रित करते हुए ध्यान की शक्ति को बढ़ा लेने के पश्चात्, क्रमश: हमारे लिए अनजान विषय भी स्पष्टत: देखने की शक्ति सबको प्राप्त हो जाती है।

व्यायाम भी वैसा ही है । देह से थोड़ा तो पसीना आवे ऐसी कुछ शारीरिक क्रियाएँ करना सबका नित्यकर्म बनना चाहिए । उसमें भी नये-नये यंत्रों के आगमन से मानवी शरीरों की हलचल कम हुई है; नये-नये रोगों का प्रादुर्भाव हो रहा है । यह अपना दैनिक का अनुभव है कि बाहर से सुखी, भलेचंगे दिखने वाले लोग भी अंदरूनी बीमारियों से कराहते हैं। अत: यंत्रों का उपयोग करते हुए भी उनका दास न बनना, अपना शरीर बलिष्ठ रख कर, उसे सुखी करने की क्षमता बचा के रखने हेतु हर दिन थोड़ा समय तो व्यायाम करने की परिपाटी घर के सभी लोगों को डालनी होगी।

५. क्या आपके घर वालों को अपना-अपना काम स्वयं करने का स्वभाव है?

हम स्वयं कर सकने वाले कामों की पहचान करते हुए, हर घर में उन्हें करने का प्रोत्साहन देना चाहिए । तब हर व्यक्ति स्वावलंबी होता है। दूसरों की सहायता भी होती है ।

६. क्या बच्चे घरकाम में माँ का हाथ बँटाते हैं?

'काम ही कैलाश है' यही हमारी संस्कृति है । किंतु विद्या व पैसों के आधिक्य से प्रतिष्ठा पनपते घरों में माताओं द्वारा अपने बच्चों को काम बताके कराने का क्रम कम हुआ है । अत: उनपर काम का अतिरिक्त बोझ पड़ता है । सहज ही वे काम वालों को काम पर लगा लेती हैं । उनसे काम करा लेने की जिम्मेदारी भी उन्हींपर आती है । काम बता कर, करा लेने तथा स्वयं करने की दूसरों की अभ्यास भी छूट जाता है । अत: वे केवल आलसी ही नहीं, बल्कि बुद्धू भी बन जाते हैं । वैसा न हो और बच्चों में कुशलता व तंत्रज्ञान वृद्धिगत हो, इस दृष्टि से कुछ काम घर वालों द्वारा ही करने की शक्ति बनाए रखने के लिए, खुद ही घर के बच्चों को मदद करने का ढंग सिखा कर, उनको काम करने का अवसर देते रहना चाहिए ।

७. क्या समय-समय पर गपशप, सत्संग होते हैं ?

केवल धनार्जन ही जीवन का केंद्रबिंदू बने घरों में किसीको भी अवकाश नहीं होती। वहाँ संगीत, साहित्य, कला, सेवा, दान, धर्म आदि विषयों के लिए स्थान मिलता नहीं। किंतु केवल अर्थार्जन को ही जीवन का ध्येय न बनाते हुए, धर्म-देश-सेवा-संगीत-साहित्य को स्थान देने वाले घरों में इनके बारे में बातें होती रहनी चाहिए । सभी घर वालों को इकठ्ठा आकर ऐसे विषयों के बारे में चर्चा करनी चाहिए । एकत्र आकर चिंतन, बातचीत व काम करने के गुणों का संवर्धन करना होगा । घरों में संख्या बढ़ने पर, गपशप, खेल सहज ही बढ़ने चाहिए । तब सबको मेरा भी इस घर से एक नाता है तथा बाकी सब मेरे अपने हैं यह आत्मीय भाव बढ़ता है; अन्यथा, 'मैं अकेला हूँ' ऐसा एकाकीपन या 'बाकी सब मेरे लिए ही हो' ऐसा स्वार्थ, अहंकार या 'मेरा क्या होगा?' ऐसा डर पैदा होता है । ऐसी भावनाएँ पैदा ही न हों, इसलिए अपने यहाँ बातचीत, गपशप, सत्संग आदि समय-समय पर होते रहने चाहिए ।

८. क्या आपके घर की गतिविधियों के बारे में आपको गर्व है?

घर में सुबह से रात तक चलने वाली साफसफाई, स्नान, रसोई, भोजन, पूजा, प्रार्थना, भजन आदि सभी कामों के बारे में सबको पता होना चाहिए। क्रमश: उनके बारे में 'यह अच्छा है/नहीं है' ऐसे अभिप्राय प्रकट होते रहने चाहिए । उसके बाद ही अपने घर का खाना अच्छा, सजावट अच्छी, त्योहार अच्छा, पूजा अच्छी ऐसे अभिप्राय सबके मन तथा मुँह में आ सकते हैं । बच्चों की उपस्थिति में ही ऐसे मतप्रदर्शन होते रहें, तो वे बच्चों के विकास का उत्तम आधार बन सकते हैं ।

९. क्या आपके घर में कोई 'विधि-निषेध' है?

हिंदुओं की विशेषता उनकी सोच में होती है । चाहे किसी भी परिवेश में रहें, 'क्या करना चाहिए?' 'क्या नहीं करना चाहिए?' 'कैसे करना चाहिए?' 'कैसे नहीं करना चाहिए?' 'कब करना चाहिए?' 'कब नहीं करना चाहिए?' आदि के बारे में विचार करते हुए, तदनुसार कृति करना ही यहाँ की जीवन पद्धति की विशेषता है । 'बैठ के खावो', 'बाएं हाथ से मत खावो', 'दाहिने हाथ से ही खावो', 'दाहिने हाथ से ले लो', 'बड़ो' के बोलते समय ध्यान से सुनो', 'बीच में मुँह मत खोलो' आदि छोटी-छोटी बातें घर में ही सिखानी चाहिए । पहले बुजुर्गों द्वारा इसका पालन होने के बाद ही छोटों से कराना चाहिए । बच्चों ने यदि गलती की, तो उसमें सुधार करते हुए, 'ऐसा करो' यह बता कर उनमें सुधार लाना चाहिए । ऐसे 'विधि-निषेध' ही व्यक्तित्व विकसन प्रक्रिया की महीन कशीदाकारी होते हैं । इनके परिपालन से व्यक्तित्व सुंदर रीति से साकार हो सकता है ।

मिलकर करने योग्य काम

१. घर के सब लोगों द्वारा मिल कर करने योग्य काम कौनसे हैं?

भोजन, भजन, गपशप, साफसफाई, सत्संग, वाचन, समाचार समीक्षा, टी.वी. के बारे में चर्चा आदि कर सकते हैं । इनके अतिरिक्त रात में भोजनोपरांत, उस दिन की गतिविधियों व कार्यक्षेत्रों (जैसे शाला, कार्यलय दुकान आदि) में घटित घटनाओं के बारे में चर्चा कर सकते हैं ।

२. साफसफाई कैसे करनी चाहिए?

स्वच्छता का उपक्रम धीरे-धीरे कम तो नहीं हो रहा है, इसकी सावधानी बरतनी चाहिए । वस्तुएँ निर्धारित स्थानों पर, निश्चित ढंग से तथा हर दिन झाडू-पोंछा करते हुए सब कोने व कचरा जमने के ठिकानों के बारे में ध्यान देते हुए, अलग स्वच्छता की आवश्यकता यथासंभव कम कर सकते हैं । कम से कम बरामदा, दीवानखाना, भोजन कक्ष, रसोई व स्नानागार पर तो यह नियम अवश्य ही लागू होना चाहिए ।

३. स्वच्छता के समय ध्यान देने योग्य बातें क्या हैं?

सभी वस्तुएँ एक गठरी में बाँध के किसी अलमारी में रख कर उसे बंद करने पर भी कमरा साफ दिखायी दे सकता है । वैसा न करते हुए, हर वस्तु का अपना निश्चित स्थान, इस नियम के अनुसार क्रम से रखी जाएं, तो घर व्यवस्थित रहता है । कचरा/धूल के हिसाब से सफाई के काम सभी घर वालों को आपस में बाँट के करने होंगे । इसकी कोई एक देखरेख करने का दायित्व स्वीकार करें ।

४. **शौचालय, स्नानगृह, घर की छत, दरवाजों के पिछले भाग इनकी स्वच्छता की क्या स्थिति है?**

यदि सतर्कता हो कि शौचालय तथा स्नानगृह में पानी/कूड़ा जम न जाए, तो स्वच्छता सुलभ होती है । इसके साथ ही, इनको पखवाड़े में एक बार तो अच्छी प्रकार से घिस के धोना चाहिए । वहाँ पर जमीं काई (पाची, शैवाल आदि) या मकड़जालों को समय-समय पर हटाना चाहिए। स्नानगृह में अनेक प्रकार की त्याज्य वस्तुओं का जमावड़ा हो सकता है । उनको हर दिन निकालते रहना चाहिए ।

घर की छत हर दिन साफ करना दुस्तर होता है । किंतु अपनी ऊँचाई तक की दीवारें तो समय-समय पर साफ कर सकते हैं । लेकिन दरवाजों के पिछले भागों को हर दिन सफाई के समय ही स्वच्छ करते रहने चाहिए ।

५. **क्या आपको ज्ञात है कि पानी का प्रयोग कर के सफाई कैसी करनी होती है?**

उपलब्ध पानी का अतीव आवश्यक प्रमाण में प्रयोग करते हुए सफाई करना अच्छा होता है । नगर प्रदेशों में नल के पानी को पाइप से जोड़ कर सफाई करने की प्रथा है । यह पानी के अनावश्यक उपयोग का जरिया नहीं बनाना चाहिए । यह सोच ठीक नहीं कि हमारे घर में चाहे जितना पानी है, फिक्र की कोई बात नहीं । घर के दरवाजे, घर की अंदरूनी जमीन, कपड़े, बर्तन, पिछवाड़ा, स्नानगृह, शौचालय आदि सभी की सफाई के लिए पानी आवश्यक है और इनके लिए उपयोगित पानी का प्रयोग दूसरे कामों के लिए भी कर सकते हैं । तब जाकर कहीं पानी का उपयोग कम हो सकता है। उदा. कपड़ों की धुलाई के पानी का इस्तेमाल शौचालय, स्नानगृह की सफाई के लिए कर सकते हैं । एक बार इस पानी से साफ करने योग्य भागों को भिगो कर, घिसने के पश्चात् यदि बचा रहा, तो उसी पानी से और अंत में साफ पानी से साफ कर सकते हैं । उसी प्रकार, जमीन का पोंछा किया हुआ पानी तथा बर्तनों को धोया हुआ पानी पेड़-पौधों में डाल सकते हैं ।

६. **घर को साफ रखने के लिए किन-किन बातों का ध्यान रखना होता है?**

घर को स्वच्छ रखने के लिए पहले सबके मन में स्वयं 'साफसुथरा' रहने का भाव जगना चाहिए । सबको लगना चाहिए कि 'इसमें सबका हिस्सा है ।' सफाई न

करने वाले को गंदगी करने का कोई अधिकार नहीं है। एक ओर, सफाई के कुछ काम करने के लिए निर्धारित समय तय करना तो दूसरी ओर, कुछ काम तत्काल करने होते हैं । उदा. गिरी हुई सब्जी के छिलके या कागज के टुकड़े निकाल फेंकने का कोई निर्धारित समय नहीं होता । लेकिन अपने स्नान के पहले ही शौचालय, स्नानगृह की स्वच्छर्ता आदि करना उचित होता है । स्वच्छता के पहले उसके लिए आवश्यक सभी उपकरण जोड़ कर, या खरीद कर, समय तय करते हुए करना योग्य रहेगा। इन सभी स्वच्छता कार्यों के साथ ही, अपने शरीर के सभी भाग स्वच्छ रखने चाहिए; और यदि यकायक गंदे हुए, तो उन्हें साफ करा लेने की ओर ध्यान देना चाहिए ।

७. क्या उपयोगित बर्तनों का ढेर लगा कर, उन्हें एक ही बार धोते हो? या उपयोग के पश्चात् तत्काल?

उपयोग के तुरंत पश्चात् सभी बर्तनों को धो डालना एक विवेकशील आचरण है । पानी पीते ही लोटा, नास्ता/भोजन के पश्चात् प्लेटें-थालियाँ आदि तत्काल धो के रखना एक अच्छी आदत होती है । क्योंकि उन्हें भोजन के पश्चात् बहुत समय तक बिना धोए रखा जाए, तो वे बीमारियों का कारण बन सकती हैं ।

परिवर्तित हुयी जीवन शैली तथा दौड़-धूप की जिंदगी में, पूरे दिन के बर्तन एक ही बार धोने की पद्धति अनारोग्यकारी है । इतने सारे बर्तन एक ही बार धोते समय, सहज ही आलस्य भाव जग कर, पूरी शुद्धता की प्रक्रिया कुंठित होती है । पूरे साफ न हुए, अथवा साबुन/क्लीनिंग एजेंटों का अनुशेष बर्तनों में वैसा ही रह जाता है, उनका पुनरुपयोग होने पर, वे अपने खाद्यपदार्थों में घुलमिल जाते हैं । यह घातक है ।

भजन, गपशप, सत्संग

१. क्या आप भजन में भक्तिपूर्वक भागी होते हो ?

भजन हमें भगवान के पास ले जाने वाला एक प्रभावी साधन है। भाव, भक्ति ही इसके लिए प्रमुख होते हैं । भजन का कार्यक्रम जितना सरल होता है, उतना ही भक्तिभाव बढ़ता है । पूर्वनियोजन रहा, तो भजन के समय संभाव्य गड़बड़ी नहीं हो पाती ।

२. क्या आप नये-नये भजनों का संग्रह करते हुए, उनको सीखते हो ? विविध भाषाओं के भी ?

भजन के लिए किसी भाषा का भेद या डर नहीं होता । यहाँ भाव-भक्ति ही प्रमुख होने के कारण, भाषा कोई भी क्यों न हो, वह ईश्वर का स्तवन ही होने से, वह हमारे अंदर परमानंद उत्पन्न करता है। हमारे लिए गम्य सभी भाषाआं के भजन गा सकते हैं । कुछ बार, अर्थ न समझने पर भी उनके राग-ताल-भाव हमें आकर्षित करते हैं ।

३. क्या गपशप में सबको अवसर मिलता है/देतेहो ?

गपशप याने सब मिल कर आनंद से, आराम से करने योग्य बातचीत होती है । गपशप में केवल अकेला ही बोलता गया, तो वह उसका भाषण होता है । कुछ ही लोग बोलते गए, तो वह चर्चा होती है। आबाल-वृद्ध सभीको इसमें भाग लेना चाहिए । गपशप में पूरक रीति से बातें करने का अवसर सबको देना चाहिए । यदि एकाएक वह असंबद्ध, विषयांतरित,

अर्वाच्य, निंदात्मक बन गयी, तो उसे वहाँ अवसर नहीं मिलना चाहिए । इसके विपरीत, गपशप में भाग लेने की पूरी छूट/अवसर सबके लिए उपलब्ध कराना चाहिए ।

४. क्या आप गपशप में किसीका अपमान न हो, इसकी सतर्कता बरतते हो ?

गपशप अपने मन के संतोष व विचार विनिमय के लिए होती है। विचार एक-दूसरे के विरुद्ध हो सकते हैं । वह उनका व्यक्तिगत मत हो सकता है । उसके लिए दूसरों की निंदा या अपमान करना, उनके दोषों को अन्यों के सामने निंदाव्यंजकता से प्रस्तुत करना उचित नहीं है । इसमें विचार-विमर्श से भी विचार-स्वीकृति पर अधिक बल देना चाहिए ।

५. क्या आप इसका ध्यान रखते हो कि आपसी गपशप वितंडवाद न बने ?

गपशप में कोई गंभीर चर्चा नहीं रहनी चाहिए । विवेक से ही समस्या निवारण की चर्चा करनी चाहिए । लेकिन, 'मेरा ही सही है' ऐसा वितंडवाद करने के स्थान सबको बोलने का मुक्त अवसर देना चाहिए । उनके भाव, विचार उनके अपने अभिप्राय होने के कारण, प्रश्न पूछ कर उनका समाधान कर लेना चाहिए; उस संवाद को वाक्युद्ध में परिवर्तित होने नहीं देना चाहिए ।

६. क्या लक्षण हैं जिससे गपशप अच्छी लगती है ?

सर्वप्रथम सबको समान अवसर देना होगा । थोड़ी हँसी-मजाक, दृष्टांत कथन, उदाहरण, स्वानुभव का सार रहना चाहिए । किसीकी भी निंदा, अपमान, दु:ख नहीं होना चाहिए। विषय समझ लेने तथा बौद्धिक विकास को प्रोत्साहन देने में सहयोगी होना चाहिए । मन हल्का होना चाहिए । समय बेकार गँवाया ऐसा कहने की नौबत नहीं आनी चाहिए ।

७. सत्संग याने क्या है ? गपशप व सत्संग में क्या अंतर है ?

गपशप में केवल विचार विनिमय होता है । वह एक-दूसरे को समझने, मन को हल्का करने का एक साधन मात्र है । वह बौद्धिक विकास में सहकारी होता है । किसी निर्धारित चौख़ट में न रह कर, अपने मतों को अभिव्यक्त करने में कोई पाबंदी नहीं रहनी चाहिए । किंतु सत्संग के विषय व उसके क्रम की निश्चित सी चौख़ट होती है। जीवन अनुशासन से युक्त होने में इसकी मदद होती है । सद्विचारों का मनन ही सत्संग होता है । साथ ही, सत्संग में आध्यात्म साधना ही परमोच्च ध्येय होता है ।

८. क्या सत्संग में किसी वरिष्ठ का होना जरूरी है ?

सत्संग में ज्येष्ठ व्यक्ति रहने चाहिए । यह आध्यात्मिक विकास केंद्रित विषय है । अत: कोई ज्येष्ठ रहें, तो अच्छा है । यदि न हों, तो उनका मार्गदर्शन तो होना ही चाहिए।

९. क्या सत्संग में कोई निर्दिष्ट विषय होने चाहिए?

सत्संग में निर्दिष्ट विषय होने चाहिए । वह यदि एकत्रित आने वाले व्यक्ति तथा समय (यथा तीज-त्योहार आदि) के अनुकूल व पूर्वनियोजित रहें, तो अच्छा होता है ।

१०. क्या आत्मीयता, शुद्ध हृदय, परहितमना लोगों के इकट्ठा आने को ही सत्संग कहना सही है ?

हाँ, यही सही है । क्योंकि, ऋग्वेद की 'रात्रिसूक्त' में ऋचा है :

येनकेन प्रकारेण को हि नामन जीवति ।
परेषामुपकारार्थं यो जीवति स जीवति ।।

अर्थात्, किसी उद्देश्य के लिए कोई भी मनुष्य कैसे भी जीवित रहता है । लेकिन, जो केवल परोपकार के लिए ही जीवित रहता है, वही सच्चे अर्थ में जीता है।

अत: किसी सुभाषितकार के अभिप्रायानुसार, ''जिसका धन दान के लिए ही होता है, जिसकी विद्या अच्छे कामों के लिए ही होती है, जिसका चिंतन परब्रह्म समझ लेने के लिए ही चलता है तथा जिसकी बातचीत केवल परोपकार के लिए ही होती है, वही वंदनीय होता है ।'' सत्पुरुषों का एकत्रीकरण या सहवास प्राप्त होना ही सत्संग कहलाता है।

११. क्या सत्संग के प्रारंभ और अंत में श्लोक या मंत्र दोहराने चाहिए?

हर कार्यक्रम का एक उचित आरंभ व समापन होना आवश्यक होता है । तदनुसार, सत्संग की प्रारंभ भी आध्यात्मिक मंजिल से ही होनी चाहिए । इसीलिए, कोई विशिष्ट प्रार्थना, अभ्यर्चनारूपी श्लोक अथवा मंत्र प्रारंभ व आखिर में रहना चाहिए । इसके साथ ही, इस सत्संग के ध्येय रूपी 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्हिताय च' विश्वशांति की अपेक्षाकृत अर्थ वाले शांति मंत्र से उसका समापन होना चाहिए । यथासंभव प्रसाद की व्यवस्था भी रह सकती है ।

अतिथियों का आगमन

१. क्या आपके घर में अतिथि आते रहते हैं?

अपने यहाँ माता-पिता-गुरुजनों को जो स्थान-सम्मान है, वही स्थान-मान अतिथियों का भी है । अत: अपने यहाँ 'अतिथिदेवो भव।' यह मंत्र कहते हैं । इसीलिए हमारे घर में दिए जाने वाले स्नेहपूर्ण व्यवहार के आधार पर अपने घर अतिथि आते रहते हैं ।

२. क्या वे बुलाने पर ही आते हैं? या बिन बुलाए स्वयं ही आते हैं?

प्रारंभ में बुलाने पर आते हैं । नये गाँव जाने पर, पहले परिचय होना चाहिए । तत्पश्चात् घर जाने की परिपाटी शुरू होते ही, क्रम से अतिथियों का आगमन सहज ही होता है । हम अपने घर में कितनी मात्रा में गौरवादर अर्पित करते हैं, अपना प्यार दर्शाते हैं, उतनी मात्रा में आने वालों की संख्या बढ़ती है । किसी सुभाषितकार ने कहा भी है :

एह्यागच्छ समाश्रयासनमिदं कस्मात् चिरात् दृश्यसे
का वार्ता ह्यतिदुर्बलोऽसि कुशलं प्रीतोऽस्मि ते दर्शनात्।
एवं ये समुपागतान् प्रणयिन: प्रह्लादयन्त्यादरात्
तेषां युक्तमशङ्कितेन मनसा हर्म्याणि गन्तुं सदा ।।

जो ''पधारिए', 'बैठिए', 'आपका दर्शन पाए बहुत दिन हुए', 'क्या समाचार है?', 'तबियत कैसी है?', 'स्वास्थ्य कैसा है?', 'आपको देख कर बहुत प्रसन्नता हुई' इन शब्दों से अभ्यागत का हार्दिक स्वागत करते हैं, वहाँ कभी भी, बिना किसी डर या संकोच के जा सकते हैं ।''

३. क्या आपको लगता है कि स्वयं ही आने वालों की संख्या बढ़नी चाहिए? या अब बस हुआ?

अभ्यागतों के आगमन से मन प्रसन्न होना चाहिए । हम अतिथियों को देवतास्वरूपी मानते हैं । इसीलिए उनके आते ही १ साक्षात् देवता ही आए हैं' ऐसा आनंद होना चाहिए। कुछ बार अधिक लोग आने के कारण शारीरिक थकान होने पर भी, अपने मन को कोई थकान नहीं होनी चाहिए। आए सब अतिथि समान रूप से आनंदित हों, ऐसा हमें उनका आदर-सत्कार करना चाहिए । सामान्यत: ऐसा लगने पर भी कि आने वालों की संख्या बढ़नी चाहिए, काम का बोझ अकेले पर पड़ने से कभी-कभार लग सकता है कि अब बस !

४. अधिक अतिथि आने की अपेक्षा हो, तो उसके लिए आप क्या करते हो?

सज्जन लोग मीठे गुड़ जैसे होते हैं । चीटियाँ उसके चारों ओर से घिरी हुयी रहती हैं। सद्गुणसंपन्न, सज्जन लोग उनको खोजते हुए आते ही रहते हैं । उसके लिए लोगों से अपना व्यवहार अच्छा रहना चाहिए । सभी अपने ही है यही भावना होनी चाहिए । 'समूचा विश्व ही मेरा कुटुंब हैं' का भाव आते ही, यह दुर्भावना नहीं पनपती कि 'अमुक मेरा है व तमुक पराया।' अत: सुभाषितकार के इस श्लोक के अनुसार:

अयं निज: परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।

'यह मेरा है और वह पराया, ऐसी दृष्टि छोटे मन वाले रखते हैं। उदार आचरण वालों के लिए तो समूचा भूमंडल ही अपना कुटुंब व सभी लोग अपने सगे ही होते हैं।'

उनके घरस्वरूपी 'अपने घर को आइए' ऐसा बुलाने से, सभी को उनकी आत्मीयता ध्यान में आती है ।

५. क्या आप घर आए लोगों को 'क्यों आए हो?' ऐसा पूछते हो?

'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते' (अर्थात् कोई मूर्ख भी बिना प्रयोजन के कोई कार्य नहीं करता ।) उसी प्रकार, घरों को जांना हो, तो हर एक का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है । ऐसा कुछ नहीं कि वह प्रयोजन भौतिक ही हो । आनंद पाने घर आना होता है। इसीलिए घर आए लोगों को किसी भी परिस्थिति में यह नहीं पूछना चाहिए कि क्यों आए हो? या 'आने का उद्देश्य क्या है?'

६. वह प्रश्न पूछे बिना, क्या उनके घर वालों का कुशल-मंगल पूछते हो?

अभ्यागतों के आगमन पर उनका स्वागत करने का एक क्रम है। आए अभ्यागतों का मृदु वाणी में स्वागत करते हुए, बैठने के लिए आसन देकर पीने के लिए जल देना चाहिए। बाद में ऐसी पूछताछ करनी चाहिए कि क्या घर के सब लोग कुशल हैं? । स्वास्थ्य की पूछताछ को प्राथमिकता देनी चाहिए ।

७. उसी प्रकार क्या उनके स्वास्थ्य, व्यापार-उद्योग के बारे में भी पूछते हो?

ऐसी पूछताछ केवल एक औपचारिकता मात्र न होकर; वह मन:पूर्वक होनी चाहिए। घर वालों के स्वास्थ्य के बारे में पूछ कर, अनंतर उनका स्वास्थ्य, कार्यक्षेत्र, व्यापार,कार्यालय के कार्यकलापों के बारे में पूछना चाहिए । उनका उत्कर्ष सुन कर, ईर्ष्या नहीं होनी चाहिए; उनका दु:ख सुन कर आनंद नहीं होना चाहिए । उनके आनंद पर अपना आनंद व्यक्त करना तथा उनका दु:ख सुन कर उनको सांत्वना देनी चाहिए।

८. आए अतिथियों के साथ, क्या आपके घर के सभी लोग आत्मीयता से व्यवहार करते हैं?

घर आए लोग घर के सभी से मिलना नहीं भी चाहते होंगे । लेकिन, घर आने पर वे घर के सभी के अभ्यागत ही होते हैं । व्यक्ति की पहचान, परिचय हो या नहीं, उनके साथ आत्मीयता से बोलना चाहिए । श्रीराम का 'स्मितपूर्वभाषिते' (स्मित हास्य के साथ स्वयं ही पहले बोलने वाला) स्वभाव था । हमें इसका अभ्यास डालनी चाहिए।

९. आए मेहमानों को क्या घर के सभी लोग कहते हैं कि 'पधारिए','बैठिए', 'सब कुशलमंगल है न?'

अतिथि घर के किसी एक के लिए आए हों तो भी, द्वारपर उनका स्वागत करने वाले को, आया हुआ व्यक्ति कोई भी हो, उनको अंदर बुला कर, अपना नाम, 'मैं अमुक का संबंधी हूँ' ऐसा पहले ही अपना परिचय करा के, उनको अंदर बिठाना चाहिए । अनंतर, उनको विनयपूर्वक ही पूछते हुए, 'आप कौन हो ?' यह जान कर, उनके लोगों, वृत्ति के बारे में पूछते हुए, उनके परिजनों की कुशलता पूछने का सौजन्य दर्शाना चाहिए । इसमें कहीं भी कृत्रिमता न रखते हुए, पूरे हृदय से भाव व्यक्त होने चाहिए। मुझे ज्ञात नहीं ऐसा संबंधितों को सूचित किए बगैर या आए अतिथि को बिना अंदर बुलाए, स्वयं पहले अंदर जाना सही नहीं है ।

१०. क्या आप घर आए व्यक्ति को एक लोटा पानी तो देते हो?

आया हुआ मेहमान, चाहे दूर से या समीप से आया हो, वह थका हुआ अवश्य होता है। अत: आए व्यक्ति का पहले अच्छी वाणी से स्वागत, बाद में पानी लाता हूँ ऐसा कह कर अंदर जाना चाहिए। उनको पानी की जरूरत न होने पर अभ्यागत स्वयं ही वैसा बताते हैं। लेकिन पहले देने की उदारता प्रकट करना हमारा कर्तव्य होता है।

११. उनपर यदि दु:ख-संकट आया हो, तो क्या सहानुभूति से उनकी आपबीती सुनते हो?

कहा गया है कि अनेक समस्याओं के समाधान की प्रमुखता से एक ही दवा होती है : वह है, 'सुहृद्दर्शनमौषधम्' (याने, अपने सन्मित्रों का दर्शन ही औषधि है।) उसी तरह 'पुण्यानि नामग्रहणान्यपि महामुनीनां किं पुनर्दर्शनानि' याने, कुछ लोगों का नाम बताना यदि पुण्यकारक (अर्थात् पाप, चिंता आदि दूर करने वाला) होता है, तो उनके साक्षात् दर्शन कितने पुण्यकारी होंगे? (पाप, चिंता अवश्य दूर होती है) अत: पधारे किसी भी अतिथि का दु:खड़ा सुनते ही तत्काल हमारा हृदय स्पंदित होना चाहिए। उसके लिए यथोचित समाधान प्रकट करते हुए, हमें उनको यह प्रतीत कराने का यत्न करना चाहिए कि हम भी उनके दु:ख में शामिल हैं।

१२. क्या आप उनके सुख-दु:खों में साथ देते हो?

उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमये तथा।
संपत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता।

जैसे उदय व अस्त होते समय, सूर्य समान रूप में रक्तवर्ण का (लाल) होता है, उसी प्रकार सज्जन लोग भी संपन्नता व विपन्नता में एक समान ही रहते हैं।

हमें भी पधारे अतिथि के सुख-दु:खों में सहानुभूति व आत्मीयता दर्शा कर, उसकी समस्याओं के प्रति स्पंदित होकर, उनका समाधान सुझाना होगा।

१३. वे आपके घर से लौट के जाते समय क्या 'फिर आइए' ऐसा कहते हो?

आगंतुक अतिथि हमारे घर से लौट के जाते समय, हमें व उन्हें दोनों को भी संतृप्ति होनी चाहिए। उनको यदि कार्यसाधना की तृप्ति हो, तो हमें अतिथि रूपी भगवान की सेवा करने की तृप्ति होनी चाहिए। इसी लिए आए अतिथि पुन: एक बार अवश्य आवें, समस्या

के साथ नहीं, तो आनंद के साथ हमारे आतिथ्य का स्वीकार करने आए। अत: आए मेहमानों को अवश्य कहना चाहिए : 'फिर आइए ।' यदि आप चाहते हो कि वे आपके घर से संतोष से लौट जाएं, तो हमारे मन में धन्यता का भाव होना चाहिए। 'पुन: आइए' ऐसा कहते समय हमारे अंदर कोई छिपा स्वार्थ नहीं रहना चाहिए । रामायण की यह उक्ति हम सबको अपने जीवंन में उतारनी होगी :

मय्येव जीर्णतां यातु यस्त्वयोपकृत्तं हरे ।
नर: प्रत्युपकारार्थी विपत्तिमभिकाङ्क्षते ।।

यह बात श्रीराम के द्वारा हनुमान को बतायी गयी है । 'हे वानरश्रेष्ठ! तुम्हारा यह उपकार मेरे अंदर ही पिघल जावे, और पुन: उपकार न करने जैसा हो । क्योंकि, उपकार करने की अभिलाषा से अनजाने में ही मनुष्य दूसरों के कष्ट की चाहत रखता है ।'

पालतू प्राणी

१. सामान्यत: घर में पालनेलायक प्राणी कौनसे हैं?

मानव समूहजीवी है। खुद एकाकी ही जीवित रहने के स्थानपर, वह अपने साथ नियमबद्ध, क्रमबद्ध जीवन चलाने वाले प्राणियों के साथ भी अपने जीवन का कुछ समय बिताता है। अत: वह अपने साथ अनेक प्राणियों को पालता है। वैसे प्राणियों में गाय, कुत्ता, बिल्ली, भैंस, गधा, बानर, बकरा, भेड़, सुअर, हाथी आदि प्रमुख हैं। लेकिन इनमें से कुछ ही घर में प्यार-दुलार से और प्रतिदिन की अनुकूलताओं के लिए पाले जाने वाले प्राणी हैं। उनमें गाय, कुत्ता व बिल्ली ही प्रमुख है । बाकी के प्राणी फायदे के लिए पाले जाते हैं। इनके अतिरिक्त मुर्गे, तोते, कबूतर, हंस, बतख, मैना आदि पंछी भी पाले जाते हैं।

२. क्या आप के यहाँ गाय, कुत्ता, बिल्ली हैं?

मनुष्य जीवन के अति समीपस्थ प्राणियों में गाय, कुत्ता व बिल्ली प्रमुख हैं । सामान्यत: ऐसा दिखायी देता है कि इन्हें अधिकतर लोग पालते हैं । ये मनुष्य की अधिक हानि नहीं करते और वे उसे अधिक अनुकूलता प्राप्त करा देने वाले प्राणी हैं। ये मनुष्य की आज्ञा, अपेक्षा व भावनाओं को (अधिकांशत:) समझ लेते हैं । इनका पालन करने में लाभ की अपेक्षा भावना अधिक काम करती है ।

३. कुत्ते-बिल्ली का पालन करते समय बरतने योग्य सावधानियाँ कौनसी हैं?

यदि गायें हो, तो उनके लिए पृथक स्थान बना के रख सकते हैं। उसे गोठान

आदि कहते हैं । उसी प्रकार कुत्तों-बिल्लियों के लिए भी निर्दिष्ट वासस्थान बनाना योग्य रहेगा। ये दोनों प्राणी भी घर में सब कमरों में प्रवेश न कर पाएं, ऐसी रोक होनी चाहिए। क्योंकि, उनके बाल, जूठन, नाखून आदि मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं। उनके खान-पान के बारे में भी सतर्कता बरतनी होगी । उनका खाना आदि हमारे लिए उपयोग में लाए जाने वाले बर्तनों-थालियों आदि में नहीं दिए जाने चाहिए । उनपर प्यार अवश्य हो, परंतु उनको हमारी रसोई, सोने की जगहों/बिस्तरों आदि पर आने की रुकावट रहनी चाहिए ।

४. क्या आपको 'पहली रोटी गाय को व आखिरी रोटी कुत्ते को' यह मुहावरा पता है?

हर पल दूसरों के बारे में ही सोचने का गुण हमारे अंदर आना चाहिए । भोजन करने से पहले गाय को घास-पानी देकर ही स्वयं सच्चिंतन करते हुए भोजन करने के पश्चात्, अंत में कुत्ते को भी खाना देने की परिपाटी होनी चाहिए । स्वयं बढ़ कर, अपने आसपास के प्राणी-पंछियों को भी बढ़ाने-बचाने का मनोभाव हमारा होना चाहिए।

भोजन करने से पहले किसी दूसरे को भोजन देकर स्वयं भोजन करना हिंदू संस्कृति है। अत: हर एक को विदित होना चाहिए कि स्वयं भोजन करने से पहले, किसी भूखे को खाना देकर ही स्वयं आहार सेवन करना एक अच्छी परिपाटी है। इसीलिए भोजन के पहले, संपूर्ण विश्व की मातास्वरूपी गोमाता का स्मरण करने की प्रथा अनेक घरों में चली आयी है। अत: भोजन के पहले, गाय को एक निवाला अन्न, चारा व पानी देने के पश्चात् ही स्वयं भोजन करना चाहिए। जिनके घर में गाय नहीं है, वे रसोई के पहले ही दुगुना मुट्ठीधान्य निकाल के रख कर, बाद में उसे उचित स्थान पर पहुँचा सकते हैं। भोजन के बाद, कुछ घरों में निम्नांकित श्लोक पठण करने की पद्धति है :

रौरवेऽपुण्यनिलये पद्मार्बुदनिवासिनाम् ।
आर्तिनाम् उदकं दत्तं अक्षय्यमुपतिष्ठतु ।।

अर्थात्, 'पानी उस मात्रा तक अक्षय हो जाए, ताकि रौरव नरक में, पद्म-अर्बुद के अंतर पर वास करने वाले लोगों को भी पानी उपलब्ध हो।'

जिन लोगों की भावना होती है कि स्थान-स्थान के नरकवासियों को भी पानी प्राप्त हो, उनको अपने घर के चहुंओर रहने वाले छोटे-छोटे प्राणियों की भी देखभाल करना अपना कर्तव्य लगने लगता है । इसलिए सामान्यत: घर में रहने वाले कुत्ते के

बारे में यह श्लोक कहता है –

बह्वाशी अल्पसन्तुष्टः सुनिद्रः शीघ्रचेतसः ।
प्रभुभक्तिः च शौर्यं च मन्तव्याः षट् शुनो गुणाः ।।

'बहुत अपेक्षा होते हुए भी, थोड़े में ही संतुष्ट होने वाला, निद्रा से आवृत्त होने पर भी, तत्काल चपलता से उठ के बैठने वाला, स्वामी के प्रति निष्ठा व शौर्य '– कुत्ते के इन छः गुणों को जान लेना चाहिए । इन आदर्शों का पालन करने वाले कुत्ते को भी थोड़ासा अन्न, चाहे वह हमने खाकर छोड़ा हुआ क्यों न हो, देना एक अच्छी आदत है ।

५. क्या यह सतर्कता बरतते हो जिससे कोई भी पालतू प्राणी रसोई घर व भोजन कक्ष में न आ पाएं?

हर प्राणी में उसके अपने ही कुछ गुण होते हैं । सभी प्राणियों में उसका अपना ही रूप, गंध, शारीरिक विशेषताएँ होती हैं । उसी प्रकार, उनसे दूसरे प्राणियों को कष्ट भी होता है । उनकी गंध, बाल, उनके शरीर से गिरने वाला कूड़ा, धूल, कृमिकीट हमारे आहार को विषाक्त बना सकते हैं । इसीलिए हमें इस बात की सावधानी बरतनी होगी कि हमारे रसोईघर, भोजन कक्ष या शयनगृह में इन प्राणियों को आने का अवसर नहीं होना चाहिए ।

६. क्या आप इन प्राणियों द्वारा बच्चों को कोई कष्ट न पहुँचें इसकी सावधानी बरतते हो?

मूक प्राणियों से खिलवाड़/हिंसा करना कुछ लोगों को खुशी देता है । होशियारी आने तक प्राणियों के प्रति हिंसात्मक गुण हर किसी में होता ही है । अतः प्राणी संग्रहालय आदि स्थानों में 'प्राणीहिंसा निषिद्ध है' के फलक लगाए जाते हैं । छोटे बच्चों को प्राणिहिंसा करने की स्वाभाविक खुशी देने वाला काम होता है । बच्चों को मालूम नहीं होता कि उनके इस काम के कारण प्राणियों के प्रति हिंसा होती है । बाँध के रखे कुत्ते, गाय आदि पालतू प्राणियों को पत्थर फेंक के मारना, चिढ़ाना, खेल–हास परिहास आनंद आदि करना बच्चों का एक दुर्गुण ही होता है। इसीलिए बच्चों को समझा–बुझा कर, 'उन्हें भी हमारे जैसा ही पीड़ा होती है, गुस्सा आता है, कष्ट होती है' ऐसा उनके मनों पर बिंबित करते हुए, उनको उस आदत से छुटकारा दिलाना चाहिए ।

७. क्या आपके घर में चिड़ियाँ हैं?

भूरे या काले रंग की चिड़ियाँ पहले नगर प्रदेशों में दिखायी देने वाले पक्षी थे। वे हर दिन सुबह शीघ्र उठ के अपनी कलरव ध्वनि से सबका रंजन करने वाले पंक्षी थें । ये घरों में भी बसते थे । ऐसे छोटे प्रजाति के पंछी आजकल नगर प्रदेशों से दूर होते जा रहे हैं । इसका प्रमुख कारण नगर प्रदेशों में बढ़ता हुआ प्रदूषण ही है । इससे हमें इस बात का पता चलता है कि अपने अति स्वार्थप्रवणता से स्वयं मनुष्य कितना मारक/घातक प्राणी बन गया है? खपरैलों वाले घरों के छतों में चिड़ियाँ अपने घोंसलें बनाती थीं । लेकिन, अब सीमेंट के छत वाले घरों में चिड़ियों को स्थान ही नहीं है, ऐसी स्थिति आ धमकी है । तब भात, चावल आदि डालने से चिड़ियों को भोजन मिलता था । अब वह भी लुप्तसा हो गया है ।

फ्रिज का उपयोग

१. क्या फ्रिज आपके घर की अनिवार्यता है? या प्रतिष्ठा का विषय?

फ्रिज किसी समय में संपन्नता का संकेत था । पर आज अनेक लोगों के घर के अनिवार्य अंग के रूप में वह झलक रहा है । प्रारंभ में इसे बासी पेटिका कहा जाता था। इसका उपयोग उसकी आवश्यकता तक ही सीमित रहनी चाहिए । क्योंकि, हमें किसी भी वस्तु पर अवलंबित नहीं रहना है । एक सुभाषित में ऐसा कहा गया है–

आशा नाम मनुष्याणां काचिदाश्चर्यशृङ्खला ।
यया बद्धा प्रधावन्ति मुक्तास्तिष्ठन्ति पङ्गुवत् ।।

'आशा–आकांक्षा याने मनुष्य का एक विचित्रसा बंधन है । इससे आबद्ध व्यक्ति सदैव दौड़ते ही रहता है और उससे छुटकारा प्राप्त व्यक्ति पंगुवत् खड़ा होता है ।'

आज अनेक वस्तुएँ हमारे लिए उतनी अनिवार्य नहीं हैं । कुछ वस्तुएँ वर्ष में कुछ ही दिनों के लिए उपयोगी होती हैं । और कुछ वस्तुएँ दूसरों को दिखाने के लिए आडंबर की वस्तुएँ बन् जाती हैं । इसीलिए यदि फ्रिज़ जैसी वस्तुएँ उपयोग के लिए अर्ह व अनिवार्य हुयी हैं, तभी उनको अपने घर में स्थान देना चाहिए ।

२. फ्रिज से अधिक उपयोग कैसे पा सकते हैं?

'फ्रिज के उपयोग है ही नहीं' यह तर्क सही नहीं । उसका दुरुपयोग, व्यर्थ का उपयोग गलत है । कुछ लोगों का कहना है कि फ्रिज़ गर्मी के दिनों में अधिक उपयुक्त हो सकता है । परंतु उपयोग करने की [illegible], [illegible] तथा क्रम की यदि जानकारी हो,

तभी यह पूरे वर्षभर उपयोगी बन सकता है । कुछ पदार्थ बहुत शीघ्र बिगड जाते हैं । उन पदार्थों के सत्व को वैसे ही बचा के रखने में फ्रिज सहकारी होता है । फ्रिज़ का अति ठंडा पानी, बर्फ का सेवन स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं है । लेकिन छाछ, दूध जैसे पदार्थ कुछ समय फ्रिज़ के अंदर रख कर, ठंडेसे रहते ही वे हितकर लगते हैं । एकदम ठंडे पदार्थ सेवन करने के स्थान पर थोड़ेसे ठंडे कर के सेवन करना अच्छा होता है । बार-बार न लाए जाने वाले व बहुत शीघ्र खराब होने वाले खोपरे जैसे पदार्थ, बहुत शीघ्र सूख जाने वाली सब्जी, तरकारी, फूल आदि, गर्मी में दूध का फटना तथा छाछ का बहुत शीघ्र खट्टा होना रोकने व निकाला हुआ मक्खन विना पिघले वैसे ही रखने के लिए इसका उपयोग करना गलत नहीं होगा। प्रवास पर जाते समय आवश्यक ऐसे अचार, चटनियाँ, मेथीकूट आदि बनी बनायी वस्तुओं की रक्षा करने में यह सहकारी है ।

३. फ्रिज में कौनसे सामान नहीं रखने चाहिए?

केवल ऊपर बताया गया है, इसी लिए ही, सभी वस्तुओं का ढेर उसमें नहीं लगाना चाहिए । आजकल एक बुरी परिपाटी स्वभाव सा बनता जा रही है । अर्थात् पकायी हुयी रसोई को अनेक दिनों तक फ्रिज़ में रखते हुए, हफ्तों या महीनों तक खाते रहने की पद्धति चल पड़ी है। यह ठीक नहीं है । पके या तले पदार्थ फ्रिज़ में नहीं रखने चाहिए । इतना ही नहीं, कुछ पदार्थ, जैसे पके केले, काकड़ी आदि जितना समय फ्रिज में रखते हो, उतनी शीघ्र बिगड़ जाते हैं । साथ ही, बहुत गंधयुक्त वस्तुएँ फ्रिज में खुली नहीं रखनी चाहिए । आधे-अधूरे खाये पदार्थ कुछ समय उसमें रखने के बाद में खाने की प्रथा भी चली है । यह अनुचित है ।

४. क्या आपको फ्रिज साफ करने की विधा पता है?

जैसा सभी वस्तुओं में स्वच्छता आवश्यक है, वैसे ही फ्रिज़ में भी सफाई अतीव आवश्यक है । इसीलिए उसे हर पखवाड़े में एक बार तो साफ करना चाहिए । सभी वस्तुएँ बाहर निकाल कर, उनके ऊपर की धूल, पानी की तराई आदि को कपड़े से पोंछना चाहिए । अनंतर फ्रिज़ के अंदर पड़े कणों को गीले कपड़े से पोंछ के, बाहर निकालना चाहिए । पानी से समूचे फ्रिज को शुद्ध करने के बाद, उसे सूखे कपड़े से पुनः पोंछना चाहिए । फ्रिज़ का अंग रहे फ्रिज़र (Freezer) को भी साफ करते हुए, १०-१५ मिनट तक छोड़ना चाहिए । उसके बाद सभी वस्तुओं को यथास्थान रखते

हुए, उसे सम्हालना चाहिए । ठंडी थाली (Chill Tray) के अंदर तथा निचले जलपात्र में जमा हुआ पानी समय-समय पर निकालते रहना चाहिए । अन्यथा, उसमें भी अनेक प्रकार के कीटाणु भर सकते हैं, जो घर में स्वास्थ्य खराब कर सकते हैं ।

५. फ्रिज से होने वाली प्रतिकूलताएँ क्या हैं?

इस 'बासी पेटिका' के कारण ताजा आहार खाना, ताजे फल-सब्जी का उपयोग कम हो गया है । केवल बहुत दिन रख सकते हैं, इसी एक मात्र कारण से वस्तुओं को दीर्घ काल तक संग्रहित कर रखने की परिपाटी प्रारंभ हो गयी है । फ्रिज के कारण, लोग और भी अधिक आलसी बनते जा रहे हैं । स्वास्थ्य के लिए अनुकूल ऐसा मटके का पानी अदृश्य होकर, आरोग्य के लिए मारक ऐसा यह फ्रिज़ का ठंडा पानी पीने की चलन बढ़ रही है । फ्रिज़ की सबसे बड़ी समस्या याने, यह व्यर्थ होने के बाद इसका जो कूड़ा-कचड़ा बनता है, उससे परिसर की अत्यधिक हानि हो रही है । यह विद्युत से चलने वाला उपकरण होने से दिन के चौबीसों घंटे इसे बिजली की आपूर्ति करनी पड़ती है । हर आहार सामग्री को, उसकी सत्व रक्षा करने की एक निश्चितसी समयावधि होती है । उसे उस वस्तु का Shelf life कहा जाता है । लेकिन फ्रिज के पदार्थ बाहर से सत्वयुक्त दिखायी दिएं, तो भी वे अपना मूल सत्त्व खो चुके होते हैं । ऐसे आहार पदार्थ सेवन करना स्वास्थ्य के लिए कभी भी पूरक, पोषक नहीं होता। सबसे बड़ी हानि याने खान-पान में कुछ बचा कर, पीडित-भिखारी लोगों को दान करना भूल जाते हैं ।

चप्पल-जूते

१. क्या आपके घर में चप्पल-जूते रखने का स्थान है? क्या उसका एक क्रम है?

घर में हर एक वस्तु रखने का एक पृथक स्थान होती है; होनी चाहिए । विशेष कर, देवता-रसोई-पुस्तकों-पैसों-गहनों आदि के लिए अलग-अलग स्थान होता है; होना चाहिए । सफाई का साधन रहा झड़ू आदि और धूल-कचरा-मिट्टी पर चल के आने वाली चप्पल-जूते आदि घर के बाहर किसी कोने में रखना उचित होगा ।

२. क्या घर के अंदर चप्पल-जूतों का उपयोग न हो, ऐसा कोई नियम है?

घर के अंदर चप्पल-जूतों का उपयोग उचित नहीं । चप्पल-जूते पहन कर घर के सभी कमरों में चलने से घर में उसके नीचे की धूल, कचरा सबदूर फैल कर, अस्वास्थ्य का कारण बनता है । ठंडे प्रदेशों में लोग घरों में पायमोजों का इस्तेमाल करते हैं । कुछ लोग घर के अंदर लकड़ी से बने खड़ाऊँ भी उपयोग में लाते हैं । हमारी दृष्टि में घर एक मंदिर है । इसलिए घर की पवित्रता को कायम रखने की जरूरत है ।

३. चप्पल-जूतों का उपयोग कहाँ अनिवार्य है? कहाँ नहीं करना चाहिए?

रास्तों पर चलते समय, अरण्य-जंगलों में संचार करते समय पैरों को काँटें-कंकर-पत्थर, कचरा, गंदगी चुभने/चिपकने की संभावना होती है, वहाँ चप्पल-जूतों का उपयोग करना चाहिए । रसोई, भोजनगृह, देवगृह, कुलगृहस्थली, विवाह

आदि धार्मिक समारोहों में व जहाँ पवित्रता का पालन करना चाहिए, ऐसे दूसरे स्थलों पर चप्पल-जूतों का उपयोग नहीं करना चाहिए । यह अनुभव में आ रहा है कि बिना जूतों के, मिट्टी का स्पर्श करते हुए चलना ही आज अनेक रोगों का कारण बन गया है ।

४. क्या आपके घर के सबको पता है कि यज्ञस्थली व धार्मिक समारोह में चप्पल-जूतों का उपयोग नहीं करना चाहिए?

पवित्र देवपूजा मंडपस्थान में चप्पल-जूते नहीं पहनने चाहिए । यह बच्चों को बचपन से ही समझा कर, सिखाना होगा कि मंदिर आदि को जाने पर चप्पल-जूते निकाल कर, पैर धोकर अंदर जाना चाहिए ।

५. आपके घर में एक के पास कितने जूतेचप्पल हैं?

चप्पल-जूते कोई आडंबर की वस्तु नहीं है । वे देह-पैरों की रक्षा का साधन है । अत: उन्हें केवल पादरक्षा हेतु पहनना है । रंग-बिरंगे, विविध प्रकार के चप्पल-जूतों के लिए बहुतसा पैसा खर्चा करते हुए, बीसियों चप्पल-जूते संग्रहित करना उचित नहीं है । कारखाना, ऑफिस आदि में काम करते समय वहाँ पर जरूरी ऐसे बूट आदि का उपयोग कर सकते हैं । जो भी हो, आवश्यकता के अनुसार ही रहना चाहिए ।

६. क्या उनको ढंग से सम्हाल कर रखते हो? या ज्यादा हैं, इसलिए उदासीन रहते हो?

चप्पल-जूते केवल पैरों के लिए ही होते हैं, ऐसा सोचना ठीक नहीं है। पैरों के मान कर उनका तिरस्कार करना सही नहीं होगा। आवश्यकता से ज्यादा संग्रहित होने पर, सहज ही उदासीनता बढ़ती है । इसीलिए जितनी आवश्यकता है, उतनी मात्रा में रखना अच्छा होगा। अन्यथा, उनकी उचित रीति से सुरक्षा करते हुए, समयोचित ढंग से उपयोग करना चाहिए।

७. क्या चप्पल-जूतों की समय-समय पर पालिश करते हो?

वस्तुओं का अधिक समय तक उपयोग होने के लिए उनका रखरखाव मुख्य होता है । इस दिशा में जूते-चप्पलों का ध्यान रखने में पालिश महत्त्व की होती है। क्योंकि, चप्पल सामान्यत: चमड़े से बनी होती है । सूखने से उनमें दरारें पड़ती हैं । अत: उनको पालिश करने से वह अधिक दिन चलती है; अच्छी भी दिखती है । इसीलिए नियम से उनको साफ करना चाहिए । पहले कपड़े से उनपर जमीं धूल पोंछ के निकाल कर, बाद में पालिश लगा के थोड़ा समय छोड़ना चाहिए । अनंतर उसके निर्दिष्ट ब्रश, कपड़े आदि से घिस कर उसे चमकाना चाहिए ।

व्यवहार कुशलता

१. आपके घर में अत्यावश्यक वस्तुएँ खरीद कर लाने का काम किसका है?

सामान्यत: आजकल नगरों में पुरुषों को काम पर जाकर लौटने में बहुत देर होती है । अत: घर में रहने वाली महिलाओं को ही सामान आदि लाने का काम करना पड़ता है । थोड़े बड़े हुए, तो बच्चे भी इसमें सहायता कर सकते हैं । आवश्यक सामान दोनों को मिल कर लाना होगा।

२. क्या उनके लिए यह काम एक कला बनी है?

महिलाएँ घर का सामान लाते समय, उसे अत्यंत समुचित रीति से क्रय करने में समर्थ होती हैं । वह गृहिणी को ईश्वरप्रदत्त वरदान ही है। 'गृहिणी गृहमुच्यते' यह उक्ति ऐसी कुशल नारियों के कारण ही निर्मित हुई है ।

३. 'कम दाम अधिक चलन' कितना उचित है? क्या आप इसे मानते हो?

दाम चाहे कम हो या अधिक, उनका उपयोग करने के ढंग से उनकी उपयोगिता की कालावधि निर्धारित होती है । कभी-कभी अति कम दाम वाली वस्तुएँ भी अधिक दिन चलती हैं । तो कभी-कभार अधिक दाम वाली वस्तुएँ भी जल्दी बिगड़ जाती हैं । 'अधिक दाम याने अधिक उपयोगी और कम दाम याने बिगड जाती' यह धारणा सर्वथा अनुचित है । अधिक प्रचलन जहाँ है, वहाँ से जीवनरक्षक दवाइयाँ, विद्युत् उपकरण आदि लाना योग्य रहेगा ।

४. **क्या आप वस्तुएँ चुन के लाते हो? या जो मिली सो, या दी हुई कोई भी?**

कुछ व्यापारी अपने यहाँ की वस्तुएँ यथासंभव अधिक मूल्य पर बेचने तथा पुरानी वस्तुएँ मक्खनसी बातकर ग्राहक के मत्थे मढ़ने को तैयार रहते हैं । ऐसे समय, उनकी बातों के भुलावे में न आकर, ग्राहकों को अपने विवेक, चातुर्य से वस्तुओं का चयन करना चाहिए । पुरानी सामग्री के बारे में दिखाए जाने वाले आमिषों की बलि न चढ़ते हुए, कम मूल्य से आकर्षित न होकर, वस्तु की योग्यता पहचान कर ही उसे क्रयकरना चाहिए ।

५. **किस आधार पर निर्धारित करते हो कि आपको/आपके घर में कौनसी वस्तु चाहिए?कौनसी नहीं?**

घर में सामान लाते समय उनकी उपयुक्तता, आवश्यकता आदि बातों के बारे में हर एक को सोचना चाहिए । अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह करते हुए, उन्हें घर की अनावश्यक वस्तुओं की सूची में शामिल नहीं करना चाहिए । घर में उपयोगित वस्तु सुस्थिति में होने पर भी वह पुरानी हो गई है, ऐसा मान कर; किसी कोने में फेंकते हुए, नया-नया सामान लाते रहना उचित नहीं । कुछ अपरिहार्य परिस्थितियों को छोड़ कर, क्षणिक या अल्पकालिक अनुकूलता के लिए, आगे बहुत दिनों तक अनुपयुक्त रहने वाली वस्तुओं को लाना योग्य नहीं । अर्थात्, सभी वस्तुएँ हमें/अपने घर के लिए आवश्यक मानते हुए, उनके लिए आतुर बनना भी उचित नहीं। सभी बातों की विवेकपूर्ण सोच करते हुए, अपनी आवश्यकता-अनावश्यकताओं का निर्णय कर, तदनुसार वस्तुओं का क्रयकरनी चाहिए ।

६. **क्या ऐसी कोई बात है कि आपके द्वारा लायी वस्तु अन्त में अनावश्यक लगी/बन गयी?**

सभी घरों में यह एक बृहत् समस्या ही बनी है । नया मोडेल है इस बहाने, या दूसरों के घर में है, लेकिन हमारे घर में नहीं इस न्यून भावना के कारण अनावश्यक होने पर भी, कुछ वस्तुएँ हम क्रयकरते हैं। बाद में उनका उपयोग हमें पर्याप्त न होने पर, यह भावना आ जाती है कि वे हमारे लिए नहीं चाहिए थीं ।

उपायं चिन्तयेत् प्राज्ञः तथापायं च चिन्तयेत् ।।

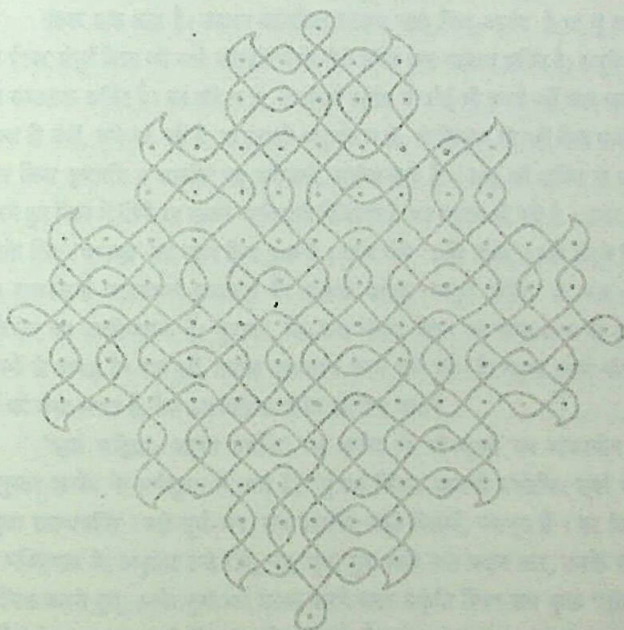
ज्ञानी लोग जिस प्रकार हर वस्तु की उपयुक्तता के बारे में सोचते हैं, वैसे ही

उससे क्या हानि हो सकते हैं, यह भी सोचा करते हैं ।' इस उक्ति के अनुसार, किसी भी वस्तु का उपयोग समझ लेने के साथ-साथ उससे संभाव्य अपाय क्या हो सकते हैं, यह भी जानना आवश्यक है । एकाध वस्तु का उपयोग अनिवार्य लगने तक, वह वस्तु क्रय नही करना चाहिए । यह कहने का प्रसंग ही न आवे कि एक बार क्रय की हुई वस्तु जाया हो गयी; इसकी सावधानी भी बरतनी होगी । उस वस्तु के उपयोग पूर्णरूप से जान लेने चाहिए ।

दुकान से एक बार क्रय की गयी वस्तु, चाहे कितनी भी अच्छी स्थिति में होने पर भी, क्रय की के दूसरे क्षण से ही उस पर 'सेकेंड हैंड' का लेबिल चिपक जाता है । इससे उसका मूल्य सहज ही कम होती है। उसमें भी, विशेषत: विद्युत् एवं विद्युत्तकी के उपकरण, अति महँगी वस्तुएँ, कुछ बर्तन, प्लास्टिक के खिलौने, जूते आदि सब मूल्यहीन ही बन जाती हैं । बाद में उनको सब अनावश्यक वस्तुओं के भंडार या कूड़ेदान में फेंकना पड़ता है । ऐसा न हो, इसका ध्यान रखना होगा । अनावश्यक वस्तुओं के लिए एक पृथक सा कमरा बनाने की स्थिति न आवे, ऐसी सावधानी बरतनी चाहिए ।

अध्याय ३

समाज, समष्टि



ईश्वर

१. ईश्वर का नाम क्या है?

ईश्वर एक श्रद्धा है। उसका वास्तविक स्वरूप 'सत्-चित्-आनंद' है या यूं कहिए कि ईश्वर संपूर्ण विश्व की सभी गतिविधियों के पीछे स्थित एक महोन्नत शक्ति है; समूचे सृष्टि की संचालक शक्ति है। वह यदि न हो, तो संपूर्ण ब्रह्मांड में कोई भी कार्य नहीं चल पाएगा। उतना ही क्यों, यदि वह नहीं है, या उसकी अनुमति न हो, तो तिनका भी नहीं हिल सकता। 'तेन विना तृणमपि न चलति' वह सर्वव्यापी, सर्वांतरयामी है । अणु की शक्ति से प्रारंभ करते हुए विश्व में छिपी रह सकने वाली सभी विचित्रताओं का कारण भी वही है । हमारे यहाँ उसके लिए 'परब्रह्म' का स्थान दिया हुआ है । परम याने 'अति उन्नत'। वही समूचे विश्व का सृजनकर्ता-पालनकर्ता-लयकर्ता है। सकल चराचर वस्तुएँ उसीके ही अंश हैं । इसीलिए वह जगन्नियामक है। भूमंडल, ग्रह-तारा मंडल, विश्व का कण-कण भी उसके नियमों से आबद्ध है। पता नहीं, उसका नामकरण करने वाले कौन हैं। मनुष्य अपने परिशुद्ध मन को जैसा लगता है, वैसा उस विशिष्ठ शक्ति को देख पाता है ।

'एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति' यह ऋग्वेद के सौरसूक्त का वाक्प्रयोग है। तद्नुसार ऋग्वेद के घर्मसूक्त में कहा है, 'सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिः एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति'। वही सूर्य-चंद्र, सब ग्रहगोल, सभी दिशाएँ, पंचभूत हैं । हर किसी के भक्तिभाव के अनुसार उन्हें रवि, चंद्र, बुध, गुरु आदि नाम प्रदान कर, उनके स्थान निश्चित करते हुए, उनके गुणों का पालन करने वाला प्रकृति स्थित सब कुछ ''ईश्वर ही है'' ऐसा कहना, अपनी हिंदू संस्कृति की रीति है ।

वह अनादि-अनंत है; अव्यक्त होते हुए भी सुव्यवत है । वही सत्य, वही नित्य है। उसका दूसरा सुनिश्चित नाम नहीं है । जहाँ भक्त बुलाता है वहाँ, पुकारे नाम को स्वीकारते हुए आने वाला ईश्वर भक्तों का दास है । 'ईश्वर एक, नाम अनेक' यह अपने चिंतन की अमूल्य देन है।

२. ईश्वर कहाँ है?

इसका प्रतिप्रश्न है, 'ईश्वर कहाँ नहीं है?' क्योंकि, ईश्वर सब दूर, सब ओर है । विष्णुसहस्रनाम में उसे हम अणुः, बृहत्, कृशः, स्थूलः, गुणभृत्, निर्गुणः आदि नामों से पुकारते हैं । साथ ही वह विश्व के हर कोने में, प्रकृति की हर रचना में है । वह ऐसा होने के कारण ही, यह विश्व चल रहा है । इस परमात्मा के कोटि-कोटि भागों में से केवल एक भाग मात्र अपनी अंतरंग की आत्मा है । 'कस्मै देवाय हविषा विधेम?' (किस देवता को हम हविष्य अर्पित करें?) इस मंत्र से युक्त ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ सूत्र में ईश्वर के अस्तित्व तथा उसकी व्यापकता को हम देख सकते हैं। भारत के सभी धार्मिक व ज्ञानदायक ग्रंथों में इसके बारे में विषद रूप में चर्चा करते हुए चिंतन किया गया है । इसीलिए हम सब एक ही उत्तर देते हैं : 'ईश्वर सब ओर है ।' क्योंकि, हमारी आस्था है कि विश्व की सभी चराचर वस्तुओं में भी ईश्वर का अस्तित्व है ।

लेकिन पाश्चात्यों के अनुसार, वह 'परलोक में' है, जिसे हमने कभी माना नहीं। ईश्वर को स्थल की सीमा नहीं है, रूप की तो है ही नहीं । अवश्यक होने पर वह पानी में भी उतरता है । खंभे से भी प्रकट होता है । अत: यह कह नहीं पाएंगे कि उसका ही ऐसा कोई विशिष्ठ स्थान है; बस्ती है । लेकिन सामान्य लोगों की समझ में आवे, इसलिए शंकर का आवास 'कैलाश' में है, विष्णु का 'वैकुंठ', देवताओं का देवलोक आदि कहा जाता है । साथ ही, पुण्य कमाने पर उसे स्वर्ग में स्थान मिलता है व पाप किया तो नरक जाना पड़ता है ऐसा कह कर लोगों को समझाने के प्रयास करते हुए, उनको धर्ममार्ग पर चलने की प्रेरणा दी गयी है ।

३. ईश्वर को कौनसी भाषा ज्ञात है?

उसको भाषा की कोई परिधि नहीं है । शुद्ध अंत:करण की सद्भावना व निर्मल भक्ति ही उसे सहज अर्थ होने वाली भाषा है । फिर भी विश्व की अति प्राचीन, वैज्ञानिक, परिशुद्ध भाषा 'संस्कृत' को उस की परिशुद्धता के कारण, देवभाषा कहा जाता है। क्योंकि, ईश्वर सब जीवों में, सब वस्तुओं में परिशुद्धता की ही अपेक्षा करता है । फिर

भी, ऐसा समझना योग्य होगा कि उसे 'भाषा' नामक कोई सीमा नहीं है। पशु-पक्षियों को उनकी अपनी ही भाषा होती है । उसी प्रकार, पेड़-पौधें भी अपनी ही विधा से आपस में स्पंदित होते हैं । याने जहाँ कहीं चेतना है, वहाँ सब ओर उनकी अंतस्त भावनाओं को बाँट लेने के लिए संवहन का एक माध्यम होता ही है । उन सभी संवहनों की संवेदनाएँ ईश्वर को होती रहती हैं । क्या सृष्टिकर्ता ईश्वर को अपने बच्चों की भावनाएँ नहीं समझती होगी? अत: सभी भाषाएँ ईश्वर को समझती हैं ।

४. ईश्वर कब जागृत रहता है?

हम हिंदू परम आप्त ऐसे 'परमात्मा' की गणना मनुष्य की भाँति ही करते हैं । तद्नुसार सहज ही सभी को समझ में आवे इस दृष्टि से उसपर विविध भाषा आदि सबका अध्यारोप करते हैं । लेकिन, यह जान कर कि उसको आकार नहीं है, अपनी कल्पना-भक्ति-श्रद्धा के अनुसार उसे मनुष्य जैसा रूप प्रदान कर, उसकी अतीन्द्रिय शक्तियाँ/महिमा आदि का गुणगान/स्तवन करते हुए, उसके बारे में वह 'सर्वांतरयामी, सर्वांतरवासी, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान' आदि सब कुछ कहते हैं । अत: हम उसे अर्घ्य-पाद्य-आचमन-स्नान-नैवेद्य (भोग)-आरती आदि अर्पित करते हैं । संस्कारभूयिष्ट लोग तो उस नियंता को शयनोत्सव, विवाहेत्सव आदि करते हुए आनंदित होते हैं । रथोत्सव आदि अनेक धार्मिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर उस ईश्वर के बारे में स्थित लोगों की भावनाओं को फूलों जैसा खिलाते हैं । इस तरह, ईश्वर को अनेक तत्वों में देखते हुए, आवाहन-पूजन करते हुए, मन की शांति-कृतार्थता आदि प्राप्त करते हैं । अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार प्रार्थना भी करते हैं कि उस परम-आदर्श की भाँति अपना जीवन भी रूपित हो । लेकिन, ईश्वर को दिन व रात की कोई चिन्ता नहीं होती । निद्रा व आहार की जरूरत भी नहीं होती। दासों (भक्तों) द्वारा दोहराए जाने वाली शिवस्तुति में, शिव का गुणगान करने की विधा ही कुछ और है । वे लिंग को ही अपना अंतरंग मान कर स्तवन करते हुए कहते हैं -

क्या मंदाकिनीधारी को गंगाजल का मज्जन चाहिए;
क्या चन्द्रमौलि को गन्ध-फूल-अक्षत चाहिए ।
क्या आज रविनेत्र को कर्पूर की आरती उतारोगे;
क्या कंदर्पजीत को निधि की अपेक्षा है ।।
क्या घनविद्यातुर को मंत्रकलाप सुनाओगे;
क्या धनपति के सखा को हाथ से दक्षिणा दोगे ।

क्या रजतपर्वतवासी को फणि के गहने पहनाओगे;
क्या मनोनियामक को मेरा अनुरोध जरूरी है ।।
क्या वैराग्यनिधि को यह विषयप्रलाप चाहिए;
क्या गौरीरमण को यह स्तोत्र चाहिए ।
रामलिंग ही मेरा अंतरंग है ।।

आदि । इतना होने पर भी, हम ईश्वर को सब प्रकार के उपचार निवेदित करते हैं; संपन्न करते हैं ।

५. ईश्वर का काम क्या है?

हम सब उस ईश्वर की संतान हैं । विश्व के सकल चराचर उसीसे ही उत्पन्न हुए हैं, उसके कारण ही वे स्थित हुए हैं तथा उसके कारण ही वे सब लयावस्था को प्राप्त होते हैं । उसका महत्व का काम याने सृष्टि, स्थिति व लय इनका परिपालन करना है । लेकिन, ईश्वर का प्रमुख उद्देश्य है – इस जगत् में धर्म की स्थापना करना तथा धर्म के द्वारा मोक्ष प्राप्ति अनुकूल करा देना । इसीलिए ही कृष्ण ने भगवद्गीता में स्पष्ट शब्दों में बताया है –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।

'धर्म जब-जब क्षीण होता है व अधर्म का बोलबाला होता है, तब मैं अवतरित होता हूँ, सबको साकार रूप में दिखायी देता हूँ ।'

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।।

'मैं साधु-सत्पुरुष व सज्जनों का उद्धार/रक्षा करने, दुष्टों का संहार करते हुए धर्म की स्थापना करने हेतु हर युग में अवतरित होता हूँ।' वह मनुष्यों को अनेक प्रकार के कष्ट-दु:ख आदि देकर, निरंतर उसकी परीक्षा लेते हुए, उसे इस जीवन की अस्थिरता का परिचय करा के, इस जीवन पर जिगुप्सा आवे ऐसा करते हुए, जैसे कोई माता अपने बच्चे की अच्छी धुनाई करने के बाद लाड-प्यार जताती है; अपनी ओर खींच लेती है; वैसे उसे जीवन के सुख-दु:ख दिखा कर अपने में ही समाहित करा लेना ही उसका काम है ।

भगवद्गीता में बताया है कि जीवों को जीवन के हर पड़ाव का परिचय कराते

हुए, उनको संस्कार प्रदान करना ही अपना कार्य है । तथा ये सब कुछ अधिकार वाणी से नहीं करता, लेकिन –

न देवाः दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत् ।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति सद्बुद्ध्या योजयन्ति तम् ।।

'ईश्वर चरवाहों की तरह हाथ में डंडा पकड़ कर रक्षा करने के स्थानपर सद्बुद्धि की योजना करता है ।' यही ईश्वर का काम है।

६. ईश्वर का साक्षात्कार कैसे करना चाहिए?

यह ईश्वर की सृष्टि है । उसे सब देखते हैं । लेकिन, इतना देखने मात्र से यह नहीं कह सकते कि उन्होंने ईश्वर को देखा है । क्योंकि, यहाँ जो कुछ है, वह सब उसका एक अंश मात्र है । सागर में पानी होता है । वह पानी एक चम्मच जितना हुआ तो क्या; या और अधिक प्रमाण में? तब भी वह जल ही होता है; अर्थात् उन दोनों का गुण एक ही होता है । तदनुसार, जगत् में या समूचे विश्व में, जो कुछ देख पाते हैं, वह उसका एक अंश मात्र है । कागज़ के किसी बड़े कारखाने से निकले १० लक्ष कोटि कागज़ के पन्ने एक ही आकार, प्रकार, सामग्री व रंग आदि के बने होते हुए भी, उनका उपयोग-कार्य-क्षेत्र आदि भिन्न होता है । लेकिन उनका उत्पादक मात्र एक ही है । कागज़ के उस उत्पादक की भाँति, ईश्वर भी होता है । अतः उस मंगलमूर्ति का दर्शन करते हुए, हमारा उसीमें लीन हो जाना ही अपने इस जीवन का ध्येय है । लेकिन, उसका साक्षात्कार कैसे करना है? श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (११.५४) में कहा है –

भक्त्या त्वनन्यया शक्यः अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ।।

अर्थ : 'हे अर्जुन, अनन्य भक्ति के द्वारा इस प्रकार के चतुर्भुजी रूप में मुझे प्रत्यक्ष देखना, यथार्थ रूप में समझना तथा प्रवेश करना अर्थात् एक ही भाव से साक्षात्कार करना संभव है ।'

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ।।

अर्थ : 'हे अर्जुन, जो केवल मेरे लिए ही यज्ञ, दान तथा तप आदि सब कर्तव्य व कर्म करता है, मेरे प्रति परायण अर्थात् मेरे ही आश्रय को परमगति मानते हुए, तत्पर बन कर रहता है, मेरा भक्त ही सांसारिक वस्तुओं की आसक्ति, ममता आदि से विरहित

होता है, समस्त जीवियों के प्रति द्वेषभावना से शून्य होता है, ऐसा अनन्य भक्त मुझमें ही विलीन हो जाता है' ऐसा कहा है ।

इस प्रकार, भक्ति ही ईश्वर का साक्षात्कार करने का एक मात्र मार्ग है । उसके व इस सृष्टि के प्रति अपनी इस भक्ति का प्रकटीकरण करते हुए, जो केवल उसके याने उस ईश्वर के लिए ही जीवन चलाता है, वह भक्त ईश्वर साक्षात्कार के बिना नहीं रहता।

७. क्या कोई भी व्यक्ति ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है?

हाँ । इसमें किसी भी प्रकार की बाधा नहीं है । जिसकी उसमें निश्चल श्रद्धा है, जो स्वत: के लिए जीवन नहीं चलाता, जो अपने धर्म में ही रहते हुए अपना सर्वस्व उस ईश्वर को अर्पित करता है, वह निश्चय ही ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है । इस देश में अनेक लोगों को इस प्रकार का ईश्वर का साक्षात्कार हुआ है । वर्ण–जाति, आयु–शिक्षा आदि कोई बाधा नहीं बनती, किसी विशिष्ठ व्यवसाय की शरण नहीं जाना पड़ता, निश्चल मन से प्रार्थना करने वाले केवल मनुष्यों को ही नहीं, तो पशु/प्राणी, पंछियों को भी ईशदर्शन का भाग्य प्राप्त हुआ है । अत: केवल अनन्य भक्ति से ही परमात्मा का साक्षात्कार संभव है ।

८. आपको कितने देवता ज्ञात हैं?

हिंदू धर्म के अनुसार, ईश्वर कहीं परलोक में नहीं है । वह यहीं पर अमूर्त रूप में है । भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने प्रभु का (अर्थात् अपना) रूप इस प्रकार बताया है (१०.२०-४२) ''मैं सभी प्राणियों के अंदर की आत्मा हूँ, समस्त जीवों का आदि–मध्य–अंत हूँ, द्वादश आदित्य हूँ, प्रकाशमान सूरज हूँ, वायु आदि देवता हूँ, नक्षत्र–चंद्र आदि हूँ, वेद हूँ, देवदेवता हूँ, इंद्रियों में मन हूँ, प्राणियों में चेतना शक्ति हूँ, एकादश रुद्र हूँ, यक्ष–राक्षसों में कुबेर हूँ, अग्नि हूँ, मेरु पर्वत हूँ, बृहस्पति हूँ, स्कंद हूँ, सागर हूँ, ऋषियों में भृगु हूँ, ॐकार हूँ, जपयज्ञ हूँ, हिमालय हूँ, अश्वत्थ वृक्ष हूँ, मुनियों में नारद हूँ, गंधर्वों में चित्ररथ हूँ, सिद्धों में कपिल हूँ, अश्वों में उच्चश्रवा हूँ, हाथियों में ऐरावत हूँ, मनुष्यों में राजा हूँ, वज्रायुध हूँ, कामधेनू हूँ, मदन हूँ, वासुकी हूँ, नागों में शेषनाग हूँ, वरुणदेव हूँ, आर्यमन हूँ, यम हूँ, दैत्यों में प्रह्लाद हूँ, गणना में समय हूँ, सिंह हूँ, गरुड़ हूँ, वायु हूँ, श्रीराम हूँ, मत्स्य हूँ, मकर हूँ, गंगा हूँ, ब्रह्मविद्या हूँ, लयकर्ता हूँ, अक्षर हूँ, समास हूँ, महाकाल हूँ, कीर्ति हूँ, श्री हूँ, वाक् हूँ, स्मृति हूँ, मेधा हूँ, धृति व क्षमा हूँ, बृहत्साम हूँ, छंदसों में गायत्रि हूँ, मासों में मार्गशीर्ष हूँ, ऋतु हूँ'' इस तरह बताया जाता है ।

अर्थात् हमें समझ लेना चाहिए कि संपूर्ण सृष्टि ही उसकी है। अत: हमारी संस्कृति में ३३ कोटि देवताओं का वर्णन करते हैं । याने, इस पृथ्वी पर ३३ कोटि तत्वों का अस्तित्व है और उनमें से हर एक में भी प्रभु का अस्तित्व है ।

ऐसी स्थिति में, हमें सोचना होगा कि उसका नामस्मरण कितना श्रेष्ठ है? अपने यहाँ वे कितने अष्टोत्तर नाम, सहस्त्र नाम हैं? वे सभी उसीके ही नाम हैं । अत: घरों में उस विराटरूपी के स्मरण में सहस्त्र नाम, अष्टोत्तर नाम दोहराना चाहिए । इनके साथ ही, इनकी अनेक अंशभूत ग्रामदेवता भी हैं । इसीलिए हमें इन देव-देवताओं का गौरव करते हुए उन्हें नमन् करना चाहिए ।

९. क्या आप देवपत्नियों व उनके वाहनों को जानते हो?

उसकी एक छोटी सूची यहाँ है -

देव	पत्नी	वाहन
नारायण (विष्णु)	लक्ष्मी	गरुड़, हाथी
शंकर	पार्वती	नंदी, सिंह
गणपति	सिद्धि, बुद्धि	मूषक (चूहा)
स्कंद	वल्लि, सेना	मयूर (मोर)
इंद्र	शची	ऐरावत हाथी
ब्रह्म	सरस्वती	हंस
अग्नि	स्वाहा, स्वधा	भेड़ा
सूर्य	छाया, संज्ञा	सप्त अश्व
चंद्र	२७ तारका	दश श्वेत अश्व
यम	श्यामल	भैंसा
कुबेर	चित्रलेखा	अश्व
श्रीराम	सीता	-
श्रीकृष्ण	रुक्मिणी	-

१०. क्या आठों दिशाओं में देवता हैं? यदि हाँ, तो उनके नाम क्या हैं?

हिंदू पद्धति के अनुसार, आठों दिशाओं के लिए एक-एक अधिपति देवता है । वे इस प्रकार हैं - पूर्व का अधिपति इंद्र, आग्नेय का अग्नि, दक्षिण का यम, नैऋत्य का निऋति, पश्चिम का वरुण, वायव्य का वायु, उत्तर का कुबेर, तथा ईशान्य का ईशान ।

११. क्या आपको इन दिशाधिपतियों की पत्नियाँ व उनके वाहनों के नाम ज्ञात हैं?

सभी दिशाओं के लिए एक-एक अधिपति है । उनकी पत्नी व वाहनों के नाम इस प्रकार हैं -

दिशा	देवता	पत्नी	वाहन
पूर्व	इंद्र	शची	ऐरावत हाथी
आग्नेय	अग्नी	स्वाहा, स्वधा	भेड़ा
दक्षिण	यम	श्यामल	भैंसा
नैऋत्य	निऋति	दीर्घा	मनुष्य
पश्चिम	वरुण	गंगा	मकर
वायव्य	वायु	अंजना	हिरन
उत्तर	कुबेर	चित्रलेखा	अश्व
ईशान्य	ईशान	पार्वती	नंदी

१२. पंचभूत याने क्या?

हिंदू चिंतन के अनुसार, इस सृष्टि में पंचतत्वों का अस्तित्व हैं । इन्हीं के कारण इस विश्व के लिए एक दृष्टि, एक सृष्टि है । वे इस प्रकार हैं - पृथ्वीतत्व, जलतत्व (आप), अग्नीतत्व (तेज), वायुतत्व तथा आकाशतत्व। इन्ही पाँचों को पंचभूत कहा जाता है ।

१३. दिग्गज याने क्या? उनके नाम क्या हैं?

हिंदू संस्कृति की अवधारणा के अनुसार, आठों दिशाओं में स्थित आठ हाथियों ने इस भूमंडल को उठा के रखा है । पत्नीसमेत उनके नाम इस प्रकार हैं -

दिशा	दिग्गज	उसकी पत्नी
पूर्व	ऐरावत	अभ्रमु
आग्नेय	पुंडरीक	कपिला
दक्षिण	वामन	पिंगल
नैऋत्य	कुमुद	अनुपमा

पश्चिम	अंजन	ताम्रपर्णी
वायव्य	पुष्पदंत	शुभ्रदंती
उत्तर	सार्वभौम	अंगना
ईशान्य	सुप्रतीक	अंजनावती

१४. त्रिमूर्ति याने कौन हैं?

संपूर्ण जगत् की गतिविधियों का सदा निरीक्षण करने वाले तीन प्रधान देवता ही 'त्रिमूर्ति' हैं । पहले – ब्रह्मा, जो इस समूची सृष्टि के कारणकर्ता हैं; दूसरे – विष्णु, जो सृष्ट विश्व के पालनकर्ता व तीसरे –शंकर, जो विश्व के लयकर्ता हैं ।

मंदिर

(गुरुद्वारा, जैन बस्तियाँ, गुफाएँ आदि सब समाहित है।)

१. क्या मंदिर आपके जीवन का हिस्सा बना है?

हिंदुओं के लिए देवालय अति पवित्र स्थान होता है । भारत के या हिंदू बसने वाले विश्व के किसी भी कोने में जाए तो, वहाँ किसी न किसी देवता का मंदिर अवश्य होता है । हिमाच्छादित हिमालय के बद्री, केदार, अमरनाथ, वैष्णोदेवी आदि से लेकर द्वीपों में स्थित देवालयों तक, जंगल-काननों से लेकर नगर-जनस्थान प्रदेशों तक कोने-कोने में उसके लिए एक-एक ऐसे अनगिनत स्थानों का निर्माण किया गया है। इसीलिए देवालय बहुत ही महत्व का स्थान है । अत: अति पवित्रसा स्थल है ।

लेकिन, यह कहने के पश्चात् कि ईश्वर सब दूर, सब ओर है, एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि 'उसके लिए' कहे जाने वाला स्थान भी आखिर क्यों चाहिए? इसका समाधान यह है कि सब दूर, सब ओर प्रभु को देख पाना केवल योगियों को ही संभव है । लेकिन ईश अस्तित्व सामान्य जनों को भी समझाने हेतु मंदिर-देवालय आदि हैं। यहाँ भक्ति पुलकित्त होती है । आगे चल कर, हर वस्तु में भी प्रभु को ही देखने की उदात्तता पाने में वे ही सहायक होते हैं। 'अर्चकस्य प्रभावेन शिला भवति शङ्कर:' इस उक्ति के अनुसार, हमें इस जीवन में धन्यता भाव पाने के लिए एकाध मंदिर का निर्माण कर, वहाँ उसकी पूजा करते हुए, अनंतर उसको अपने हृदय-मंदिर में आवाहित-प्रतिष्ठापित कर के उसीके सानिध्य में रह कर, पुनीत होकर, उससे सायुज्यता प्राप्त करते हैं । इसीलिए मंदिर हमारे जीवन का एक अभिन्न भाग ही बन गए हैं, बनने चाहिए ।

२. आप कितने दिनों में एक बार मंदिर जाते हो? स्वेच्छा से जाते हो? या किसी के आग्रह से? या प्रतिष्ठा के लिए?

हम सब उस ईश्वर की ही संतान हैं । अत: हम सब समान हैं । यहाँ प्रतिष्ठा-वितिष्ठा कोई नहीं होती । किसीको तो पटाने के लिए देवालय नहीं जाना चाहिए। इसके विपरीत, अपनी आत्मोन्नति, आत्मोद्धार के लिए जाने की सद्भावना हमारे अंदर होनी चाहिए । इसमें किसीकी दुराग्रह नहीं होनी चाहिए । हम अपना जीवन किसी के दबाव में नहीं चलाते । अत: जगन्नियामक के दर्शन स्वेच्छा से ही करने चाहिए; न कि किसी दूसरे उद्देश्य के लिए । यहाँ आना भी हो, तो वह केवल देवदर्शनार्थ, मन के संस्कारार्थ, आत्मा की उन्नति के लिए; इसके अतिरिक्त किसी दूसरे उद्देश्य के लिए नहीं । साथ ही हर दिन देवालय जाने की परिपाटी रखना अच्छा होता है। चाहे वह सुबह हो या शाम, लेकिन मंदिर हो-आने के बाद कृतार्थ भाव रहना चाहिए।

३. मंदिर जाने पर क्या-क्या करते हो? क्या आपके मंदिर की गतिविधियों का कोई विशिष्ठ क्रम है?

मंदिर जाने पर दर्शन, नमस्कार, जप, प्रार्थना, तीर्थप्रसाद स्वीकार, दान, सेवा आदि - यह सब क्रमबद्धता से करना चाहिए । मंदिर प्रवेश करने के तुरंत बाद, हाथ-पैर धो लेने चाहिए, मंगलमय वातावरण में प्रवेश करने के कारण मन को एकाग्र करते हुए अपने तन-मन को भक्तिभाव से ओतप्रोत करना चाहिए । जिस देवता के मंदिर में प्रवेश कर रहे होते हैं, उस देवता का नामस्मरण मंदिर से बाहर जाने तक करते रहना योग्य होगा। उदा. 'ॐ नमो नारायणाय, ॐ नमः शिवाय, ॐ गं गणपतये नमः, श्रीराम जय राम जय जय राम, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, सत् श्री अकाल, णमो अरिहंताणं' आदि नामस्मरण कर सकते हैं । मूर्ति का दर्शन याने उस देव/देवी के मूलस्थान का दर्शन करने के समान होता है । अत: उस देवता के गुणविशेषों का स्मरण करना चाहिए। 'यही वह है' ऐसा भाव मन में लाना चाहिए । उस देवता का स्मरण करते हुए, श्रद्धा-भक्तिपूर्वक ''हे भगवन्, आपके कारण ही इस चराचर जगत् का भला हुआ है; मुझे जो कुछ चाहिए वह सब प्रदान करें; जो कुछ आप देने जा रहे हो, वह सब आपको ही समर्पित करने के लिए दो'' ऐसी व्यक्ति-कुटुंब-समाज-देश तथा प्रकृति के लिए प्रार्थना करते हुए, उसके चरणों में साष्टांग प्रणिपात करना चाहिए ।

यह प्रणिपात करते समय, अपने दोनों पाद, घुटने, दोनों हाथ, सीना/छाती तथा भाल का जमीन से स्पर्श करते हुए नमस्कार किया गया, तो वह 'साष्टांग नमस्कार' होता है। प्रणाम के बाद जप करना उचित होगा। अन्यों को नहीं, केवल हमें ही सुनाई दे, ऐसी ध्वनि में किए स्मरण को 'जप' कहते हैं। इसकी दो विधाएँ हैं : 'नामजप व मंत्रजप।' किसी दूसरे को कष्ट न हो, ऐसी जगह पर पद्मासन या सुखासन में बैठ कर जप करना चाहिए। बाद में तीर्थप्रसाद का स्वीकार। कर्नाटक के पुरंदर दास की याद यहाँ आती है-'हे हरि, पधारिए भोर में। पखार कर आपके चरण, करूँगा उसका अमृतपान मैं।' इस पुण्यपुरुष के स्पर्श मात्र से पावन हुआ जलविशेष ही 'तीर्थ' होता है । उसे अर्पित दूध-दही-घी-शहद-चीनी के संमिश्रण को ही 'पंचामृत' कहते हैं । 'तीर्यते इति तीर्थ' याने जो हमें इहलोक से पार करते हुए, परमात्मा के साथ सायुज्यता तक पहुँचाता है वही 'तीर्थ' है । अत: तीर्थ अत्यंत पवित्र होता है । इसे प्राशन करते हुए, प्रभु की प्रदक्षिणा करनी चाहिए ।

'समाज भलाई के हेतु भगवान का कार्य बढे' इसी सदाशयता से वहाँ की हुंडी में धन अर्पित करते हुए, वहाँ पर स्थित दीन-गरीब लोगों को भी यथाशक्ति दान देना चाहिए। नियमित रूप में ईशसेवा करते हुए 'अन्नदान', 'अक्षरदान', 'आरोग्यदान' इन तीनों के आधार पर दीन व गरीब जनों, छात्रों, बीमारों को आहार-वस्त्र, शिक्षा-संस्कार व औषधि की मदद संतर्पण के रूप में देने का यत्न होना चाहिए ।

४. क्या वहाँ आए लोगों में से किसी के साथ तो बोलते हो?

साधारणत: मंदिर में प्रवेश करने से पहले ही, मुँह से नामस्मरण करते रहते हैं । दर्शन आदि सब समाप्त होने तक निरंतर नामस्मरण चलता ही रहना चाहिए । वहाँ से लौटने से पहले अर्चक व मंदिर के अन्य कर्मचारियों के साथ मंदिर तथा वहाँ के कार्यक्रम के बारे में चर्चा करते हुए, वहाँ की व्यवस्थाओं के बारे में अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हुए, मंदिर में आगे आयोजित होने वाले कार्यक्रमों के बारे में पूछताछ करते हुए, सद्भाव के साथ वहाँ से निर्गमन करना चाहिए । दूसरे भक्त आदि लोगों का परिचय करते हुए, उनको अपना परिचय करा देना चाहिए। मंदिर, वहाँ का देवता, समाज से संबंधित अन्य सुयोग्य विषयों को छोड़ कर, किसी अन्य विषयों पर वहाँ चर्चा नहीं करनी चाहिए।

५. बाहर जाने से पहले, क्या आप थोड़ा समय मंदिर में बैठते हो?

अपने पूर्वजों ने सोच कर बनायी/बतायी हुयी हर क्रिया का भी एक उद्देश्य

होता है । मंदिर की प्रशांति का आस्वाद लेते हुए, वहाँ के परिशुद्ध वातावरण में मन को केंद्रित करते हुए, उससे मन की शांति पाने के लिए यह बहुत ही अनुकूल है । बाहरी भौतिक वातावरण में पुन: पग रखने से पहले मंदिर का दैवीभाव, अनुभव आदि पुन: एक बार मन में दृढ़ करने के लिए थोड़ा समय देवालय के आहाते में बैठना चाहिए ।

६. आपकी कुलदेवता के बारे में आपको क्या ज्ञात है?

हर मनुष्य की एक श्रद्धा, एक विश्वास अवश्य होता है । उसीके कारण उसके मन में एक विशिष्ठ देवता के बारे में श्रद्धा होती है । जिस देवता में उसने श्रद्धा रखी है, उसका स्वयं पालन करते हुए, अपनी पत्नी-संतानों के साथ उस देवता की स्तुति गाकर, आराधना करना श्रेयस्कर होता है। लेकिन, कालांतर में विभिन्न प्रदेशों में स्थलांतरित होने पर, लोगों ने अपने उस परंपरागत देवता के बारे में अपनी श्रद्धा-भक्ति को आगे बढ़ाया । वही उनकी कुलदेवता बनी। उसेही अपनी कुलदेवता कहने की प्रथा है। घर में उस देवता की प्रतिकृति रख कर, उसकी पूजा करने की पद्धति चली आयी है। इसीलिए हर साल उस देवता का कोई विशिष्ठ कार्यक्रम, शुभाशुभ कार्यों में उसकी आराधना करने की परंपरा होती है। अत: अपने पूर्वजों से परंपरा के रूप में आयी इन सारी बातों का पालन हमें सदैव करते रहना चाहिए। अपना कुलदेवता कौनसा है? उसका मूलस्थान कहाँ है? कौनसा गाँव? आदि जानकारियाँ हमें मालूम होनी/करा लेनी चाहिए। साथ ही उस देवता, देवालय का प्रादुर्भाव तथा इतिहास को समुचित रूप में समझ लेना चाहिए।

७. उस मंदिर के कारण क्या आपके घर में कुछ परिवर्तन आया है?

देवालय याने एक सामाजिक केंद्र है। वहाँ अनेक लोग/भक्त आकर लोटते रहते हैं। देवालय याने देवता का आलय (घर) होता है। वह हमारे ऊपर अवश्य ही प्रभाव डालता है। अब हमें यह सोचना है कि वहाँ से क्या कुछ लाकर, अपने जीवन में उतारना चाहिए? वहाँ की प्रशांति, वहाँ की निर्मलता, वहाँ का परिशुद्ध वातावरणे आदि सब कुछ हमारे घर में सुस्थापित होना चाहिए। घर भी समाज का ही एक अंग है। अपना कुटुंब उसीकी ही एक छोटी प्रतिकृति होती है। इसीलिए अपना घर याने देवालय की एक छोटीसी प्रतिकृति बनना चाहिए। यहाँ उस देवालय में स्वयं प्रभु हो, तो वहाँ घर में देवतारूपी माता-पिता होने चाहिए। देवालय में जिस प्रकार लोग मन:शांति पाकर जाते हैं, वैसे ही अपने घरों में भी उसी प्रकार प्रसन्नता, सुख-शांति पाकर जाने की स्थिति होनी चाहिए। इसीलिए हमें देवता के रूप में ही सबका स्वागत-सत्कार करना चाहिए। अत: वेदों में भी हमारे लिए बताया गया सूत्र है- 'अतिथिदेवो भव।' ये सारे परिवर्तन हमसे अपेक्षित हैं।

८. मंदिर में आपको सबसे अधिक आनंद देने वाला संदर्भ कौनसा होता है ?

मंदिर में अनेक प्रकार की गतिविधियाँ चलती हैं । ये सभी कार्यक्रम सामाजिक बलवर्धन के लिए ही चलते हैं । कुछ लोगों को हर दिन की पूजा अच्छी लगती होगी । कुछ लोग तो, देवता को पंचामृत अभिषेक करते समय आनंदित होकर, वह दिव्य दृश्य देख कर आँखों में आनंद के आँसू छलकाते हुए अपनी अनुभूति प्रकट करते हैं । कुछ लोगों को देवता को किये जाने वाले अलंकार में ही अभिरुचि, कौतूहल व आनंद मिलता है । कुछ लोगों (खास कर, बालकों) की आँखें केवल तीर्थप्रसाद पर ही टिकी होती हैं । कुछ लोगों को मंगलारती ही बहुत भाती है । लेकिन, कुछ और लोगों को यहाँ की निर्मलता, नीरवता अथवा शांति प्रसन्न करती है । कुछ जनों को यहाँ की व्यवस्था, तो कुछ लोगों को देवालय के आसपास का परिसर, कुछ भक्तों को अर्चकों के सहवास आदि में आनंद आता है । इसीलिए हर मनुष्य उस देवालय में विशेष आसक्त होकर, उस देवालय के लिए चाहे जो काम हो, करने का निर्णय करता है । वैसे देवालयों में तीज-त्योहारों पर विशेष पूजा, अलंकार आदि, साल में एक बार वार्षिकोत्सव, ब्रह्मरथोत्सव, धार्मिक कार्यक्रमों के साथ ही मंत्राभ्यास, श्लोकाभ्यास, संस्कार केंद्र आदि का आरंभ करते हुए, वहाँ पर आने वाले सभी भक्तवृंद, इस सामाजिक कार्य में स्वयं हाथ बँटाते हुए, वहाँ वे भी आनंदित होते हैं । इस प्रकार, देवालयों में आनंद, संतोष पाने के बीसियों संदर्भ होते हैं ।

९. क्या आपको पता है कि मंदिर कब नहीं जाना चाहिए?

मंदिर में एक समुचित वातावरण निर्माण करने हेतु हमारे पुरखों ने बनायी/बतायी हुयी कुछ सूचनाओं का पालन करना पड़ता है । उनमें पहली है उस देवालय की दैवीशक्ति । दूसरी है उस देवालय की पवित्रता व निर्मलता । यहाँ दूसरी बात पर विशेष बल देना चाहिए । साधारणतः देवालय जाते समय शुचिता बहुत ही महत्वपूर्ण होती है । बगैर शुचित्व के या बिना स्नान के नहीं जाना चाहिए । उस परमपवित्र भगवान की मूर्ति के सम्मुख क्या बगैर शुचित्व के हमारा खड़ा होना उचित होगा? क्या तब अपना शरीर व मन दोनों भी शुचित्व से भरे होने नहीं चाहिए? साथ ही, जब हम अशुचिता से युक्त होते हैं, तो शुचितापूर्ण लोग हमारा तिरस्कार कर सकते हैं न? वह सहज भी है । इनके साथ ही, घर के 'जात्याशौच', 'मृताशौच' आदि प्रसंगों में भी न्यूनतम ११ दिनों तक देवालय जाना निषिद्ध होता है । शुचिता के ये नियम आबाल-वृद्ध-स्त्री-पुरुष सभी को समान रूप से लागू होते हैं ।

मंदिर में उत्सव

१. मंदिर में मनाए जाने वाले उत्सवों में आपका पसंदीदा उत्सव कौनसा है?

मंदिर एक धार्मिक, सांस्कृतिक व सामाजिक केंद्र है । वहाँ हर दिन सैंकड़ों भक्त आते-जाते हैं । यहाँ आने वाले लोग प्रभु की आराधना करते हुए, आनंद-संतोष पाकर जाते हैं । ये मंदिर संस्कृति के अनेक आयामों से मंडित हैं । समाज को आगे चलाने में, संस्कृति की रक्षा करने वाले सामाजिक केंद्र बन के देवालय अपनी भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं । इस प्रकार के देवसन्निधान में अनेकविध उत्सव चलते हैं । देवता चाहे कोई भी हो, अनेक प्रकार के उत्सवों द्वारा ईशाराधना चलती रहती है । वहाँ चलने वाले व हमारे लिए अभिप्सित कार्यक्रमों में हमें सहभागी होना चाहिए । इस प्रकार, हमारे चहेते उत्सवों में, भक्ति के कारण क्यों न हो, हमें अधिक परिश्रम कर पाना, अधिक समय दे पाना, इनका समायोजन करते हुए, वहाँ का काम करना उचित होगा ।

२. आपके चहेते उत्सव में आपकी भूमिका क्या होती है?

हर एक को कोई न कोई उत्सव अवश्य भाता है । चाहे वह हर पखवाड़े की सत्यनारायण पूजा हो या संकष्टि चतुर्थी, अथवा साल में एक बार चलने वाला वार्षिकोत्सव भी हो सकता है । उसमें हमें सक्रियता से सहभागी होना चाहिए । अपना सर्वस्व उसके लिए अर्पित करना चाहिए।

उसके लिए अपने समय, श्रम व धन का विनियोग करना चाहिए । अपने आप्तमित्रों को भी आग्रहपूर्वक बुला कर, उनको भी उसमें शामिल होने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए ।

३. क्या आप कहते हो?: मैं एक भक्त हूँ, देवालय जाकर वहाँ रह के आता हूँ।

'मंदिर किसी एक की निजी संपदा है' ऐसा मानना उचित नहीं है। इसीलिए वहाँ 'हम केवल एक प्रेक्षक हैं' ऐसा न मानते हुए, हमसे जो कुछ बन सकने वाली 'गिलहरी-सेवा' या 'हाथी-सेवा' हो, वह अर्पित करनी चाहिए । हमारी भावना यह होनी चाहिए कि मंदिर की प्रगति के लिए हम वहाँ का हर काम करेंगे ।

४. क्या आप कहते हो?: 'मैं जाऊँगा, थोड़ा समय वहाँ रह कर सुनिश्चित सेवा कर के ही आऊँगा।'

इसकी अपेक्षा होते हुए भी, विशेष प्रसंगों में अधिक समय, श्रम व सब कुछ अर्पित करने के लिए हमें तैयार रहना चाहिए । जहाँ-जहाँ हमारी सेवा आवश्यक लगती है, वहाँ सक्रियता से भाग लेना चाहिए । यह एक प्रकार का करार (Contract) है, ऐसी भावना नहीं रखनी चाहिए ।

५. क्या दायित्व लेकर उसे भली भाँति निभाते हो? आपके लिए यथासंभव सेवा करते हो?

ये मंदिर याने सामाजिक स्वास्थ्य की रक्षा करने वाले सांस्कृतिक केंद्र ही हैं। ये मंदिर जैसे-जैसे संवर्धित होते हैं, उस देवता के प्रभाव से वहाँ पर सामाजिक परिवर्तन अवश्य ही होता है । समाज के हितार्थ ही जन्मे हमको अपना पूरा सामर्थ्य दाँव पर लगाते हुए, वहाँ के सब प्रकार के दायित्वों को प्रामाणिकता से निभाना चाहिए ।

६. क्या आप अपने मित्रों को अपने साथ ले जाकर, उन्हें वहाँ के कामों में जुटाते हो?

केवल हम स्वयं काम करने से हमारा भला तो होता ही है । परंतु दूसरों को भी इस पुण्यकार्य में सहभागी बनाने का उदात्त भाव हममें होना चाहिए । यहाँ स्मरणीय है कि रामानुजाचार्य ने सबके हित के लिए गुरुदेव द्वारा दी हुयी वह पुण्यदायी दीक्षा सबको बता दी थी । इसीलिए हमें अपने मित्रों को वहाँ ले जाकर, वे ऊब न जावें इस प्रकार उनका मनपरिवर्तन करते हुए उन्हें देवकार्य में जोड़ना चाहिए । एक सुभाषित के अनुसार -

कर्ता कारयिता चैव प्रेरकश्चानुमोदकः ।
सुकृते दुष्कृते चैव चत्वारः समभागिनः ॥

याने, १किया हुआ काम चाहे भला हो या बुरा, काम करने वाला, कराने वाला, प्रेरणा देने वाला व उसका अनुमोदक – ये चारों उसमें समान रूप से भागी होते हैं ।' इसीलिए दूसरों को देवकार्य-धर्मकार्य में जुटाना हमारे लिए तथा काम करने वालों के लिए भी श्रेयस्कर होता है ।

७. उत्सव में कहीं पर भी कमी दिखायी देने पर, क्या आप उसे शीघ्र ठीक करते हो?

व्यवस्था में अमूमन कुछ न कुछ कमियाँ अवश्य दिखायी दे सकती हैं। देवालय का कार्य धर्मकार्य होने के कारण, उस प्रकार की न्यूनता दिखायी देते ही, किसी की निंदा या किसी के बारे में घृणा प्रकट न करते हुए, केवल समस्या समाधान के बारे में चिंता करते हुए, उस कमी को पूरा करने हेतु आगे बढ़ना चाहिए । समस्या का निवारण होने पर, अपना मूल काम यथापूर्व आगे जारी रखना चाहिए । यहाँ किसी की निंदा या आलोचना आदि करने के अहितकारी प्रयासों को हाथ नहीं डालना चाहिए। उसे पुष्ठि नहीं देनी चाहिए ।

८. क्या आर्थिक दायित्व उठाते हुए, आप संग्रह कर के देते हो?

कार्यक्रम याने उसका एक आर्थिक पहलू भी अवश्य होता है । देवता के अलंकार से लेकर भक्तों को देय प्रसाद तक की हर बात के लिए धन की आवश्यकता होती है । अत: यह समाज का ही कार्य होने से हमें देवालय के लिए धन का संग्रह करते हुए देना चाहिए । शुरु में अपने मित्र-परिवार से संग्रह कर के, आगे घर-घर जाकर संग्रहित कर, लोगों में भक्ति बिंबित करनी चाहिए। धन देते ही यह कार्य मेरा है का भाव मन में उत्पन्न होंने के कारण, सबको आर्थिक रूप में अपनी सेवा समर्पित करनी चाहिए ।

इष्टदेवता

१. क्या इष्टदेवता, कुलदेवता, ग्रामदेवता आदि केवल-मात्र हिंदुओं में हैं?

हाँ, 'बहुदेवता उपासना मार्ग' का अनुसरण करने वाले हिंदू, अपनी-अपनी परंपरा के अनुरूप इस प्रकार की अनेक देवताओं की आराधना करते हैं। अत: हर घर की अपना ही कुलदेवता होता है। इतना ही नहीं, और भी अलग-अलग देवताओं की पूजा करने की परिपाटी है। मानो यह पर्याप्त नहीं, सभी जाति-मत-संप्रदायों की चौखटों को भूल कर समूचे ग्राम का भी भला हो, इस विचार से अनुप्राणित होकर, हर गाँव का एक ग्रामदेवता भी निर्धारित की गयी है। अत: हमारे देश का वैशिष्ट्य है कि संबंधित उत्सवों में संबद्ध देवता की पूजा कर के, इष्ट देवता का पूजन कर, ग्रामदेवता की आराधना करने की प्रथा रूढ़ हुयी है।

२. अन्य मतों में यह क्यों नहीं?

अन्य मतों का 'एकेश्वरी उपासना मार्ग' है अर्थात्, केवल उनके ही देवता में विश्वास रखने पर ही स्वर्ग मिलेगा, अन्यथा नरक। इतना ही नहीं, जैसा केवल लिखित रूप में प्रस्तुत मत का ही आचरण करना होगा; बदलते संदर्भों/परिवेशों में उनका वह आचरण विरोधी होने पर भी, उन्हें उस नयी विधा से आचरण नहीं करना चाहिए। इसके साथ ही, वहाँ स्वर्ग का केवल एक ही मार्ग है; एक ही प्रभु है; बाकी सब शैतान हैं, ऐसी धारणा होने के कारण विविध देवताओं की कल्पना उनके लिए कष्टकारक व अस्वीकार्य ही है।

३. इस प्रकार बीसियों देवताओं का होना सही है या गलत?

हिंदुओं में ३३ कोटि देवताओं के बारे में बताया जाता है । लेकिन, चिंतनीय बात यह है कि यह प्रकृति में दिखायी देने वाले ३३ कोटि तत्वों का प्रतीक है । सभी चराचर, सजीव-निर्जीवों में देवताभाव को देखना ही हमारी संस्कृति की उदात्त, उदार कल्पना है । इतना ही नहीं, जितनी संख्या में मानव मात्र हैं उतने ही मत हैं, यही हमारी कल्पना है । इसके साथ ही, अपने सद्गुणों के कारण हर किसी को पूजार्ह मानने पर, समूचे जगत् को एक करने वाली यह दृष्टि विश्वव्यापी बननी चाहिए ।

४. क्या इससे कोलाहल नहीं मचेगा?

परिपूर्ण ज्ञान न होने के कारण ही संदिग्धता मचती है । सही ढंग से समझाने पर यह कोलाहल दूर होता है । विश्व की चराचर वस्तुओं में भी देवत्व देखने की दृष्टि हमारी है । जगत् की सभी वस्तुएँ किसी न किसी रूप में मानव के लिए सहकारी ही हैं । साथ ही, मनुष्य को देवत्व की ओर लिवा जाने के लिए, वे अपनी ही अनोखी रीति से सहाय्य करती हैं । इसीलिए यदि विवेक हो, तो इस तत्व को समझ पाना सुलभ है ।

५. इन देवताओं की आराधना कैसे करनी चाहिए?

श्रेष्ठ कन्नड़ चिंतक सर्वज्ञ कहता है 'दूसरों को अपने जैसा ही मानने पर कैलाश भी निकट आता है ।' जगत् के सभी चराचर वस्तुओं के प्रति गौरवभाव से देखना, सभी मानवों की ओर समत्व भाव से देखना, तथा इस प्रकार उस भगवान के प्रति स्वयं को समर्पित करते हुए, उसके आदर्शों का पालन कर, धर्मकार्य की पताका ऊँची रखना और अंत में उसीमें लीन हो जाना ही सभी देवताओं की आराधना का क्रमबद्ध समापन है । धर्मकार्य-सत्य-दया-अहिंसा-अस्तेय-शुचिता-इंद्रियनिग्रह इनके जरिये देवताकार्य करते हुए, हमें उसकी अर्चना करनी चाहिए ।

६. यह पूजा विधान हमें मान्य न होने पर, हमें क्या करना चाहिए?

धर्म के मूलसिद्धांतों को च्युति न आवे इस ढंग से पूजा, आराधना हो, तो कोई कष्ट की बात नहीं । वहाँ वैयक्तिक चाहतों या अनचाहतों का कोई स्थान नहीं होता। 'जितने मानव उतने मतप्रवाह' ऐसा कहने की उदात्तता हमारी है । इस आराधना का

मूल धर्म है, मत नहीं । अत: किसी एक को कष्ट हो, तो उसकी चिंता करने की आवश्यकता नहीं । लेकिन पूरी समष्टि को कष्ट हो, तो धार्मिक आधार पर उसकी चर्चा-चिंतन करते हुए, उसका निवारण करना उचित रहेगा । भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने ऐसा बताया है –

येऽप्यन्यदेवताभक्ता: यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ।।

'जो लोग श्रद्धा से अन्य देवता की पूजा करते हैं, वे भी दूसरी विधा से मेरी ही पूजा करते हैं।'

गाय व गौपूजन

१. क्या आपको गाय की विशेषता ज्ञात है?

मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः ।

वृद्धिमाकाङ्क्षता नित्यं गावः कार्याः प्रदक्षिणाः ।।

'गाय सभी जीवों के लिए मातृस्वरूपी है । गाय सबको सुख देती है । अपने जीवन में अनुकूलता हो, ऐसी अपेक्षा करने वाले सभी लोगों को गाय की पूजा करते हुए, उसे नमन-प्रदक्षिणा करना चाहिए ।'

'गाय' अनेक संदर्भों में धार्मिक रूप में सभी हिंदुओं के जीवन में महत्त्व की भूमिका निभाती है । हमारे जन्मते ही गाय हमें दूध देती है, गाय से ही यज्ञ-यागादि में अत्यावश्यक ऐसा घी उपलब्ध होता है । गृहप्रवेश करते समय घर में सबसे पहले गाय का प्रवेश होता है । श्राद्धों में पितरों को प्रदत्त पिंड भी गाय को ही अर्पित होते हैं । इसी गाय के कारण ही राजा कौशिक 'विश्वामित्र' बन गया । अतुलनीय पुण्यराशि इस गाय से ही बच्चों को भी संस्कार मिलते हैं । गाय से स्वास्थ्यरक्षा होती है । इस प्रकार अनेकविध रूपों में हमें गाय के प्रति आभारी रहना चाहिए ।

२. क्या आपके घर में गाय व बछड़ा है?

पहले, हर किसी के घर में गाय व बछड़ा अवश्य होता था । गाय-बछड़ों की संख्या के आधार पर लोगों की सज्जनता व धनिकता आँकी जाती थी । गाय-बछड़े का होना स्वास्थ्य के लिए भी उत्तम होता है । देहातों में आज भी गाय-बछड़े का पालन करने

की पद्धति है । हमारी धारणा है कि गाय के अंदर ३३ कोटि देवाताओं का वास होता है। शंकर का वाहन 'नंदी' है । कामधेनू देवलोक की गाय है । पद्म पुराण बताता है कि ब्रह्म के मुँह से उत्पन्न फेन से गाय का उद्भव हुआ है ।

इसीलिए इतने सारे पालतू प्राणियों के होते हुए भी, भारतीयों ने गाय की ओर विशेष ध्यान दिया है । घर-घर में गोपूजन व गोसत्कार चलता था । इतना ही नहीं, लक्षावधी-करोड़ो रुपयों की लागत के भवन खड़े करने पर भी, उसमें पहले केवल एक गाय के प्रवेश करने के पश्चात् ही वे उसमें प्रवेश करते हैं । किसी भी कार्यक्रम के प्रारंभ में पंचगव्य का सेवन, बच्चों को गाय के पैरों के बीच में से पार कराना, हर दिन की गोपूजा, गोग्रास आदि परंपराएँ हमारी संस्कृति की विशेषताएँ हैं ।

साथ ही, बालकों के लिए गाय का दूध श्रेष्ठ होता है । हमारे द्वारा गायों को प्रदान करने वाले नाम भी हमारे जीवन के लिए प्रेरणाप्रद सद्गुणों के नाम ही हैं । उसी नाम से ही हम बड़े लाड़-दुलार से उन्हें बुलाते भी हैं । यह जान कर कि मनुष्य की भाँति प्राणियों में भी भूख, नींद, डर, बीमारियाँ आदि का भय होता है, सभी सज्जनों का यह नैतिक कर्तव्य बनता है कि उन मूक जीवियों का प्यार से पालन करें ।

३. क्या आपकी गली-मोहल्ले में कहीं तो भी गाय है? क्या वह देशी है या विदेशी?

आज सब दूर 'स्वदेशी-विदेशी' की चर्चा-चिंतन चला है । उसी प्रकार गाय के बारे में भी, 'क्या गाय स्वदेशी है या विदेशी?' यह भी सोचने की स्थिति आ गयी है । क्योंकि, हम विदेशी गायों का पालन कर रहे हैं । आजकल फार्म से लाकर, गायों का पालन किया जा रहा है । याने अलग-अलग कारणों से अपनी देशी प्रजातियों का त्याग करते हुए, केवल लाभ के नाम पर हम विदेशी प्रजाति की गायों का पालन कर रहे हैं । लेकिन, ध्यान में रखना पड़ेगा कि विदेशी गायें बहुत शीघ्र रोगों की शिकार होती हैं । यदि उनका दूध पिया, तो पीने वाले को भी उनकी बीमारी आ सकती है ।

४. क्या आपको यह पता है कि स्वदेशी और विदेशी गायों के दूध में काफी अंतर होता है?

कुछ लोगों को यह प्रश्न अति विचित्रसा लग सकता है । क्योंकि, अपने यहाँ भी अपनी नाक सिकोड़ने वाले ऐसे कुछ लोग होंगे कि जो पूछेंगे : 'क्या दूध में भी इस

प्रकार भेद करना उचित है?'' लेकिन गहराई से सोचा जाए, तो बात स्पष्ट होती है । अर्थात्, रंग-रुचि-सत्त्व इन सबमें स्वदेशी गाय का दूध विदेशी गाय के दूध से अलग व श्रेष्ठ होता है । भारतीय गायों के दूध में 'गोरज' नामक विशिष्ठ सत्त्व है। यही उस दूध के पीले वर्ण का कारण है । गाय का दूध सत्त्व से भरपूर है । इसी कारण, उस दूध को तपाने के बाद, उस पर जमने वाली मलाई भी पीले रंग की होती है । स्वदेशी गायों के दूध, दही, मखखन व घी की गंध भी मनमोहक होती है । लेकिन, विदेशी गायों के सभी उत्पादों के गुणों में भिन्नता व कमियाँ दिखायी देती हैं ।

५. क्या आप दिन में एक बार तो गाय को छूते हो?

भुक्त्वा तृणानि शुष्काणि पीत्वा तोयं जलाशयात् ।
दुग्धं ददति लोकेभ्य: गावो विश्वस्य मातर: ।।

'सूखी घास-फूस खाकर, तालाबों का पानी पीकर, समूचे जगत् को ही दूध देने वाली गाय वास्तव में समस्त जगत् की माता ही है ।'

'गोपाल' याने 'श्रीकृष्ण'। रघुवंश में कालिदास के कथनानुसार, राजा दिलीप अपनी पत्नी सुदक्षिणा के साथ 'नंदिनी' की सेवा कर के ही रघु, राम आदि के जन्म का कारणपुरुष बना। यह धारणा है कि गाय का दर्शन एक शुभ-शगुन होता है। गाय के हर अंगांगों में भी (उसके सींग से गोरस तक) देवताओं का वास है। समस्त ३३ कोटि देवता भी गाय के रोम-रोम में वास करते हैं। अत: गाय को हर दिन एक बार तो स्पर्श करते हुए, नमस्कार करना चाहिए। विशेष कर उसकी पूँछ छूकर नमस्कार करना चाहिए।

६. क्या आप हर दिन गाय को कुछ न कुछ देते हो?

हमें सीधे नहीं संभव हुआ, तो भी अप्रत्यक्ष रीति से क्यों न हो, दूध उपलब्ध करा देने वाली गाय को हर दिन कुछ न कुछ देना ही चाहिए। गाँव-देहातों में हर दिन चावल, गुड़, फलों के साथ केले के पत्ते, हरी सब्जियाँ, धोवन में बचे-खुचे भात की काँजी, भूसा, खली ये सभी देने की पद्धति है। इसीलिए हमें भी हर दिन अपने परिजनों की भाँति गाय को कुछ न कुछ देना चाहिए। एकाध समय, अपने घर या गली-मोहल्ला या कालोनी में गाय न हो, तो हर दिन के हिसाब से उसे कुछ न कुछ देने के बारे में सोचना चाहिए। उस प्रकार तैयार की गई व्यवस्था के द्वारा निर्धारित कालावधि (महीना, छ: महीने आदि) में एक बार अपने बच्चों के साथ जाकर, यथासंभव सहायता करनी चाहिए।

७. क्या आपने गाय को गोग्रास देना या नैवेद्य अर्पण करना (भोग चढ़ाना) देखा है ?

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः । परोपकाराय वहन्ति नद्यः ।।
परोपकाराय दुहन्ति गावः । परोपकारार्थमिदं शरीरम् ।।

यह एक प्रसिद्ध सुभाषित है । 'पेड़ों का फल देना, नदियों का बहना, गायों का दोहना तथा अपना यह शरीर सब कुछ परोपकार करने के लिए ही हैं' ऐसा इसका अर्थ है । यदि यह सच है, तो क्या परोपकार करने वाले इन सबकी सेवा करना हमारा कर्तव्य नहीं है? इसीलिए हमें भोजन करने से पहले, गायों को कुछ न कुछ परोसना चाहिए । इस विशिष्ठ आचरण के द्वारा हम गायों के प्रति अपना गौरवादर दर्शाते हैं। हर दिन भोजन लेने से पहले, हमें अपने आहार का एक हिस्सा गाय को देकर, घास डाल के, पानी पिला के, उसे तृप्त करना ही 'गोग्रास' अथवा 'गो-नैवेद्य' (गो-भोग) कहा जाता है । स्नान करते हुए शुद्ध होकर, भक्तिभाव से गोग्रास देना चाहिए ।

८. क्या आपको 'गोमूत्र', 'गोमय', 'पंचगव्य' आदि शब्दों का अर्थ तथा इनका उपयोग मालूम है?

गाय का हर अंग, हर उत्पाद भी मनुष्य के लिए अनेक अनुकूलताएँ उपलब्ध कराता है । दूसरे प्राणियों के बारे में वैसा नहीं कह पातें । क्योंकि, गाय में विष को भी अमृत बनाने की शक्ति है । अत: गाय द्वारा चाहे जो पदार्थ खाया हो, उससे दोहने वाला दूध मात्र जहर नहीं होता ।

गोमूत्र में अनेक रोगों को फैलाने वाले सूक्ष्माणू तथा बैक्टेरियों का नियंत्रण कर सकने की रोगप्रतिबंधक शक्ति है । इसमें दमा के रोगाणुओं का निवारण करने की शक्ति है । गोमूत्र को तुलसी, नीम आदि वनस्पतियों के साथ मिलाकर रोगग्रस्त या कीटबाधित पेड़पौधों पर छिड़कने से उनके रोगों का निवारण तथा कीटबाधा रुक जाने की बात अध्ययनों से पता लगी है । इन अध्ययनों से यह भी मालूम हुआ है कि इसके छिड़काव से वातावरण भी रोगाणु-निरोधक बन जाता है । मनुष्य यदि गोमूत्र का सेवन करता है, तो उसकी पाचन-क्रिया तत्पर होती है । गोमूत्र में नायट्रोजन, कार्बालिक आम्ल, लैक्टोज, गंधक, अमोनिया वायु, तांबा, पोटेशियम, मैन्गेनीज, यूरिया लवण के साथ-साथ अन्य अनेक क्षार व स्वास्थ्यप्रदायक अम्ल होते हैं ।

अब भी गाँवों में गोमय से घर की पुताई करते हैं । गोबर से जमीन की

पुताई करने से, जमीन में स्थित सभी कृमिकीटों का नाश होता है । इसकी गंध के कारण, कृमि-कीट, रोगाणु, बिषाणु आदि इसके नजदीक भी फटकते नहीं । चीन के डॉ. किन्ना ने अपनी खोज के द्वारा यह स्पष्ट किया है कि गोमय अति सूक्ष्म कीटाणुओं का भी नाश करता है। रूसी विज्ञानी ने कहा है कि गोमय में अणुविकिरण रोकने की भी क्षमता है । गोमूत्र तथा गोमय से ३२ विभिन्न औषधियाँ बनायी जा रही हैं तथा इस गोमय का उपयोग करते हुए, देहातों में गोबर गैस की निर्मिति की जा रही है । इससे त्याज्य के रूप में प्राप्त होने वाले अवशिष्ट गोबर को खेतों में खाद के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। अब पता लगाया गया है कि गोमय में १६ प्रकार के खनिज द्रव्य होते हैं । आज के युग में भी गोमय, गोमूत्र तथा वनस्पतियों के उपयोग से प्रदूषण को रोका जा सकता है । गोबर का खाद जमीन का पोषाहार होने के कारण, भारतीय कृषि पद्धति में गोबर को प्रथम स्थान दिया गया है ।

गाय से प्राप्त/संबंधित पाँच वस्तु/पदार्थों का संमिश्रण ही पंचगव्य होता है । वे हैं: गाय का दूध-दही-घी-गोमूत्र-गोमय । सभी धार्मिक कार्यक्रमों में पंचगव्य का सेवन अवश्य करना होता है । उस प्रमुख गतिविधि का कहीं पर भी लोप न हो, इसलिए इसका सेवन आरंभ में ही करने का नियम ही है । इसके पीछे यही उद्देश्य छिपा है कि इन विधि-विधानों के दौरान, देह का कोई भी अंग किसी भी तकलीफ से बाधित न हो, ताकि सब कार्य सुसूत्रता से संपन्न हो जाए ।

९. क्या आपको पता है कि गोमूत्र चिकित्सा, पंचगव्य चिकित्सा अति कम व्यय वाली व अति परिणामकारी होती है?

गोमूत्र विश्व की सर्वोत्कृष्ट औषधि है । गोमय, गोमूत्र आदि से पेट से संबंधित रोगों की चिकित्सा सफल हुई है । कैन्सर, हृदय से संबंधित रोग, अस्थमा, कुष्ठ जैसे भीषण रोगों पर भी आज गोमूत्र चिकित्सा चली है । देसी प्रजाति का गोमूत्र गंगाजल के समान होता है। जिसने अब तक बछड़े को जन्म न दिया है, ऐसी गाय का मूत्र और भी श्रेष्ठ है । आज गोमूत्र व पंचगव्य चिकित्सा सब दूर प्रचलित हो गयी है। यह थोड़े समय में रोग का निवारण करती है और आपको निरोगी बनाने में सहायक भी है।

१०. क्या यह चिकित्सा देने वाले लोग आपको मालूम हैं?

आज गोमूत्र की चिकित्सा देने वाले लोग बहुत हैं । हाल ही में संपन्न 'गोरक्षा अभियान' में, इससे संबद्ध अनेक संस्थाओं व इस कार्य का निर्वहन करने वाले लोगों ने

वहाँ अपनी सभी वस्तुएँ प्रदर्शन तथा बिक्री के लिए रखी थीं । मंगलूर (कर्नाटक) का गो-विज्ञान केंद्र, नागपूर (महाराष्ट्र) के समीपस्थ देवलापूर का गोरक्षा केंद्र, कानपुर का गोरक्षा केंद्र, दीनदयाल कामधेनु गौशाला फार्मेसी, मथुरा आदि ने अपनी उत्तम गुणवत्ता को बनाये रखा है ।

११. क्या आपको पता है कि 'गोरक्षा' हम सबका दयित्व है?

यह किसीको भी बताने की जरूरत ही नहीं है कि इस देश में गोरक्षा सभी लोगों का कर्तव्य व दायित्व भी है । अपने सभी धार्मिक कार्यकलापों में गाय की प्रधानता तो है ही । प्राणीसंकुल में गाय याने कामधेनु । गायों की रक्षा, वे कसाईखाने न जावें ऐसी देखरेख व रोक और गोमांस के निर्यात पर प्रतिबंध – इन तीनों विधा से हम गोरक्षा कर सकते हैं । उनकी उम्र होने पर उनको तत्काल कसाईखाने को भेजना मानवीयता ही नहीं; उचित भी नहीं । उनका मूत्र व गोमय सार्वकालिक रूप में उपयुक्त हैं । इसलिए सामान्य लोगों को न्यूनतम एक गाय का तो पालन करना चाहिए । घर में पालन करना संभव नहीं, तो गोशालास्थित गायों का पालन करने के लिए आगे आकर, अन्य लोगों को भी प्रेरित करना चाहिए । गायों को कसाईखाने भेजने वालों का मन-परिवर्तन करते हुए, उनको वैसा करने से रोकना चाहिए । गोरक्षा करने वाले लोगों व संस्थाओं के साथ सहयोग करते हुए, गाय के बारे में श्रद्धा बढ़ानी चाहिए।

१२. गोरक्षा में आपका समर्थन कैसा है?

इसकी अनेक विधाएँ हैं । गोमालों/चरागाहों का निर्माण, गोशालाओं व गोमालों को धन-सहाय्य देना, वहाँ उत्तम चारा व पानी की व्यवस्था करना, गोदान, भारतीय प्रजाति की गायों की रक्षा, पंचगव्य-गोमूत्र का नियमित उपयोग, केवल गाय का दूध तथा उससे ही तैयार किया गया दही, मख्खन, घी इनका उपयोग करना, गोवंश की अभिवृद्धि में सहयोग करना, बूढ़ी गायों के पालन हेतु उनको दत्तक लेना, उनको कसाईखाने न भेजा जाए, ऐसी निगरानी रखना – आदि विभिन्न मार्गों द्वारा हमें इस श्रेष्ठ कार्य के प्रति अपना समर्थन देने के लिए तैयार होना चाहिए ।

१३. क्या वर्ष में एक बार गाय की पूजा करते हो?

हमें बताया गया हैं कि हर द्वादशी (बारस) को गोपूजन करना चाहिए । संक्रांति, दीपावली में विशेष पूजा करते हुए, तैयार की हुयी रसोई अग्रयुक्त केले के पत्ते में परोस

कर नैवेद्य (भोग) के रूप में रखते हैं । पुराने समय में, हर घर में गोग्रास देने की पद्धति थी । अत: आज वर्ष में एक बार तो, किसी एक त्योहार में गाय का पूजन करने की आदत हमें डाल लेनी चाहिए । वही अपने छोटे बच्चों को भी सिखा कर, बाद में क्रमश: हर दिन पूजा करने तक उसको आगे बढ़ाना होगा ।

१४. क्या आपने गोदान यह शब्द सुना है? किया है? करने वालों को देखा है?

अन्नदान, विद्यादान, कन्यादान की भाँति गोदान भी अति श्रेष्ठ दानों में से एक है। ज्योतिष्य में भी कुछ प्रायश्चित्तों के लिए गोदान भी बताया गया है । षोडश (सोलह) दानों में गोदान भी एक है ।

वेद

१. **क्या आपको यह पता है कि वेद याने क्या है?**

भारतीय काव्य, इतिहास, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि संकल्पनाएँ तथा संगीत, नाट्य, आयुर्वेद, जीवनशैली, जीवनदृष्टि आदि विचारधाराएँ वेदों पर ही खड़ी हैं।

'वेद' यह एक ज्ञान–राशि है। स्मृतिकारों के अनुसार, 'सर्वज्ञानमयो हि सः' अर्थात् वह समस्त ज्ञानरूपी है। 'वेदवाक्य याने' अवश्य ही पालन करने योग्य बात, यही अपना चिंतन है। 'कर्मकांड' व 'ज्ञानकांड' इसके दो भाग हैं। भारतीय दृष्टि में वेद 'अपौरुषेय' है। 'विद् ज्ञाने' नामक संस्कृत की व्युत्पत्ति वाले इस शब्द का अर्थ है 'ज्ञान'। यह केवल भौतिक जीवन चलाने के लिए सहाय्य करने वाला ज्ञान मात्र नहीं है; बल्कि, यह पारमार्थिक तथा मोक्षज्ञान भी देने वाला है। संसार नामक जनम–मरण के चक्रपरिवर्तन से उत्पन्न दुःखों का निवारण करते हुए, परब्रह्म की प्राप्ति कराने हेतु समस्त मानवता द्वारा जिसका अनुसरण होना चाहिए ऐसे विधान वेद समझाता है। इसीलिए इसे 'अपरा विद्या' भी कहा गया है। इनको हमारे ऋषियों ने अपनी अतींद्रीय अंतर्दृष्टि से देखा है। ('अतीन्द्रियार्थद्रष्टारो हि ऋषयः' – सायण)

निरुक्तकर्ता यास्काचार्य के अनुसार, वेद के आधिभौतिक, आधियाज्ञिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक नामक विविध अर्थ हैं। उसे हमें ब्रह्मचर्य व गुरुसेवा के द्वारा प्राप्त करना चाहिए। यही वेदों का महत्व व वैशिष्ट्य है। विश्व के प्राचीनतम साहित्य में वेद सर्वप्रथम व पवित्र हैं।

२. क्या आपको ज्ञात है कि वेद कितने हैं?

वेदवाङ्मय को ऋक्, यजुर्, साम व अथर्व ऐसा विभाजन किया गया है। 'ऋक्' याने प्रार्थना रूपी छंदोबद्ध रचना (मंत्र इसका नामांतर है)। 'यजुर्' याने यज्ञविधान के लिए साधन रूपी (केवल गद्यात्मक) मंत्र हैं। इन दोनों के अलावा 'साम' नामक गीतात्मक सामयुक्त ऐसे मंत्र हैं (जिसका उद्देश्य विश्वशांति व देवतातुष्टि है)। मारण-मोहन-उच्चाटन आदि अभिचारिक कर्मों तथा शांतिसाधक कर्मों को भी संपन्न कर सकने वाले 'अथर्व' मंत्र हैं।

आगे इनकी संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् नामक चार प्रभेदों से युक्त साहित्य है । संहिताएँ अनेक मंत्रों के संकलन हैं; ब्राह्मण गद्यात्मक यज्ञोपयोगी विवरणों से युक्त है; ब्राह्मणों के ही एक भाग के रूप में वानप्रस्थ-संन्यासी द्वारा अनुसंधान करने योग्य ब्रह्मविचारों से युक्त भाग ही आरण्यक हैं; और अंत में उपनिषद् । सभी वेदों की संहिताएँ, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् नामक चार विभाग हैं ।

३. वेद हमें क्या कुछ बोध करते हैं ।

वेदों में जीवनक्रम, संस्कृति, कर्तव्य-अकर्तव्य, खगोलशास्त्र, गणित, रसायनशास्त्र, प्रकृति, कालगणना, व्यवसाय आदि के बारे में चिंतन है। अनेक प्रकार से मनुष्य जीवन की सार्थकता के मूल व मूल्यों का निरूपण करना वेदों की महान उपलब्धि है। वेद हमें आध्यात्मिक साधना द्वारा मुक्ति पाने हेतु सीढ़ियों के रूप में 'अपरा विद्या' का बोध कराते हैं।

४. क्या आपको वेदों के सम्बंध में श्रद्धा है? या कौतूहल? या अज्ञान? या तिरस्कार?

प्राय: दूसरों के विपरीत दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप हममें वेदों के बारे में अज्ञान हो या तिरस्कार बढ़ा होगा । 'मेकाले शिक्षा पद्धति' याने भारत के श्रद्धा केंद्रों पर अपरिवर्तनीय हमला बोलने का एक तंत्र ही बन गया है। अत: पाश्चात्य विद्वानों व इन विचारधाराओं के अनुयायियों की गलत अवधारणाओं के शिकार बन कर, हमने वेदों के बारे में अज्ञान व तिरस्कार दोनों को ही अपने अंदर दृढ़मूल कर रखा है ।

प्रथम हमें श्रद्धावान बनना चाहिए या उनकी ओर पूर्वाग्रहविहीन दृष्टि से देखना चाहिए। वेदों के विचारों को समझ लेने का कौतूहल हममें होना चाहिए । वेदमंत्रों का अर्थ, आज के दिनों में उनकी प्रासंगिकता, उपयोग तथा उपलब्धियाँ इनको समझ लेने के प्रयास चलते रहने चाहिए।

५.　वेदों के बारे में अज्ञान, तिरस्कार आदि के कारण क्या हैं?

कई बार एकाध विषय समझ लेने की प्यास न होने से भी, वह तिरस्कृत होता है । अत: इसकी प्रज्ञा जाग्रत होने पर कि हमारे वरिष्ठों द्वारा हमें प्रदत्त वेद हमारे लिए बहुत बड़ी संपदा है, उनको समझ लेने की प्यास काफी बढ़ जाएगी । साथ ही उनके 'अपनत्व' का गर्वपूर्ण अनुभव सदैव अपने मन में रहना चाहिए।

वेदों के बारे में अनेकों में अज्ञान-तिरस्कार आदि दिखायी देता है। इसके अनेक कारण हैं । वेद संस्कृत भाषा में है; लेकिन यह भाषा आज की लौकिक संस्कृत से भिन्न है। अत: 'वेद भाषा' के गहरे ज्ञान का अभाव ही इसका पहला कारण है । दूसरा कारण प्राय: यह सोच है कि वेद किसी विशिष्ट जाति से संबंधित है । तीसरा कारण, यह दुर्भावना प्रसृत की गयी है कि वेदों के सब विषय आज के युग में अप्रासंगिक हैं । चौथा कारण, यह गलत धारणा व्याप्त है कि वेदों में केवल देवाराधना मात्र है । यही वेदों के बारे में दिखायी देने वाले अज्ञान-तिरस्कार के कारण हैं ।

लेकिन, हम सबके लिए जान लेने योग्य विचार यही है कि वेद विश्व की अति प्राचीन, श्रेष्ठ ऐसी ज्ञानराशि है । इसके लिए यह तीव्र इच्छा ही पर्याप्त है कि हमें इनका अध्ययन करना चाहिए । तब सभी उपलब्धियाँ संभव हो सकती हैं । अत: बिना किसी पूर्वाग्रहों के, पूर्व-ग्रहितों की बाधा को दूर करते हुए, मुक्त मन से चिंतन करते हुए, उनका अध्ययन करने पर, इस प्रकार के अज्ञान-तिरस्कारों का निवारण होता है ।

६.　क्या आपने वेदमंत्रों को सुना है?

आज सब दूर वेदमंत्रों को सुन सकने की व्यवस्थाएँ, सुविधाएँ सबके लिए उपलब्ध हैं । उनको ध्यानपूर्वक सुनने की सृजनशीलता हम सबको दिखानी होगी ।

७.　क्या आप बैठ कर श्रद्धा से वेदपाठ सुनते हो?

प्रारंभ में कुछ भी न समझने पर भी, क्रमश: अपने तन-मन पर उसका संस्कार होता है और उसको सीखने की इच्छा अपने मन में अवश्य बिंबित होती है। उनको पहले सुनने के पश्चात्, उनके कारण मन-इंद्रियों पर संस्कार होता है । मंत्र सुनते समय श्रद्धा से बैठ कर सुनना चाहिए ।

८. क्या आपके घर में वर्ष में एक बार तो वेदपाठ चलता है ?

घरों मे वेदपाठ कराने की पद्धति आज भी अनेक घरों में विद्यमान है । इससे घर के हर एक को आत्मसंस्कार होता है । वर्ष में एक दिन, एक सप्ताह, एक पखवाड़ा इस प्रकार मंत्रों का पठन कराना चाहिए । हम स्वयं मंत्रों को न जानने वाले हों, तो भी किसी एक दिन उनका आयोजन करना चाहिए । बड़ों या बच्चों के जन्मदिन पर, कुलदेवता के पूजा दिन पर, नवरात्रों अथवा कोई भी एक रविवार, घर के सबके छुट्टी का दिन, इस प्रकार वेदज्ञों को बुला कर, वेदपाठ का आयोजन करना चाहिए ।

९. क्या आपके यहाँ वेदों से संबंधित पुस्तकें हैं ?

'माध्यम क्रांति' के कारण अब सब स्थानों पर पुस्तकें विपुल प्रमाण में प्रकाशित हो रही हैं । पहले, वेदों की लिखावट का रूप ही अनेकों ने देखा नहीं था । लेकिन अब, उनसे संबंधित सहस्त्रों पुस्तकें उपलब्ध हैं । इनके साथ ही, अनेक ध्वनिपट्टिकाएँ (कैसेट्स) तथा सांद्र मुद्रिकाएँ (सी.डी) भी उपलब्ध हैं । अत: उनको हम हर दिन सुन सकते हैं । हर घर में भी न्यूनतम एक तो वेद की पुस्तक होनी चाहिए। उसका अध्ययन करने के लिए थोड़ा सा समय आरक्षित कर रखना चाहिए ।

अवधारणाएँ

१. पाप-पुण्य क्या होता है?

कोई भी बात न करने का 'निषेध' व अवश्य करने का 'प्रोत्साहन' यही पाप-पुण्य की संकल्पना का मूल आधार है । व्यास आदि पूर्वजों ने बताया है कि दूसरों को होने वाला आनंद-उपकार ही पुण्य है । यह एक वैज्ञानिक संकल्पना है । इसकी भाषा मात्र धर्म की है । शास्त्रविहित कर्म ही पुण्य है; शास्त्रविरोधी कर्म ही पाप है । नैतिक आचरण का मूल पाप-पुण्य ही है । इसे वैज्ञानिक रीति से समझाना कष्टप्रद है । उसका स्मरण भी पीड़ाकारी है । पाप-पुण्य की अवधारणाएँ विकसित करना सुलभ है। उन्हें हर पीढ़ी तक पहुँचाना बड़ी सावधानी से करने योग्य काम है । 'परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीडनम्' (दूसरों का हित करना पुण्य होता है और उनको पीड़ा पहुँचाना ही पाप) इसे सबको ग्रहण करना होगा ।

२. मानव पापी है इसके बारे में आपका अभिमत क्या है?

इस प्रकार की परिकल्पना मानव में विश्वास नहीं बिंबित कर पाती। यदि ऐसा है, तो फिर उसमें दैवत्व भी कैसे हो सकता है? यदि दैवत्व ही नहीं, तो कोई भी मनुष्य दूसरों के लिए कुछ भी नहीं कर पाएगा । मानव मूलत: पापी है ही नहीं । पाश्चात्य चिंतन का यह अभिप्राय परिपूर्ण नहीं है । (भगवान मेरे माता-पिता है यह कहने के पश्चात् मैं पापी नहीं बनता। 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने पर भी मैं पापी नहीं होता ।)

३. क्या 'भारत में जन्म प्राप्ति' पुण्य से ही संभव है? या पाप के कारण?

'केवल पुण्य से ही भारत में जन्म मिलता है' यह बताने वाले विभिन्न उद्गार हैं। कुछ उद्गार तो अपनों के ही हैं । विदेशियों ने भी ऐसे उद्गार निकाले हैं । इस देश की प्रकृति-संस्कृति-संतति को देख कर उन्होंने कहा है कि भारत वास्तव में पुण्यभूमि है । ऐसी भूमि में पुण्य से ही जन्म मिलना चाहिए न?

अ) 'गायन्ति देवा: किल गीतकानि, धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे' (विष्णुपुराण) (यह भारतभूमि वास्तव में धन्य है, क्योंकि देवता भी इसका स्तवन करते हैं ।)

आ) 'दुर्लभं भारते जन्म मानुषं तत्र दुर्लभम्' (व्यास) (प्रथम तो भारत में जन्म मिलना ही दुर्लभ है; और उसमें भी मनुष्य का जन्म मिलना उससे भी दुर्लभ है ।

इ) 'भारतदेश प्रशंसा' - विष्णुपुराण ('देवता भी भारत के लिए ललचाते हैं।')

ई) 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' (आत्मा के मोक्ष के लिए एवं जगत् के हित के लिए) क्या आप इन बातों को मानते हो?

मानव जन्म व प्राणियों के जन्म में अंतर है । मनुष्य दूसरों के हित के लिए जी सकता है; उसे प्राप्त कर सकता है । अन्य प्राणियों को समझ में आती है केवल उनकी जन्मजात प्रवृत्ति । 'विश्व के हित की साधना करने वाले सब लोग स्वयं महान बने हैं ।' यह वाक्य मानवजन्म कैसे उपयोगित होना चाहिए, इसका मानो सूत्र ही बन गया है । मनुष्य का ध्येय आनंद की प्राप्ति और आनंद प्राप्त करने के लिए लोकसंग्रह आवश्यक है। यह अपने पूर्वजों द्वारा दर्शाया गया मार्ग है । पूर्णानंद प्राप्त व्यक्ति ही विश्व का हित कर सकता है ।

४. पाप किया तो उसका फल क्या होता है? पुण्य करने का फल क्या होता है?

हमारे पुरखों ने अति छोटे पाप से लेकर ब्रह्महत्या तक अनेक स्तर के पापों की गिनती की है । उसी प्रकार उनके लिए समुचित प्रायश्चित्तों की सूची भी दे दी है । पुण्यकार्यों में भी अश्वमेधादि यागों तक अपना सब कुछ दान देने, त्याग करने के आचरणों का उल्लेख किया है । उनसे प्राप्त होने वाले फलों के बारे में भी बताया है । उन्होंने हमें सतर्क भी किया है कि कुछ पापाचरणों के कारण केवल उनका आचरण करने वाला व्यक्ति मात्र नहीं, तो उसके पूर्वज भी नरक में गिरते हैं । वैसे ही कुछ

पुण्यकर्मों के फलस्वरूप, उस व्यक्ति के नरकस्थ पूर्वज भी स्वर्ग जाते हैं । पाप से दु:ख, नरक, अधोजन्म; पुण्य से सुख, स्वर्ग, उत्तम जन्म मिलता है ।

५. **स्वर्ग याने क्या है? नरक याने क्या है?**

यह सबको विदित प्रसिद्ध बात है कि भूलोक की भाँति स्वर्गलोक व नरकलोक भी होता है । ऐसी धारणा भी है कि पुण्यकर्मों के फलस्वरूप स्वर्गलोक व पापकर्मों के कारण नरकलोक प्राप्त होता है । स्वर्ग कहते ही अमृत, कामधेनु, देवताएँ आँखों के सामने आती हैं; वैसे ही नरक कहते ही यम, यमदूत, विविध प्रकार के यातनादायी दृश्य मन के सामने बिंबित होते हैं । इसीलिए पाप करने का भय और पुण्य करने की प्रेरणा मिलनी चाहिए । अपने घर/प्रदेश को ही स्वर्गसमान बनाने वाले महानुभाव भी हैं। ऋषि, संत, संन्यासी आदि इस पंक्ति के अग्रदूत हैं । इस भूमंडल को ही नरक में बदलने वाली दुष्ट संताने भी हमारी आँखों के सम्मुख ही हैं । आतंकवादी, धर्मांध, दुष्ट नेता आदि इस कतार में अग्रगण्य हैं ।

६. **मोक्ष याने क्या है? कौन मोक्ष प्राप्त करते हैं?**

मृत्यु के बाद पुन: जन्म न पाना ही 'मोक्ष' है । इसे 'अपुन:भव' भी कहते हैं। जीवित काल में ही अपना आनंद, सुख-दु:ख सभी अपने में ही पाना मोक्ष है । भगवान के साथ सायुज्यत्व पाना ही मोक्ष कह सकते हैं । आत्मज्ञानी ही मोक्ष पाता है । जैसे नदी स्वयं समुद्र ही बनती है, वैसे ही मानव का भी देवता; याने जीवात्मा का परमात्मा बन जाना ही मोक्ष है ।

७. **क्या आप 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्' मानते हो?**

'पुन: जन्मना, पुन: मरना' यह भारतीय चिंतन का बहुत महत्वपूर्ण बिंदु है । शरीर मरता है । आत्मा अमर है (मरती नहीं) । अमर आत्मा हर बार नया शरीर धारण करते हुए, जीकर, पुन: उस शरीर का त्याग कर, कोई दूसरा देह पाती है । अंत में एक बार अपने पुण्य के फलस्वरूप बिना कोई दूसरा शरीर प्राप्त किए, परमात्मा में विलीन हो जाती है । इसेही मोक्ष कहते हैं; इसेही कर्म-सिद्धांत कहते है । जन्म, मरण, स्वर्ग, नरक ये पुण्य-पाप के फल हैं । धरती पर किए पुण्यकार्यों के फलस्वरूप स्वर्ग, पुण्य क्षीण होने के बाद पुन: धरती पर आना। पाप करने पर नरक प्राप्ति, नरक का फल समाप्त होते ही फिर से धरती पर आना। इस चक्र से मुक्ति पाने के लिए निरंतर पुण्य

करते ही रहना चाहिए । स्वर्ग की अपेक्षा न करते हुए, पुण्य करते रहना होगा । तब मनुष्य देव बनता है; मोक्ष पाता है; परमात्मा में विलीन हो जाता है ।

मोक्ष ही सब जीवधारियों का अंतिम लक्ष्य है । उसके लिए पुण्य अर्थात् परोपकार करते रहना चाहिए व पाप याने परपीड़न नहीं करना चाहिए । पुनर्जन्म में विश्वास करने वाला पाप करने को डरता है ।

जिन्हें इसमें विश्वास नहीं होता, वे लोग पाप करने से हिचकिचाते नहीं। उनको उसकी शर्म भी नहीं आती। 'कर्जा लेकर क्यों न हो, घी-शक्कर खावो' ऐसा कहने वाला आदमी कोई भी पाप करने से पीछे नहीं हटता। कर्मसिद्धांत को मानने वाले लोग सुख-दुःख, कष्ट-हानि सब कुछ सहने की क्षमता प्राप्त करते हैं। नैतिक जीवन चलाते हैं।

८. क्या आप मानते हो, 'जन्मता है, वह मरता है?'

यह सुनिश्चित है कि विश्व की हर उद्भूत वस्तु का अंत होता है। वैसा नहीं हुआ, तो नवीनता को स्थान ही नहीं रहेगा । कुछ वस्तुएँ शीघ्र नष्ट होती हैं; और कुछ बहुत समय तक रह कर, नष्ट होती हैं । संपूर्ण जगत् का भी अंत होता है । वही प्रलय है । जन्मे हुए हर प्राणी को एक न एक दिन मरना है ही । नाश या मृत्यु सबको है । गीता में कहा है, 'जातस्य मरणं ध्रुवम्।'

यह भगवान बुद्ध के जीवन में घटित प्रसंग है । बुद्ध की शक्ति-महिमा में विश्वास करने वाली एक माता अपने मृत पुत्र के शोक में डूब गयी थी । वह आशान्वित थी कि बुद्ध उसके पुत्र को जीवित कर पाएंगे। बुद्ध ने भी कहा, 'तुम्हारे पुत्र को जीवित करूँगा । लेकिन किसी भी घर से एक मुठ्ठी राई ले के आना । परंतु ध्यान रखना कि उस घर में किसी की भी मृत्यु नहीं होनी चाहिए ।' पुत्रमोह से लिप्त वह माता जिस किसी के घर गयी, वहाँ राई थी, लेकिन उस घर में किसी न किसी की मृत्यु अवश्य हुयी थी । कुछ घरों में हाल ही में कोई मरा था; तो कहीं पर कुछ पहले; अंतर केवल समय का था । अंत में उस स्त्री को अवगत हुआ कि सबको मृत्यु अवश्य आती है। इस प्रकार बुद्ध ने उसे लोकनियम समझाया।

९. इस धरा की सभी वस्तुएँ किसके उपयोगार्थ हैं?

'इस भूमि की सब वस्तुएँ मेरे लिए हैं' यह धारणा पाश्चात्यों की है । यह भूमि/ प्रकृति के शोषण, प्रदूषण व अनर्थ का मार्ग है । इसके विपरीत हिंदू संस्कृति कहती है कि 'ये सब वस्तुएँ केवल मानव के लिए नहीं, सबकी हैं।' मानव धरती का हिस्सा है, धरती मानव

का अंग नहीं है । यह भूमंडल ८४ लाख जीवजंतुओं से युक्त है। अत: वह उन सबके लिए है। 'मैं जगत् के लिए हूँ' यह हिंदू दृष्टि है। 'पूरा जगत् मेरे लिए है' यह पाश्चात्य दृष्टि है।

१०. मानव को प्राणी, पेड़पौधे, वस्तुओं के साथ/बारे में कैसे बर्ताव करना चाहिए?

'प्राणी-बनस्पतियाँ-वस्तुएँ आदि मेरी हैं; मेरे उपभोग के लिए हैं। मैं इन सबका मालिक हूँ' यह धारणा उचित नहीं। आज हम Eco-Friendly, Eco-logical balance ऐसी सब बातें सुन रहे हैं। 'आज की भाँति ही आगे भी चलता रहा, तो भविष्य में हाहाकार मचेगा' ऐसी चेतावनी हम पग-पग पर सुन रहे हैं । ये सब अतिभोग, संग्रहकारी प्रवृत्ति के कारण हो गया है। प्राणी-पेड़-पौधों को बचा के ही मानव को स्वयं बच कर आगे निकलना है। वस्तुसंग्रह(उपभोग) सीमा में रहा, तो प्रकृति का शोषण भी टल सकता है। मानव-प्राणी-बनस्पतियाँ कोई अलग-अलग नहीं हैं । सब भी सबके लिए हैं। 'वे मेरे लिए नहीं, मैं ही उनके लिए हूँ' यही भाव हितकारी रहेगा । इस संकुल में मानव को जगन्मित्र बन के रहना होगा । उसकी जिम्मेदारी बड़ी है । मानव को बचाने वाला, संरक्षक, विकासक बनना चाहिए; भक्षक, विनाशक, विध्वंसक नहीं ।

११. क्या आपने 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा:' सुना है?

'तेन त्यक्तेन भुञ्जिथा:' ('भगवान द्वारा प्रदत्त वस्तु का स्वीकार करो, दूसरों से मत छीनो') यह ईशावास्योपनिषद का वाक्य है । संयम, सरलता का बोध कराने वाली इस उक्ति का सार है, 'शोषण से दूर रह के जीवन चलाइए।' 'दूसरे की वस्तु मत छीनिए, यहाँ का सब कुछ ईश्वर द्वारा दिया हुआ है।' उपनिषद का आदेश है -'उसने जो दिया है, केवल उसका ही स्वीकार कर; किसी दूसरे से छीनना नहीं।'

१२. लोका: समस्ता: सुखिनो भवन्तु, यह क्या है?

'लोका: समस्ता: सुखिनो भवन्तु' यह हमारी प्रार्थना है । 'समूचा संसार सुख से जिए' यही हमारी अपेक्षा है । आधुनिक जनतंत्र सबके सुख की नहीं, बल्कि 'अत्यधिक लोगों के अत्यधिक सुख' की कल्पना करता है । हमारा संकल्प है समूचे संसार को सुखी बनाने का । यह समूचा संसार याने केवल मानव मात्र नहीं, इसमें सभी पशु-पक्षी-प्राणी-पेड़-पौधों के सभी संकुल समाहित हैं । द्विपद, चतुष्पद प्राणियों का भी शुभचिंतन 'अस्तु द्विपदे, शं चतुष्पदे' सबका भला हो, किसीको भी दु:ख न पहुँचें 'सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दु:खभाग्भवेत्' आदि वाक्य हमारी विश्वकल्याण चाहने वाली दृष्टि के उदाहरण मात्र हैं ।

अन्नदान, रक्तदान, नेत्रदान

१. **क्या आपको अन्नदान करने का नियम मालूम है?**

'अन्नदान करना; प्रेम से बोलना; अपने जैसा दूसरों के साथ आचरण करना ही कैलासप्राय पांडित्य है' कर्नाटक के श्रेष्ठ संत सर्वज्ञ का यह वचन अन्नदान का महत्व विशद करता है । अत: सबको अन्नदान अवश्य करना चाहिए । सभी प्राणियों को पूर्ण संतोष दे सकने वाला एक मात्र दान याने केवल अन्नदान है ।

२. **क्या आप समय-समय पर अन्नदान करते हो?**

सिद्धांत मात्र बोलने के लिए नहीं होते; तद्नुसार आचरण महत्व का होता है। कई तीर्थक्षेत्रों/मंदिरों में हर दिन भोजन का प्रबंध होता है। ये सारे अन्नदान के ही विधान हैं । घरों में भी समय-समय पर अन्नदान करने की दृष्टि/पद्धति हो, तो घर आने वालों की संख्या बढ़ती है ।

३. **क्या आप इसका ध्यान रखते हो कि समय-समय पर आपके घर अतिथि आते रहें?**

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तव: ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमा: ।।

जिस प्रकार वायु का आश्रय पाकर सब सजीव सृष्टि जीवित रहती है; उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थाश्रम पर ही निर्भर होते हैं ।

यह मनु का वाक्य है । न विद्यते तिथि: यस्य स: (अतिथि वह है, जो विना बताये/पूछे सहज ही आता है ।) पहले, साधु-संन्यासी आते थे । आज कोई भी हो सकते हैं । छात्र, बीमार, बूढ़े, देश-धर्म के कार्यार्थ अपना जीवन समर्पित करने वाले व्यक्ति, इनमें से कोई भी हो, उस अतिथि का सत्कार करते हुए, उसकी सेवा करनी चाहिए।

४. आपके घर समय-समय पर अतिथि आए, तो क्या उनको अवश्य भोजन कराते हो?

समय-संदर्भ ध्यान में लेकर, घर आए रिश्तेदार, अतिथि आदि का भोजन-खान-पान देकर सत्कार करना चाहिए । यह केवल बातुनी बात या पीड़ाटालू उपचार बनके न रह कर, यदि वे सचमुच बिना खाना खाए गए, तो वास्तव में अपने मन को अवश्य दु:ख होना चाहिए। अक्षयपात्र प्रसंग आदि का यहाँ अवश्य स्मरण करना चाहिए ।

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता ।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ।।

'सज्जनों के घर में बैठने की जगह, आसन, पीने के लिए पानी तथा अच्छी बातें-ये चारों भी कभी चूकती नहीं ।'

उनको खान-पान के लिए न्यूनतम कुछ तो भी देना ही चाहिए।

५. क्या आपको ज्ञात है कि सभी युवा-युवतियों को रक्तदान करना चाहिए?

'यूनस्य भाव: यौवनं' (यौवन श्रेष्ठ साधना या उपलब्धियों के लिए ही होता है) तरुण अवस्था में शरीर में शक्तिसंचय व हार्मोन्स का अतिरिक्त स्राव होने के कारण शरीर सदा चैतन्य से भरा होता है । जरूरतमंदों को अपने शरीर का रक्त देना चाहिए। युवा-युवतियों को तो इस प्रकार रक्त देते रहना चाहिए।

६. क्या आपके घर में इसके बारे में स्वस्थ चर्चा होती है?

घर में इस विषय के बारे में मुक्त चर्चा होनी चाहिए । पहले एक जमाना था, जब रक्त देने की मनाही होती थी । घर में यदि भ्रांति हो, तो उसे दूर करते हुए, मुक्त वातावरण निर्माण करना चाहिए ।

७. क्या आपके घर में रक्तदान कर आए व्यक्ति का विशेष आदर होता है?

रक्तदान करने के १२० दिन बाद, शरीर में उतना रक्त फिर से उत्पन्न होता है । लेकिन प्रारंभ में थोड़ी सी कष्ट या दुर्बलता आदि दिखायी दे सकती है। अत: रक्तदान कर आए व्यक्ति का विशेष आदर करना चाहिए । उसके बारे में गर्व अनुभव होना चाहिए । रक्तदान कर आए व्यक्ति को तत्काल गुड़, पानी, नाश्ता, दूध आदि देना चाहिए । उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए ।

८. क्या आपको ज्ञात है कि कौन रक्तदान नहीं कर सकता?

सामान्यत: बूढ़े, छोटी आयु वाले बच्चें, ४५ से ऊपरी आयु वाली महिलाएँ, बीमार, दुर्बल लोग रक्तदान नहीं कर सकते । इनके साथ मधुमेही, पीलिया, एच.आई.व्ही. के रुग्ण को भी रक्तदान करने की अनुमति नहीं होती ।

९. क्या आपके घर में कोई नेत्रदानी व्यक्ति है?

समाज के सभी को नेत्रदानी बनना चाहिए; अर्थात् घर के सभी को नेत्रदानी बनना चाहिए । पुण्य ही मानव द्वारा अर्जित अति श्रेष्ठ धन होता है । दृष्टिदान करने पर, मृत व्यक्ति से निकाली गईं दोनों आँखें दो अंधों को प्रदान की जाती हैं । अत: अंधेरे से जूझते हुए दो व्यक्तियों के जीवन में प्रकाश फैलाने का पुण्य/भाग्य एक नेत्रदानी को मिलता है ।

१०. क्या आपके सभी घर वालों में नेत्रदान करने की इच्छा जगी है?

आज नेत्रदान के बारे में सब दूर जागरूकता बिंबित करनी है । किसी भी व्यक्ति के मृत्यु हो जाने के नंतर ही उसका नेत्रदान कार्यान्वित होता है । अत: नेत्रदान का घोषणापत्र भरने वाले व्यक्ति को कुछ भी गँवाना नहीं है । इसीलिए घर के सभी लोगों को मुक्त मन से एक मत से नेत्रदान करने तैयार होना चाहिए।

११. नेत्रदान करने वालों के बारे में क्या आप घर में समय-समय पर बोलते रहते हो?

छोटों में प्रेरणा जगाने, सबमें जागरूकता बिंबित करने के लिए इस प्रकार एक बार चर्चा अवश्य होनी चाहिए । सामान्यत: बताया यह जाता है कि दान के बारे में चर्चा/बातें नहीं करनी चाहिए । इसका अर्थ स्पष्ट है कि दान करने के पश्चात् उसके बारे में

चर्चा नहीं करना है । लेकिन कोई दूसरा व्यक्ति प्रेरणा पा सकता है, तो नेत्रदान, रक्तदान, देहदान, बलिदान के बारे में चर्चा अवश्य करनी चाहिए ।

१२. क्या देहदान कर सकते हैं?

यह दान श्रेष्ठ ही है । 'किसी दूसरे की उन्नति करने के लिए इस शरीर को स्वीकार कीजिए' ऐसा उद्घोषित करने वाले उदाहरण अपने इतिहास में पग-पग पर मौजूद हैं ।

१३. क्या यह बात सच है कि देहदान करने वालों को स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती?

'स्वर्ग प्राप्ति इस शरीर को नहीं होती-' यदि यह सही है, तो मरने के पाश्चात् शव के रूप में निश्चेष्ट बना यह शरीर किसी दूसरे को दान किया गया, तो उस आत्मा को कौनसी कष्ट होगी? इसके विपरीत मरने के पश्चात् भी दूसरों की सेवा में समर्पित किया शरीर क्या पुनीत नहीं होगा? अत: श्रेष्ठ कार्य के लिए बलिदान करने के उदाहरणों से युक्त अपनी इस संस्कृति में देहदान भी बताया गया है । उसे ही कहा गया है: 'परोपकारार्थमिदं शरीरम्।' देहदान करने वाले दधीचि महर्षि, जीमूतवाहन-शिबी आदियों को क्या स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हुयी?

१४. क्या आपको देहदान करने की प्रक्रिया ज्ञात है?

मृत्यु के पहले अपने मृत्युपत्र द्वारा या लिखित रूप में एक वक्तव्य देते हुए, वह अपने सभी घर वालों, अपने समीपी सम्बंधियों, वैद्य, अधिवक्ता आदि को बता देना चाहिए । तदुपरांत लिखित रूप में देहदान करने वाले उस व्यक्ति का देहांत होने के तत्काल बाद सम्बंधियों को चाहिए कि वे संबद्ध वैद्यालय को सूचित करके, देहदान का उक्त कार्य होने के उपरांत उस व्यक्ति के अपर कर्म संपन्न करें ।

विवाह में - करना - छोडना

१. **क्या आप मानते हो कि विवाह सरल पद्धति से संपन्न होने चाहिए?**

समाज संरचना-संधारणार्थ विवाह आवश्यक है । सोलह संस्कारों में यह एक प्रमुख संस्कार है । विवाह व्यक्ति जीवन का अति श्रेष्ठ कार्य है । उसके बिना स्त्री-पुरुष का एकत्रित आना असभ्य है; पाप है । लेकिन उसकी अनिवार्यता तथा समाज में दिखायी देने वाली प्रदर्शनप्रियता के कारण अनेक रूढ़ियाँ व अनावश्यक खर्चे उद्भूत हो रहे हैं । समय-समय पर अनावश्यक बातों को त्याग कर, सामान्य व्यक्ति भी चला सकने वाली प्रथाएँ शुरु करनी चाहिएं ।

२. **किन बातों में सरलता दिखायी देनी चाहिए?**

सरलता सभी बातों में दिखायी देनी चाहिए। शास्त्र बताता है कि सालंकृत दूल्हे की दुल्हन सालंकृत होनी चाहिए। शेष लोग केवल शुद्ध धूतवस्त्र पहन लें, तो भी काफी है। धर्मकर्मों का अनुष्ठान सांगोपांग रीति से अर्थसहित चलाने होंगे। अलंकार, उपहार, उपाहार, भोजन आदि सभी में सरलता हो। आडंबर, अनावश्यक खर्चे आदि नहीं करने चाहिए।

३. **विवाह में अवश्य हों, ऐसे काम कौनसे हैं?**

विवाह में अवश्य हों, ऐसे काम हैं : सामने आना, दूल्हे-दुल्हन द्वारा एक-दूसरे को देखना (वीक्षण), माल्यार्पण, मंगलसूत्र धारण, सप्तपदी, लाजाहोम, पुत्री को सौंपना, आरती-अक्षत, दुल्हन का गृहप्रवेश आदि ।

४. विवाह में अपव्यय की बातें कौनसी हैं?

आधुनिक जीवन में अपनी संपत्ति के असभ्य प्रदर्शन (Vulgar display of wealth) की मार सभी प्रसंगों में झेलनी पड़ रही है । विवाहों में तो वह अतिरेक की सीमा छू जाता है । अनावश्यक, अति आडंबर वाला शगुन समारोह, स्वागत समारोह, बैण्डबाजा, ऑर्केस्ट्रा, पहनावे, रोशनी, फूलों से सजावट, अधिकांश जाया होने वाली भोजन व्यवस्था, खानपान के स्टॉल्स, बीसियों किस्म की आमंत्रण पत्रिकाएँ, सभी का मानपान आदि अनेकों प्रकार के अपव्यय के मामले बढ़ रहे हैं । धार्मिक क्रियायों में दोनों कुटुंब इकठ्ठा आकर एक-दूसरे की पहचान कराने वाले संवादकार्य कम होकर, एक दूसरे से अपरिचित रहने वाले कुटुंब दिखायी देने लगें हैं । तो भी, अनेक कुटुंबों में सभी लोग एकत्रित बैठ कर, अपने घरों के विवाह कार्य में क्या कुछ करना चाहिए? क्या नहीं करना चाहिए? इसकी चर्चा करते हुए, दहेज-अपव्यय-आडंबर का प्रदर्शन नहीं करना है, ऐसा निर्धार करते हुए, तद्नुसार आचरण भी किया जा रहा है ।

विवाह सरलता से चलाना है, तो एक-दो धार्मिक क्रियाएँ छोड़नी पड़ीं, तो भी चिंता नहीं करनी चाहिए । अनिवार्य बातों को बचा कर, अनावश्यक बातें छोड़ सकते हो।

५. दहेज, वरोपचार, कन्याशुल्क की पृष्ठभूमि क्या है?

वरोपचार याने अपनी संपन्नता दर्शाने हेतु धनवान, राजेरजवाड़ों द्वारा दी जाने वाली वस्तुयें । अब उनका प्रवेश जनसामान्यों के जीवन में भी हुआ है । यह होने पर भी, अति कम वरोपचार करने वाले कुटुंब आज भी अस्तित्व में हैं । इनके बारे में पुनर्विचार कर, उनमें सुधार लाने के प्रयास संबंधित जातिपाँति प्रमुखों को समय-समय पर करते रहना चाहिए। अब दहेज-कन्याशुल्क को देखें । ये सब संबद्ध समाजों में संवर्धित हुई पद्धतियाँ हैं । समय-समय पर इनमें परिवर्तन होता आया है । कन्याओं की संख्या कम रही, तो कन्याशुल्क; वरों की संख्या कम हुयी, तो दहेज बढ़ जाता है । नए दंपत्ति का जीवन निर्वाह भली भाँति होकर, उनको आर्थिक सुरक्षा प्राप्त हो, इसलिए इनका विकास हुआ होगा । कन्याशुल्क, दहेज आदि प्रथाएँ सामाजिक दृष्टि से जब पीड़ाएँ बन जाती हैं, तब संबद्ध समाजप्रमुखों को चाहिए कि वे उनका निर्ममता से निर्मूलन करें।

६. उपहारों के सम्बंधो में आपकी कुल-परंपरा क्या कहती है?

घर में किन्हीं विशेष प्रसंगों पर बंधु-मित्रों को उपहार दिए जाते हैं। उपहार केवल

विवाहों में ही नहीं दिए जाते । इसे आडंबर के द्योतक के रूप में नहीं; बल्कि, आवश्यकतानुसार रखना चाहिए ।

७. क्या विवाह मंडपों में जूते आदि आवश्यक हैं?

आजकल जूते आदि सभी स्थानों पर अपना अस्तित्व जता रहे हैं। धार्मिक कार्यों के मंडपों, सभास्थानों, भोजनस्थानों, शौचालयों, इतना ही नहीं; आखिर उन्हीं जूतों के साथ रसोई में भी जाते रहते हैं। इसके सम्बंध में सभी को जागरूकता बरतनी होगी। धार्मिक कार्य याने पूजा, होम आदि स्थानों पर जूते नहीं पहनने चाहिए। ऐसा नियम ही है कि जहाँ वेदमंत्र पाठ चल रहा है, वहाँ जूते नहीं होने चाहिए। इसका ध्यान रखना चाहिए। लेकिन सभामंडप के बाहर जूते छोड़ना हो, तो वहाँ रक्षा का उचित व्यवस्था भी होना जरूरी है। इस पृष्ठभूमि पर, धार्मिक कार्यों के लिए केवल संबंधित लोगों को ही बुलाना चाहिए।

८. विवाह का कौनसा भाग धार्मिक व कौनसा सामाजिक है? क्या इन दोनों को पृथक करने से आनंद बढ़ सकेगा?

आजकल, आर्य समाज में संपन्न होने वाले विवाहों में केवल धार्मिक भाग ही रहता है । उसे देख के उसका अनुकरण करना अच्छा होगा । स्वागत समारोह, भोजनोपचार आदि सब सामाजिक भाग हैं; वीडियो, उपहार आदि भी सामाजिक भाग ही हैं। वास्तव में इन दोनों को ध्यान में लेकर, उनका अनुसरण करने से आनंद-संतोष दोनों भी प्राप्त हो सकता है । उदा. वीक्षण याने एक विशिष्ट आचरण है । इसमें मुहूर्त के सही समय पर दूल्हा-दुल्हन दोनों भी एक-दूसरे की आँखों में आँखें डाल कर देखने की क्रिया करनी होती है । वैसेही धारा, मंगलसूत्र धारण, सप्तपदी, लाजाहोम आदि धार्मिक क्रियाएँ दूल्हा-दुल्हन व उनके कुटुंबों के बीच आपसी समझदारी व दयित्व बढ़ाने की दृष्टि से की जाती हैं। तद्नुसार ही, सामाजिक दृष्टि से की जाने वाली क्रियाएँ भी उत्तम ही होती हैं । इंन दोनों को पृथक-पृथक रूप में मनाया जाए, तो अच्छा ही होगा।

९. क्या ऋण लेकर व्यय करना चाहिए?

विवाह याने एक धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक कार्यक्रम है। इसमें अपव्यय के लिए स्थान नहीं है। ऋण लेकर विवाह समारोह बड़े धूमधाम से मनाना उचित नहीं है। उन्हें कम खर्चे में देवालयों, सामुदायिक विवाह समारोहों में चलाना अच्छा होता है। साहूकार, गरीब आदि भेदों को भूल कर, सबको चाहिए कि इसे समुचित रूप में मनाया

जाए। आज अनेक समाज, कई संस्थाएँ सामूहिक विवाहों का आयोजन करने की एक अच्छी प्रथा प्रचलन में आयी है। इसे प्रोत्साहन देना चाहिए। यह एक अच्छा संकेत है कि अनेक प्रमुख लोग इन सामूहिक विवाह समारोहों से लाभान्वित हो रहे हैं।

१०. क्या आप प्रेमविवाह, अंतरजातीय विवाहों को मानते हो?

अनेक प्रकार के विवाहों में प्रेमविवाह भी एक है । हमारे समाज ने गांधर्व विवाह के रूप में इसे स्वीकारा है । हम सभी कालखंडों में ऐसे कई उदाहरण देखते हैं कि जहाँ आपसी मान्यता से विवाह कर के आजीवन एक होकर जीने का संकल्प करने को एक आपद्धर्म के रूप में स्वीकारा गया है । किसी भी कारणवश बच्चों की आत्महत्या, पलायन आदि को स्थान न देते हुए, उन्हें एक होकर जीने का सदअवसर उपलब्ध करा देना ही समझदारों का कर्तव्य है । इसीके साथ यह वरिष्ठों का दायित्व बनता है कि किसी दूसरी जाति से आयी बहू, अपने घर में घर की बेटी बना के रखने के उद्देश्य से उसे, अपने घर के सभी रीतिरिवाज सिखा कर उसको आत्मसात करना चाहिए ।

११. विवाह होते ही नवविवाहित दंपत्ति को अलग घर बना कर देने से किसका लाभ होता है?

किसी का भी लाभ नहीं है । बहू में सबके साथ काम करने का गुण नहीं आ सका, तो उसमें गरूर बढ़ने की संभावना होती है । दूल्हे पर अपव्यय, अनावश्यक जिम्मेदारी वहन करना पड़ता है । वे ज्येष्टजनों के मार्गदर्शन से वंचित होते हैं । उनको भी शांति-संतुष्टि नहीं मिलती । साथ ही जिम्मेदारी का अनुभव न होकर, वे किसी अनजान राह पर जाकर या स्वयं भी वंचित होकर, अपने बच्चों को भी दुर्बल बना देते हैं।

१२. घर में किसी ज्येष्ठ का रहना आवश्यक है या नहीं?

एक कहावत है, 'पुरानी जड़ें नये पल्लव ही पेड़ का सौंदर्य होता है।' अत: ज्येष्ठ व बच्चे सभी एक ही घर में रहें, तो अच्छा रहता है । बच्चों को ज्येष्ठ का मार्गदर्शन सदैव मिलना आवश्यक है । साथ ही, घर में यदि पोते-पोतियाँ हों, तो ज्येष्ठ ही उनके अति प्यारे होते हैं । इससे उनको भी उनकी जीवनसंध्या में आश्रय की व्यवस्था होती है । समाज भी यही चाहता है कि तीन पीढ़ियाँ मिल कर एकत्र रहें। शास्त्र भी इसका समर्थन करता है । बच्चे मान जाते हैं । लेकिन, जब अहं, स्वार्थ बढ़ जाता है; तब इसमें अन्तर पड़ता है । 'मेरा सुख, मेरी चाहत' ऐसा सोचने वाले व्यक्तियों की तुलना में तीनों पीढ़ियाँ एकत्र रहने का विचार करने वाले लोग ही धन्य होते हैं ।

हर घर में वरिष्ठ

१. क्या आपके घर में दादा-दादी हैं? क्या घर का वातावरण उनको आनंद दे पाता है?

घर में वरिष्ठ जन होने चाहिए । वे रहें, तो घर की रक्षा होती है । बच्चों को अच्छे वात्सल्य के साथ सुसंस्कार प्राप्त होकर, उनका साहस बढ़ती है । ज्येष्ठ-बच्चों का यह संबंध बहुत ही अच्छा, मधुर होता है । उससे बच्चों को वंचित नहीं करना चाहिए। घर में यदि दादा-दादी न हो तो, किसी अन्य ज्येष्ठ को अपने घर में रहने का अनुरोध करते हुए, उनको मनाते हुए, रख लेना चाहिए।

लेकिन, ज्येष्ठ की सभी आशा-आकांक्षाओं की पूर्ति हम नहीं कर सकेंगे। उनको संपूर्ण संतोष देना, वड़ा कठिन काम है । फिर भी उसकी चिंता न करते हुए, विना उनसे दूर रहने की सोचे, प्राप्त स्थिति में आनंद से रहना चाहिए । कभी कभी असंतोष-असहनशीलता के कारण, उनकी बातें कठोर हुयीं, तो भी उन्हें सहते हुए, उनके साथ गौरवादर से आचरण करना चाहिए ।

२. यदि ज्येष्ठ जन न हों, तो जीवन का, अपने जीवन का मार्गदर्शन कौन करेगा?

'मुझे सब पता है, मुझे किसी के मार्गदर्शन की आवश्यकता ही नहीं है', ऐसा सोचते हुए चलने वाले आजकल के वातावरण में, हम खोते जा रहें हैं अनेक उत्तम आचरण, भूली जा रही श्रेष्ठ परंपराएँ किसी के ध्यान में ही नहीं आ रही हैं । यदि घर में

ज्येष्ठ जन हो, तो कैसे जीना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर, सरलता से मिल सकता है। उनका अनुभव हमें मार्ग दिखाता है।

३. क्या आपने किसी अन्य ज्येष्ठजन को अपने घर में रहने का प्रबंध कराने वाले घर देखे हैं?

आजकल के मुक्त जीवन की मद में चूर दंपत्तियों के घरों में अन्य ज्येष्ठ जन दिखायी देना बड़ी बिरला बात है। फिर भी भारतभूमि के गाँव-देहात, नगर, महानगरों में भी वैसे घर सुलभता से देखे जा सकते हैं। उसका अनुभव सुनते ही दूसरों को भी लगता है कि हमें भी वैसे ही रहना चाहिए।

४. क्या कोई सज्जन ज्येष्ठजन हमारे घर में एकाध रात ठहरे थे? उससे क्या लाभ होता है? क्या कष्ट होती है?

ज्येष्ठजन सज्जन व्यक्ति किसी अन्य घर में रहने के लिए स्वयं कभी नहीं आते। उनको आकर रहने का आग्रह करना चाहिए। अपने देश में आज भी सज्जन लोग सहस्रों की संख्या में हैं। साहित्यिक, कलाकार, वेद पंडित, अध्यापक, कवि, विविध क्षेत्रों में कार्यरत सामाजिक कार्यकर्ताओं ने इस देश का जीवन सुखमय बनाते हुए, उसे समृद्ध किया है। वैसे लोगों को अपने घर आने का आमंत्रण देकर, उनके साथ आराम से बैठ कर, बातें करने का विधान समझ लेना चाहिए।

वे एकाध रात हमारे साथ रहे, तो हमारा ज्ञान, अनुभव वृद्धिंगत होकर आत्मविश्वास बढ़ता है। मानवीय दृष्टि का विकास होता है। लेकिन उसके लिए हमें थोड़ीसा कष्ट उठानी पड़ती है। नींद कम हों सकती है। श्रम करना पड़ सकता है। चिंता भी बढ़ सकती है। कुछ बार लग सकता है, 'वर्तमान तो गए न?' तो भी उन्हें सहने पर, उनमें हमें भलाई ही दिखेगी।

५. क्या उनको 'फिर आके रहिंए' ऐसा आमंत्रण दोगे?

अपनी संस्कृति का एक सदाशय है : 'अतिथिदेवो भव'। बड़े ज्येष्ठ जन अपने घर आकर रहने चाहिए। तब अपना जीवन धन्य होता है। परिशुद्ध होता है। अपने बच्चों का मनोबल बढ़ता है। इसीलिए 'फिर आइए' ऐसा मन:पूर्वक अनुरोध करते हुए उनको विदा करना चाहिए।

६. क्या आप धन्यो गृहस्थाश्रमः यह उक्ति जानते हो? मानते हो?

'घर पधारे किसी सज्जन को जब ऐसा लगता है कि वहाँ बार-बार आते रहना चाहिए, उनका गृहस्थाश्रम धन्य होता है' यही इस उक्ति का अर्थ है।

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः कान्ता मनोहारिणी ।
सन्मित्रं सुधनं स्वयोषितिरतिश्चाज्ञापराः सेवकाः ।
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे ।
साधोः सङ्गमुपासते हि सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः ।।

'आनंद से भरा घर, बुद्धिमान बच्चे, मन को संतोष देने वाली पत्नी, सन्मित्रों का समूह, अपनी पत्नी में अनुरक्ति, आज्ञापालक नौकर, अतिथि सत्कार, हर दिन देवता की आराधना तथा मिष्टान्नयुक्त खानपान – इन कारणों से ऐसे घरों में आना सज्जनों को बहुत भाने वाला गृहस्थाश्रम सचमुच धन्य है।'

सेवा

१. सेवा की सर्वोत्तम रीति कौनसी है?

स्वयं के लिए किसी भी वस्तु की अपेक्षा न करते हुए, दूसरों की आवश्यकताएँ ध्यान में लेकर, उनकी पूर्ति करना ही सेवा है । तन-मन-धन से की जाने वाली सेवा को 'त्रिकरण सेवा' कहते हैं । कुछ लोग अपने सहज गुणों से ही दूसरों की सेवा में जुट जाते हैं । वे पशु-पंछियों से लेकर अंतिम छोर के व्यक्ति पर भी अनुकंपा से पूर्ति होकर सहज ही उनकी सेवा करते हैं ।

२. क्या सेवा को एक गुण कह सकते हैं?

निष्काम कर्म ही अति श्रेष्ठ सा विधान है । क्योंकि, 'सेवा करने का सुअवसर मिलना ही अपना सौभाग्य समझना चाहिए । दु:खी लोगों का दु:ख निवारण करना ही मेरी इच्छा है । इन गुणों से युक्त लोग अपने आसपास के समाज में आनंद-संतोष ला सकते हैं' ऐसी सोच रखने वाले रंतिदेव, राजा जनक आदि सब महात्मा ही हैं ।

३. प्रतिफल मिला तो अच्छा ही है न?

'सागर का जल सागर में ही उँड़ेलिए' इस सिद्धांत को यहाँ ध्यान में लेना चाहिए। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' इस उक्तिनुसार, अपनी दायित्व केवल कर्म करने तक ही सीमित है; न कि उसके फल की अपेक्षा करना; तब सेवा निष्काम होती है । ऐसा होते हुए, प्रतिफल मिला तो भी उसकी हमने अपेक्षा ही नहीं की थी, इस कारण, उसका विनियोग उसी सेवा कार्य के लिए करना योग्य है ।

४. सेवा किसकी करनी चाहिए?

जो आर्त हैं, दु:खी हैं, संकटग्रस्त हैं, उन सबका दु:ख दूर करने हेतु उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिए । केवल मानव ही नहीं, तो पशु-पंछियों की ओर भी ध्यान देते हुए, उनकी भी सहायता-सेवा करनी चाहिए । लेकिन, जिनसे देश-धर्म के लिए धोखा-भय है, वैसे अधमों-दुष्टों की कोई सहायता या सेवा नहीं करनी चाहिए ।

५. सेवा करते समय कौनसी सावधानी बरतनी चाहिए?

सेवा करते समय बरतने योग्य सतर्कताएँ अनेक हैं ।

अ. ध्यान रखना चाहिए कि सेवित व्यक्ति के मन में हीनता की भावना उत्पन्न न हो।

आ. अपने बारे में उसे असहयता या संकोच न हो, ऐसे प्रेम से सेवा करनी चाहिए । कठोर बातें या आपको होने वाले कष्ट अभिव्यक्त न करें ।

इ. माँग कर उनसे कुछ भी प्राप्त नहीं करना चाहिए; वैसी अपेक्षा भी नहीं करनी चाहिए ।

ई. उनके बारे में असह्यता, करुणा आदि न दिखाते हुए, आनंद से सेवा करनी चाहिए ।

उ. प्रदत्त वस्तु व्यर्थ न जाए, इसकी सावधानी बरतना ...... आदि ।

सामाजिक गतिविधियाँ

१. **आप अपने घर में समाज के लिए कुछ तो करते हो क्या?**

घर का हर व्यक्ति भी अपने कामों में व्यस्त होने के साथ-साथ अपने नित्य जीवन में अल्प प्रमाण में क्यों न हो, समाजकार्य के साथ जुड़ जाना आवश्यक होता है।

बड़े-ज्येष्ठजन सामाजिक कार्यों में जुटे हैं, यह देख-समझ कर; बच्चे भी थोड़े ही प्रमाण में क्यों न हो, स्वप्रेरणा से समाजसेवा करने आगे आते हैं ।

उदा. आर्थिक दृष्टि से पिछड़े छात्र की किसी अध्यापक द्वारा निश्शुल्क पढ़ाई करना; आपद्ग्रस्त बंधु-मित्र अस्पताल में प्रवेश पर किसी गृहिणी द्वारा दौड़धूप करते हुए, रुग्ण के लिए नास्ता-भोजन आदि उपलब्ध कराना, उन तक पहुँचाना, रोगी के साथ रहना आदि बातें कर सकते हैं । अपने व्यवसाय-धर्मानुसार किसी वैद्य द्वारा गरीब लोगों की निःशुल्क चिकित्सा-उपचार आदि करना; अपने व्यापार में निरत किसी व्यापारी द्वारा स्वदेशी वस्तुओं की जानकारी देते हुए, लोगों को स्वदेशी वस्तुएँ क्रय करने के लिए प्रेरित करना आदि ।

२. **आपके घर में क्या दान, सेवा, उपकार आदि शब्दों का प्रयोग होता है?**

दानः 'श्रद्धया देयम् अश्रद्धया अदेयम्' (श्रद्धा से दान करो, अश्रद्धा से दान मत करो) यह उपनिषद् की उक्ति है । किसी भी वस्तु का दान देते समय उपयुक्त वस्तु ही देनी चाहिए । आपने लिए जो त्याज्य, पुरानी, अनुपयुक्त वस्तु है, उसे नहीं देना चाहिए।

चाणक्य का स्पष्ट उपदेश यही है कि अपने कुल अर्जन की ५०% राशि अपने जीवनोपाय के लिए, २५% आपद्धन के रूप में व शेष २५% राशि दानधर्म के लिए उपयोग करनी चाहिए । एक रुपये के अर्जन में से न्यूनतम २-३ पैसे तो भी दान-धर्म के लिए उपयोग करना उचित होगा। याने यदि अपना अर्जन एक हजार रुपयों का है; तब उसमें से न्यूनतम ५० रुपये तो भी आपद्ग्रस्त लोगों को दान किए गए, तो अपनी संस्कृति का एक प्रमुख अंग सार्थक हो जाएगा । जिनको आवश्यकता है उन को दान देने के उपरांत, उनसे किसी भी बात की अपेक्षा न की जाए, तभी वह वास्तविक दान होता है । उसके बदले नाम, कीर्ति, प्रति-उपकार की अपेक्षा की गयी, तो वह दान नहीं कहलाएगा।

सेवा: सेवा याने शारीरिक श्रम होता है और उसके स्थान पर किसी भी बात की अपेक्षा न रखते हुए, दूसरों के दु:ख में उनकी सांत्वना करना, उनके कष्ट के समय में उनकी सहायता करना आदि बातों में किसी भी बात की अपेक्षा उनसे न रखना ही सेवा होती है । वरिष्ठ जनों की सेवा, रोगी की सेवा, दीन-दु:खियों के आँसू पोंछना, (आर्थिक दृष्टि से पिछड़े, अनाथ) बच्चों की सहायता करना आदि अनेक विधा से हर आदमी अपनी शक्ति-सामर्थ्य के क्षेत्र में रह कर सेवा कर सकता है ।

उदा. अपने बच्चों की वर्षगाँठ मनाते समय अपने बच्चों के मित्रों में ही जो गरीब हैं, अनाथ हैं, उनको पुस्तकें, लेखनी, मिठाई आदि बाँटने के द्वारा; वरिष्ठों के स्मरणार्थ उनका श्राद्ध आदि का आचरण करते समय या जन्मदिन मनाते समय, दु:खी वरिष्ठों को अथवा अनाथ बच्चों के साथ सांत्वन पर संवाद के द्वारा उनका धीरज बँधाना, समर्थन करना, अपनी शक्त्यानुसार वस्तुएँ प्रदान करना आदि ।

दीनदलितों की सेवा की भाँति ही प्राणी-पंछियों की सेवा, गोसेवा करना अतीव आवश्यक है । अपने तीज-त्योहारों पर गाय की पूजा करना, कभी-कभी उनके लिए आवश्यक आहार देना भी सेवा होती है ।

उपकार: दूसरों से प्राप्त सहायता का स्मरण सदैव रखना, वरिष्ठ जनों के मार्गदर्शन के उपकार का स्मरण करना आदि बातों का अनुसरण यदि बड़े-वरिष्ठ जनों ने किया, तो बच्चों में भी प्रत्युपकार करने की अभीप्सा उत्पन्न होना संभव होता है । अत: एक सुभाषितकार कहता है :

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः ।

अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभिभवसारा: परकथा:
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ।।

'बिना किसी को पता चलाते दान देना, घर अतिथि आने पर आनंदित होना, भलाई या हित करने के बाद मौनाचरण करना, दूसरों से प्राप्त उपकार का स्मरण भरी सभा में करना, संमृद्धि में अनासक्त रहना, अन्यों के विषयों में हस्तक्षेप नहीं करना (या उत्थान-पतन में अनासक्त रहना) : सज्जनों को ऐसे असिधारा ब्रत को चलाना किसने सिखाया है?'

३. आपसे उपकृत हुए घरों की संख्या कितनी है?

अपने संपर्क में आने वाला हर घर, हर व्यक्ति में भले-बुरे गुण होते हैं। वैसे व्यक्ति-घरों की अच्छी बातों की पहचान करते हुए, उन्हें प्रोत्साहित करना । जिस प्रकार उस व्यक्ति व घर के विकास में सहायभूत होता है; वैसे ही किसी व्यक्ति या घर में अनेक नकारात्मक (बुरी) बातें भी हो सकती हैं । उन बातों के बारे में उस व्यक्ति या कुटुंब को सही ढंग से समझा दिया, तो वह व्यक्ति या कुटुंब को उन दोषों को दूर करने में बहुत सहायता होती है । इस प्रकार मानसिक समर्थन देकर हर व्यक्ति, कुटुंब, घर सौभाग्यशाली बनाने में अपनी सहभागिता होनी चाहिए । उसके फलस्वरूप, वैसे उपकृत घरों की संख्या अनगिनत होना असंभव नहीं ।

केवल इतना ही नहीं, हर व्यक्ति या घर की विशेषता को पहचान कर, उसे बीसियों लोगों को अवगत करने पर, हम उस व्यक्ति या घर को सबके लिए आदर्शप्राय बना सकते हैं ।

सभी घर वालों से आत्मीयता होना, उनके सुख-दु:ख में भागी होना, उनके आवश्यक प्रसंगों में उनके घर वाले ही बन क़र काम करना, व्यक्ति-कुटुंब के बीच स्थित आत्मीय संबंधों के लिए सहकारी बनते हैं।

इस प्रकार हर व्यक्ति व घर आपस में परस्पर उपकृत बन के जीना ही अपने भारतीय कुटुंब का लक्षण है । क्रमश: आपसी उपकार का यंह भाव भी भूल कर, कर्तव्य-सहकार का भाव आना एक सहज विकासक्रम है ।

४. आप समाज के लिए किस प्रकार से उपयोगी बन सकते हैं?

अपने कामधाम के अतिरिक्त, चंद घंटे तो कुछ व्यक्तियों के साथ अपना मेलमिलाप बढ़ाते हुए, अनेक प्रकार के सामाजिक कार्यों के लिए सहकारी बन सकता है।

किसी बात की अपेक्षा न करते हुए, जिनको आवश्यकता है उन को सहाय्य करने के द्वारा समाज के लिए सहायकारी बनना संभव है । अपनी ओर से ५ लोग, ५ घर भी यदि सन्मार्ग पर चलने में सहकारी बन सकें, तो उन ५ लोगों, उन ५ घरों के द्वारा और भी ५ लोगों व घरों की सहायता करने का गुण विकसित कर लिया, तो पूरे समाज का विकास धीरे-धीरे क्यों न हो, अति परिणामकारी ढंग से होने में कोई संदेह नहीं है ।

आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों को उनकी आवश्यकता ओं के अनुसार सहायता करने में ही अपना सदाचार, धर्म-विश्वासों के सम्बंध में अन्यों की समझदारी एवं तीज-त्योहार, जन्मदिन, पूर्वजों के पर्वों को अर्थपूर्ण मनाना आदि निहित हैं । बाद के दिनों में उपकार के मनोभाव से अपनी सहायता देने की प्रेरणा इन सभी समूहों को होने का प्रयोजन भी हो पाता है।

इसके लिए कोई भी विशेष प्रशिक्षण, समय, धन आदि की आवश्यकता नहीं होती, सद्गृहस्थ के लक्षणों वाला आचरण ही अतीव परिणामकारी होता है ।

५. अपने दिन के २४ घंटों में कितना समय समाज के लिए दे सकते हो?

दिन में न्यूनतम आधा घंटा तो सामाजिक आस्था के काम में जुट जाना चाहिए । अन्यथा, सप्ताह में एक दिन, दो दिन अथवा सप्ताह में १ घंटा, २ घंटे, आधा दिन, इस प्रकार घर के काम तथा वैयक्तिक कार्य के निर्वहन के साथ-साथ सामाजिक कार्य करना सहज संभव हो सकता है। आखिर, महीने में एक दिन तो सामाजिक जीवन के लिए उपयोग में लाना अच्छा होगा; अथवा किसी विशेष दिन, राष्ट्रीय पर्व, सांस्कृतिक पर्व आदि दिनों के अवसर पर सामाजिक रूप में एकत्रित आकर चला सकने वाली गतिविधियों में सहभागी होकर भी हम अपने मनचाहे सामाजिक कार्यों में जुट सकते हैं ।

६. समाजकार्य करने निकलें, तो समस्याएँ ही अधिक लगती हैं क्या? यदि वैसा है, तो उनका निवारण करते हुए, कैसे सामाजिक कार्य कर सकते हैं?

व्यक्तिगत रूप में सामाजिक कार्य करने निकलें, तो उसकी सीमा रेखाएँ, गति, पहुँचने योग्य लक्ष्य, सब कुछ छोटे ही हो सकते हैं। लेकिन व्यक्ति अपनी सुनिश्चित सीमाओं में ही काम करते गया तो, अपने आप समूचा समाज ही सुदृढ़ होता है ।

सामूहिक रूप में सामाजिक कार्य करने निकलें, तो अनेक समस्याएँ सामने आ

सकती हैं । उदा. सबके मनों को परस्परपूरक होने जैसा करना, आर्थिक व्यवहारों के सम्बंध में, हर व्यक्ति दे सकने वाला समय, समस्या का मिल कर सामना करने का भाव आदि सब अच्छा ही रहता है । बिना किसी भी समस्या के, काम सुगम लग सकता है । लेकिन, एक ही मनोभाव वाले व्यक्ति मिलना दूभर होता है । तब गिने-चुने लोगों को ही, 'संगठन में शक्ति है' इस मनोभाव से काम करना पड़ता है; हम शक्तिशाली बन कर कार्यनिर्वहन कर सकते हैं । सामाजिक कार्य करने का स्थान समीप ही रहा तो अच्छा ही है; अपने घर से वह स्थान दूर रहा तो, कार्यक्षेत्र में जाने-आने में ही दिक्कत आती है ।

७. समाज को देने योग्य कौन-कौनसी बातें आपके पास है?

समाज को देने योग्य अति महत्वपूर्ण वस्तु याने आपका मन व समय होता है। समाज के लिए उपकारी बन कर रहने की इच्छा-श्रद्धा रही, तो किसी न किसी रूप में अपने आपको सामाजिक कार्य में जुटा सकते हैं । इसके साथ ही थोड़े से समय को जोड़ना, समय का सदुपयोग करने का मनोभाव तथा घर वालों का सहयोग भी अत्यंत आवश्यक होता है ।

८. धन, विद्या, औषधि, कला, आचरण, गुण, समय आदि में से समाज को देने योग्य आपमें क्या है?

धन : अर्जन का २५% हिस्सा समाज को अर्पित करना ।

विद्या : शिक्षित विद्या के जरिए अपने से कम शिक्षित लोगों को विद्यादान करना।

औषधि : घर में लायी हुयी औषधियों में कई औषधियाँ बिना उपयोग के रहने के संदर्भ में, वे निरुपयोगि होने (एक्स्पायरी डेट) के पहले ही उपयोग में लाने की आवश्यकता है, लेकिन जिन लोगों को क्रय करने संभव नहीं हैं, ऐसे लोगों को देना; घरेलू दवाइयों के बारे में लोगों को ज्येष्ठ जनों के अनुभव बता देना ।

कला : संगीत, नृत्य, शिल्पकला, चित्रकला आदि में जिनकी प्रतिभा है, वे अधिक धन देकर न सीख पाने वाले इन कलाओं की अभिरुचि से युक्त जिज्ञासुओं को सिखाना; या वैसे कलाकारों को प्रोत्साहित करना ।

आचरण : अपने सज्जनशीलात्मक क्रियाकलापों के द्वारा, अपने अथवा अपने घर के आसपास रहने वाले बच्चों को अच्छे बर्ताव के बारे में बता के, सिखा देना ।

समय : दिन में या सप्ताह में एक घंटा, २ घंटे आदि यथासंभव समय समाज कार्य के लिए आरक्षित रखना । विशेष अवसरों पर महीने में एक दिन समाज के लिए अर्पित करना । दूसरों को भी कुछ समय के लिए क्यों न हो, समाजकार्य में जुट जाने की प्रेरणा देना ।

अन्यों के साथ मिल कर सामाजिक कार्य करने की प्रेरणा देना। इन सबके द्वारा हम समाज के लिए कोई न कोई योगदान देते हुए, अपना सामाजिक ऋण चुकाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए ।

सद्गृहस्थों के घरों में एक गाय, एक वयस्क व्यक्ति तथा अपना नहीं है ऐसा कोई भी एक पराया बच्चा पढ़ने के लिए रहना/रखना चाहिए – यही परंपरा की धारणा है ।

निर्धन

१. **निर्धनों को देख कर, क्या आपको वेदना होती है?या क्रोध आता है? या करुणा आती है?**

सामान्यत: अनेकों को यह विषय ध्यान में आना कठिन ही है। अनेक लोग वेदना का अनुभव करते हैं । कुछ लोगों को क्रोध आता है, तो कुछ और लोगों को करुणा आती है । लेकिन हमें उन सभीको मानवों की भाँति ही देखना चाहिए । उनकी स्थिति पर करुणा दर्शाते हुए, उनकी सहायता करने का मनोभाव विकसित कर लेना चाहिए । उनकी सहायता, वह भी यथासंभव शाश्वत व अनुकूलकारी होनी चाहिए । स्वामी विवेकानंद की 'दरिद्रनारायण' नामक कल्पना हम सब को भली भाँति अवगत होनी चाहिए ।

२. **क्या निर्धनता पाप है? या पाप का फल?**

अपने यहाँ जन्म-जन्मांतर की संकल्पना है। अत: निर्धनता अपने कर्मों के कारण आती है। यह पाप के कारण ही है, इसी की पुष्टि जन्म-जन्मांतर की कल्पना में निहित है। ईश्वर अनेक रीति से हमारी परीक्षा लेता है। उसी प्रकार आर्थिक दृष्टि से निर्धन होने पर भी, हमारा विश्वास यही होता है कि संस्कारों से कोई अन्य शक्ति प्रदान करते हुए, वह हमारी परीक्षा लेता है। इसीलिए निर्धन पाप भी नहीं है, या पाप का फल भी नहीं है। भौतिक आवश्यकता व संग्रह बुद्धि कम रखते हुए, केवल बाहरी दृष्टि को ही गरीब की भाँति दिखते हुए, अंतरंग में आत्मतत्व के निकटस्थ या आत्मश्री से युक्त भी हो सकते हैं।

३. क्या निर्धनों में भी उत्तम गुण हो सकते हैं?

निर्धन कहते ही नाक सिकोड़ने वाले लोग उनको चोर, झूठे, पैसों के लिये कुछ भी करने वाले ऐसी निश्वास रख लेते हैं। लेकिन, उनमें भी प्रामाणिकता, सत्यसंधता, प्रेम, विश्वास आदि सद्‌गुण अवश्य होते हैं। किंतु सबको ध्यान में रखना होगा कि इन गुणों, दूसरों की भावनाओं का आदर करने का स्वभाव ऊपरी दृष्टि से गरीबी या धनिकता पर निर्भर नहीं होता। क्या इसकी ओर हमारा ध्यान नहीं जाएगा कि निरे गरीब वनवासी बांधवों में एक भी भिखारी नहीं है, चोर नहीं है?

४. क्या आपके निर्धन मित्र हैं?

मित्र का लक्षण ही है, 'आपदि सुखे च समक्रियं' (सुख-दु:खों में समान रहने वाला) इसके लिए पैसा, स्थानमान का बंधन नहीं रहना चाहिए। अत: केवल निर्धन है, इसी एक मात्र कारण से किसी को भी दूर नहीं रखना चाहिए। कृष्ण-सुदामा की मैत्री कैसी थी? इसका स्मरण-चिंतन करना चाहिए।

५. क्या निर्धनों को दूसरों की भाँति सम्मान देते हो?

जैसे भी हो, वे भी मानव ही हैं। सबके लिए उपलब्ध सुविधा, सहकार्य, गौरव, आदर का भाव सहजसा होना चाहिए। हमें जान लेना चाहिए कि श्रीराम-निषादराज गुह में कितना गहरा नाता था? उसी प्रकार यह भी ध्यान में रखना होगा कि द्रुपद-द्रोण की मित्रता में यही निर्धनता बाधा बनी थी। हम सबको श्रीराम की भाँति ही बनना चाहिए।

६. आपको देखते ही क्या निर्धनों को डर लगता है? आदर होता है? या प्रेम, अभिमान उमड़ आता है?

हमें देखते ही निर्धनों में डर, मत्सर, गुस्सा पैदा होने के स्थान पर हमारे बारे में प्रेम-अभिमान-भरोसा उत्पन्न हो। हमें ऐसा स्वभाव प्राप्त करना चाहिए, ताकि अन्य लोगों में हमारी यह पहचान बन सकें कि धनवान होने पर भी यह गर्वहीन, विनयशील, सरलजीवी है।

भिखारी

१. क्या भिक्षाटन पाप है?

'भिक्षाटन पाप' है यह पाश्चात्यों का अभिप्राय है । अनेक लोग अनिवार्यत: दूसरों के सामने दीनता से माँगने का दृश्य आपने देखा होगा। उनकी वह स्थिति देखने पर, हमें भी वह पाप ही लग सकता है। किंतु, हमारे यहाँ ऐसी कल्पना है कि भगवान ने भी भिक्षाटन किया है। शिवजी का एक नाम 'भिक्षाटनमूर्ती' भी है । यह देश छात्रों को सब दूर भिक्षुकी (मधुकरी) कराने वाला देश था । अत: भिक्षाटन पाप नहीं है । अपितु, बिना भिखारियों का एक भी देश पूरे संसार में नहीं है। 'माँगने वाला भिखारी, बस कहने वाला धनवान' इस ऋषिवाक्य को ध्यान में लीजिए । साथ ही भर्तृहरी का यह श्लोक भी याद रखिए :

स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला ।
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ।।

"और चाहिए की आस जिसमें होती है, वही दरिद्र है; मन में तृप्ति रही, तो कौन धनवान? कौन गरीब?" (याने मन की तृप्ति ही महत्त्वपूर्ण है।)

२. बिना भिखारियों का कोई समाज है क्या?

१८३३ में मेकॉले ने बर्तानिया की संसद में उद्घोष करते हुए कहा था : 'यदि भारत को जीतना है, तो यहाँ की अस्मितास्वरूपी शिक्षा को बिगाड़ देना पड़ेगा; क्योंकि, इस मामले में ये लोग धनवान हैं । समूचे देश का परिभ्रमण करने पर, मैंने यहाँ एक भी

भिखारी नहीं देखा है।' अर्थात् इस देश में एक भी भिखारी नहीं था । बिना भिखारियों का समाज याने प्राय: वह भारत का ही है ।

३. भिखारियों की भली भाँति चिंता करने वाला समाज कौनसा है?

अनेक प्रसंगों पर, याने बच्चों के जन्मदिन, तीज-त्योहार, श्राद्ध के संदर्भ में, हम देखते हैं कि हमारे समाज के अनेक लोग अपने लिए अपरिचित ऐसे सैंकड़ों निर्धन लोगों को दानधर्म करते हैं । वैसा समाज याने केवल हिंदू समाज ही है । उनमें भी जैन या सिख पंथियों की सेवा अद्‌भुत होती है । पुण्य याने दूसरों को सुख देने की क्रिया से आने वाला फल है । पुण्य की यह कल्पना जब तक रहेगी, तब तक लोग भिखारियों याने आतुरों को भली भाँति सेवा करते ही रहेंगे । यदि यह भाव ही न रहा, तो भिखारियों की दायित्व सरकार को ही वहन करनी पड़ेगी।

४. निर्धनमुक्त समाज हेतु हम क्या कर सकते हैं?

अन्न, आरोग्य व अक्षर सबको नि:शुल्क प्राप्त होने स्थिति आयी, तो समूचे समाज के सब लोग सक्षम बन जाते हैं । अत: समाज स्वस्थ बनकर रहता है । ऐसी सतर्कता बरतनी चाहिए कि ज्ञान के कारण कोई भी आलसी न बने । कोई भी भिक्षाटन पर उतारू न हो, इस प्रकार उनको उद्योग या सामाजिक सुरक्षा प्रदान की गयी, तो भिखारी ही नहीं बचेंगे । लेकिन यह स्थिति आना बहुत ही कठिन है । उसके लिए भिखारियों का तिरस्कार न करते हुए, उनकी ओर अनुकंपा की दृष्टि से देखते हुए सहायता करनी पड़ेगी। वैसा हुआ, तो भिखारियों की संख्या बढ़ना, केवल एक कल्पना मात्र रहेगी। यह सबका अनुभव रहा है कि भिक्षुकों के बारे में अति आदर होने के कारण ही भारत में भिक्षुक दिखायी नहीं देते थे ।

निराश्रित बच्चे

१. निराश्रित बच्चे याने कौन?

जिनके माँ-बाप, सगे-संबंधी कोई भी नहीं होते, वे ही निराश्रित बच्चे कहलाते हैं। सामान्य भाषा में कहना हो, तो वे केवल राम-भरोसे ही होते हैं । क्योंकि, वे अपने बचपन से ही, या यूं कहिए कि जन्म से ही अपने संबंधियों से कटे हुए होते हैं । वे पूरा दिन क्या करते हैं? कहाँ रहते हैं? इसका पता चलते ही एक ओर, डर पैदा होता है; तो दूसरी ओर, करुणा उत्पन्न होती है । सारा दिन रास्तों पर ही गुजारते हुए, रात में कहीं तो भी सोकर विश्राम/नींद करते हैं । उनको यही पता नहीं होता कि अपने अभिभावकों, जन्मदाताओं द्वारा लालन-पालन, लाड-दुलार याने क्या होता है? ऐसे बच्चे पशुप्राणी जैसा ही जीवन जीते हैं । फटी-पुरानी चीजें, कूड़ा-कचड़ा बटोरते, समेटते हैं । भीख माँगते हैं । बड़े हो जाने पर, विभिन्न बुराइयों, आदतों और परिस्थिति के दबावों तले दब जाते हैं।

२. ये मार्गों के बच्चे कैसे जीते हैं? कहाँ रहते हैं?

सामान्यत: उनका जीवन बहुत ही विचित्र होता है । कई बार डरावना भी होता है । सुबह जगने के बाद, कहीं तो भी शौचकर्म समाप्त करते हुए, कहीं पर तो घूमते-घामते, बस/रेल स्थानकों पर चक्कर काटते, भीख माँग कर जीते रहते हैं । वे पैसा कमा कर, मनचाहे रीति में खर्चा करते हैं । दोपहर में बगीचों, बस अड्डों आदि स्थानों पर विश्राम करते हुए, शाम तक सब दूर घूमते हुए, उनका सामान्य आवास बने किसी शेड, झोंपड़ी, टूटे मकान आदि स्थानों पर पहुँचते-पहुँचते रात हो जाती है । अपना एकांत बिताने के लिए इनमें से

अनेक वच्चें विभिन्न प्रकार की बुरी आदतों के शिकार बन जाते हैं। कुछ चोरी, और कुछ अत्यंत अयोग्य ऐसे दुष्कर्मों में लिप्त होकर समाजकंटक भी बन जाते हैं।

३. क्या आप उनकी पहचान कर सकते हैं?

उनको पहचानना कठिन नहीं है । थोड़ा सा ध्यान देने पर, वे जहाँ-तहाँ दिखायी देते हैं । वे अपने ही हैं, ऐसा भाव धारण करते ही, हमें भी उनकी पहचान करना तथा उनको ऊपर उठाना संभव हो सकता है । उसके लिए हमारे अंदर आवश्यकता है केवल उनकी पहचान कर सकने वाली करुणामयी आँखों की!

४. क्या उनको सुधारा जा सकता है?

'बोई जैसी फ़सल, बढ़ाया जैसा पेड़' इस उक्ति के अनुसार इनको समाज में किस प्रकार का आचरण मिलता है, वैसे ही फल की अपेक्षा कर सकते हैं । अत: समुचित संस्कारों द्वारा उनमें सुधार लाया जा सकता है । मानवी प्रेम के अभाव में केवल संदेह-द्वेष आदि के बीच ही बढ़ने वाले इन बच्चों को सुधारना आरंभ में कठिन लगा, तो भी अवश्य संभवनीय है ।

५. उनको कैसे सुधार सकते है? कौन सुधारेगा?

हम इसी समाज के अंग हैं; वे भी इसी समाज के भाग हैं । अत: हमें उनको विशेष स्तर का प्रेम देकर सुधारना होगा । केवल प्रेम ही उनको सुधार सकता है । कई संघ-संस्थाएँ भी इन कामों का निर्वहन कर रही हैं । रास्तों के इन बच्चों को संस्कार ही अति श्रेष्ठ सी औषधि है । स्वच्छंदता से बढ़ने वाले इन बच्चों को घर, आश्रम आदि सब कारागृह से लगें तो भी, उसमें कोई आश्चर्य नहीं है । लेकिन सहनशीलता के साथ उनकी देखभाल करते गए, तो वे वहाँ रह पाते हैं । बेंगलूरु की नेले जैसे केंद्र ही इसके साक्ष्य होते हैं ।

६. आपके घर के सामने ही कोई निराश्रित बच्चा दिखायी दिया, तो आप क्या करोगे?

बिना किसी डर के, उस बच्चे को तत्काल आवश्यक चिकित्सा, आहार देना आवश्यक हो, तो उसे वह देना चाहिए । क्रमश: उसके साथ अपना सख्य बढ़ा कर, हर

दिन हमारे यहाँ वह आवे, ऐसा करना या उसके लिए कोई अलग व्यवस्था करने के लिए

तैयार हो जाना चाहिए । यदाकदा, कोई छोटा बच्चा हो, तो पुलिस को उसकी खबर देते हुए, किसी योग्यसे अनाथ शिशु निवास, बाल कल्याण आश्रम आदि के यहाँ पहुँचाना चाहिए।

७. उनको आहार, निद्रा, कपड़े, शिक्षा, प्रेम, उत्तम संग दिलाने के लिए क्या किया जा सकता है?

इस प्रकार प्राप्त बच्चों को प्रथम समुचित सुरक्षा देनी चाहिए । उनके आहार, निद्रा, कपड़े, शिक्षा, प्रेम, उत्तम संग दिलाने के यथासंभव प्रयत्न करने चाहिए । ये सब करते समय, 'वे विशेष हैं' इसका निर्धारण मन में करते हुए, बातों में सहजता बरतनी चाहिए । उनके साथ उनके जैसे ही मिलनसार बातचीत में जुट जाकर, प्रेम-आनंद आदि सब कुछ क्रमशः बढ़ाते हुए, वे हमारे आत्मीय बनने का भाव उत्पन्न करना चाहिए । उसी क्रम में वे हमारे संस्कारों से आबद्ध हों, ऐसा भी करना चाहिए । एक बार हमारा प्रेम, स्नेह का चस्का उनको लग गया, तो वे बहुत जल्दी हमारे जैसे ही योग्य बन जाते हैं ।

८. क्या उनके लिए काम करने वाले कोई हैं?

हिंदू सेवा प्रतिष्ठान के नेले आदि (निराधार बच्चों का पुनर्वास करने वाली) संस्थाएँ इस दिशा में कार्य चला रही हैं । इनके साथ ही कुछ ईसाई, इस्लामी संस्थाएँ भी इस काम में जुटी हुयी हैं; लेकिन उनमें से कुछ संस्थाएँ मतांतरण में भी लगी हुयी हैं । इसीलिए, इस प्रकार के बच्चों को प्रवेश कराते समय, ध्यानपूर्वक सुयोग्य संस्था में ही उन्हें प्रवेश दिलाना चाहिए । अनेकानेक संस्थाएँ इसके लिए परिश्रम कर रही हैं । अतः हमें इस बात को ध्यान में लेना होगा कि अपने ही इन सब लोगों के उत्थान के लिए, अपने ही समाज के सैंकड़ों लोग कार्यरत हैं ।

९. क्या उनको आपकी सहायता मिलती हैं?

सर्वप्रथम उन्हें हमारा विश्वास चाहिए । दूसरी बात याने, जनसामान्यों के सहज .जीवन को धक्का न पहुँचें ऐसी जीवनशैली उनमें बिंबित करने के प्रामाणिक प्रयास करने होंगे । उनको अविभाजित प्रेम देना होगा । उनके जीवन की सुरक्षा देनी होगी। उसके साथ ही, उनको प्रवेश की गयी हुई संस्थाओं को भेंट देते हुए, हमें ऐसा प्रेम दर्शाना होगा कि वे हमारे कुटुंब का मानो हिस्सा ही हैं । उनकी आवश्यकता पूर्ण करते हुए, वैसे

बालक-बालिकाओं के लिए कार्यक्रमों का आयोजन कराके, उनमें उनको सहभागिता दिला कर, उनको संस्कार प्रदान करना आदि बातें हम कर सकते हैं । इसके साथ ही, उन बच्चों को तीज-त्योहारों पर अपने घर बुला के लाना, अपने यहाँ के वरिष्ठ जनों को वैसे बच्चों के केंद्र दिखाते हुए, वे भी इन बच्चों में रुचि लें ऐसा कर सकते हैं।

१०. क्या आपने पूर्वाश्रम के निराश्रित बच्चों को उत्तम जीवन बिताते हुए देखा है?

उत्तम प्रकार से बढ़ाने पर, सभी वस्तुएँ व व्यक्ति भी अपना मूल चैतन्य ही प्रकट करते हैं । उसी प्रकार, हमारा मनोभाव ऐसा बनना चाहिए कि हम इन रास्तों के बच्चों में स्थित उसी मूल चेतना को पहचानें । इस प्रकार, हमें उनको प्रेरणा देनी चाहिए कि वे आगे चल कर समाजाभिमुखी बन के, अपना जीवन चलावें । इतिहास में चंद्रहास नामक एक अनाथ बालक भी आगे जाकर, राजा बनने का प्रसंग उल्लेखित हुआ है। बेंगलूरु के 'नेले' (आश्रय) नामक संस्था के बच्चे लोगों के घरों में एक-दो दिन के लिए रहने गए थे, तब उनको यह अनुभव आया कि 'नेले' के बच्चों के कारण, उस घर के बच्चे और भी अधिक अच्छे बने ।

विधवाएँ

१. **विधवाओं के बारे में आपके घर वालों का क्या अभिमत है?**

'न विद्यते धवः यस्याः सा विधवा' जिसका पति नहीं होता, उसे विधवा कहने की पद्धति है । याने 'वह नारी जिसके पति का निधन हुआ है ऐसा अर्थ है।' वह भी एक सजीव मानव ही है, ऐसा अपना भाव होना चाहिए । किसी कारणवश उस पर पति मृत्यु का आघात हुआ और वह नियति का शिकार हुई, तो कोई भी व्यक्ति क्या कर सकता है? इसीलिए, उनकी अवमानना नहीं करनी चाहिए । उनको भी मान–सम्मान से जीने का अवसर प्रदान करना चाहिए।

२. **क्या वे परिवार एवं समाज के लिए अमंगल हैं? कलंक हैं? बोझ हैं?**

पुराने समय में नारी जीवन का उद्‌देश्य समाज के संस्कारों का निर्माण व नियंत्रण था । याने कोई भी स्त्री अपना जीवन सार्थक्य मातृत्व से पाती थी । आज भी वैसा ही एक घोषवाक्य सब दूर सुनायी देता है । वह है, एक शिक्षित नारी, 'एक शिक्षित परिवार।' इसके लिए पति आवश्यक है । जब उसके जीवनोद्‌देश्य रूपी पति ही न रहा, तो उसके जीवन का क्या प्रयोजन रहेगा? ऐसा सोच कर वह किसी भी मंगलमय कार्य में स्वयं अपनी प्रेरणा से ही नहीं जाती थी । केवल इसीलिए ही उसे 'अमंगल' कह कर, कोसने की कोई जरूरत नहीं; और उसे 'कलंक' कहने की बात तो उठनी ही नहीं चाहिए । नियति के खेलानुसार, पति के विषय में जैसे उनका भाग्य दुःख से भरा है, वैसे ही हम भी किसी न किसी विषय में भाग्यविहीन ही नहीं हैं क्या? तो फिर क्या हम भी

कलंकित नहीं हैं? समाजपुरुष के सभी अंगांगों की रक्षा करना हमारा आद्यकर्तव्य है। वे भी इसी समाज के अंग ही हैं। उनकी ओर व्यापार-व्यवहार की दृष्टि से देखते हुए, उनको बोझ नहीं मानना चाहिए। बेवाओं के साथ अमुक रीति से बरतना चाहिए, ऐसा किसी भी शास्त्रों में कुछ भी नहीं बताया गया है। ये सब विकलताएँ केवल मुस्लिम आक्रमण के कारण ही आयी हैं।

३. विधवाविवाह के बारे में आपका अभिमत क्या है?

राजपूत वंशों में जौहर सन्नद्ध अनेक महिलाओं की रक्षा करते हुए, उनसे विवाह रचा कर जीवन चलाने वाले पुरुषों के उदाहरण अनेक हैं। इन विवाहों को 'कामप्रेरित'कहने के बदले, यह कहना अधिक उचित होगा कि वे भावप्रेरित, कर्मप्रेरित व धर्मप्रेरित थे। किसी एक की रक्षा करते हुए अपना जीवन चलाना चाहिए, इसी भाव को प्रकटित करने वाली हिंदू संस्कृति के मूल चिंतन का विरोध नहीं होना चाहिए।

४. क्या पुनर्विवाहित विधवाओं की ओर गौरव से देख सकोगे?

समाज के सम्मान की रक्षा करना ही धर्म का उद्देश्य है, ऐसा मानने वाले सभी गौरव के पात्र होते हैं। अत: वैसा ही सामाजिक स्वास्थ्य को न बिगाड़ते हुए, किसी को बाधा न पहुँचाते हुए और दूसरों को सुख व हर्ष प्रदान करते हुए, वह धर्मकार्य के लिए प्रेरित करती हैं। उसका सम्मान अवश्य करना चाहिए। वह अब सुहागन है।

५. क्या तब उसे सुरक्षा-आदर की सहायता मिलेगी?

अति बलशाली रही स्त्री कुछ विषयों में अबला ही है। इसीलिए इसमें कोई संदेह नहीं है कि विधवा का पुनर्विवाह होने से, उसे सुरक्षा मिलती है; गौरव भी प्राप्त होता है। पुनर्विवाहित स्त्री अपने पति के साथ ढंग से रहती है, तो उसे गौरव अवश्य मिलता है। उसी प्रकार, बिना विवाह के, वैराग्य के साथ अकेली रहने वाली स्त्री को भी उतना ही नहीं, तो उससे भी अधिक गौरव प्राप्त होता है। संन्यासी को देय गौरव उसे भी देना चाहिए, ऐसा शास्त्रों का अभिप्राय है।

६. क्या आप उन्हें होने वाली पीड़ा, अपमान दूर करने हेतु प्रयत्न करते हो?

किसी को भी पीड़ा, दु:ख या अपमान नहीं हो। उसमें भी 'पति के मृत्यूपरांत बिना पुनर्विवाह के रहने वाली विधवाओं को अत्यंत गौरव से देखना चाहिए' यह शास्त्रवचन है। अत: हमें विशेष सावधानी बरतनी होगी ताकि हमारे घरों में विधवाओं को दु:ख, अपमान न झेलना पड़े।

मृत्य, संस्कार, श्राद्ध

१. **क्या आपने किसी का अंतिम संस्कार देखा है?**

अंतिम संस्कार याने सभी समुदायों द्वारा की जाने वाली एक मरणोपरांत संस्कार विधि है । कुछ चिता पर चढ़ा के अग्निस्पर्श करते हैं, तो कुछ मिट्टी में गाड़ते हैं। मृत्यु के बाद कुछ ही धंटो/दिनों के अंदर किया जाने वाला यह एक कर्म है। भारत में यह सोलह संस्कारों में से एक है तथा मानव के प्रमुख संस्कारों में से भी एक है। अत: यह सबको ध्यान में लेने योग्य मुख्य संस्कार है ।

२. **आपने किसी अंतिम संस्कार में भाग लिया है?**

अंत्यसंस्कार एक धार्मिक विधान है व सामाजिक भी । शव का दहन करना हो या गाड़ना, यह किसी भी जीव के मूलभूत अंश स्वरूपी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश नामक पंचभूतों में उसे पुनर्विलीन करना ही इस अंत्यसंस्कार का मूल उद्देश्य है । प्राण जाने के पश्चात् बचे पार्थिव शरीर/शव का महत्व नहीं होता । अत: उसे अधिक काल तक रखना उचित नहीं । रख भी नहीं सकते । अत: उसे जितनी शीघ्र हो सकें उतनी शीघ्र प्रकृति में विलीन कर देना चाहिए । अंत्यसंस्कार में भाग लेना मनुष्य की दृढ़ता बढ़ाने के लिए एक सहायकारी बात है ।

३. **अंतिम संस्कार कितने प्रकार के हैं?**

अंतिम संस्कारों की विधाएँ अनेक हैं । शव का दहन, दफन, नदी या समुद्र के

जल में प्रवाहित करना, उसे प्राणी–पंछियों को खाने के लिए छोड़ देना आदि । संबंधित देश, मत, परिवारों की रूढ़ियों के अनुसार पद्धतियाँ हैं । सभी समुदायों में भी गौरव–आदर के साथ शव का विसर्जन करने की विभिन्न रीतियाँ हैं । वे सभी सही हैं । पंचमहाभूतों से बना यह शरीर फिरसे उन्हीं के अंदर विलीन करना ही अंतिम संस्कार कहलाता है ।

४. क्या अंतिम संस्कार करना ही चाहिए?

हाँ, करना ही चाहिए । अन्यथा शव सड़ता है और रोगों का प्रसार होता है । घर में शव रहा, तो सभीका मन, बुद्धि उसी के चहुँओर रहता है; और लोग केवल उसी के बारे में सोचते रहते हैं । यह स्थिति स्वास्थ्य व दैनिक कामकाजों के लिए सहायक नहीं होती । अत: हमारे शास्त्रों में शवसंस्कार शीघ्रातिशीघ्र निपटाने का आग्रह किया गया है । ऐसी स्थिति में शव के समीप एक दीपक जला के रखना चाहिए। कुछ लोगों को जागते हुए प्रतीक्षा करनी चाहिए ।

५. अनाथों का अंतिम संस्कार करने वाले कौन हैं?

'अनाथो दैवरक्षक:' ऐसा कहा गया है । तद्नुसार, अनाथों के शवसंस्कार करने वाले लोग बहुत ही श्रेष्ठ होते हैं । धर्मनिष्ठ लोग बताते हैं कि ऐसे अपरिचित, अनजाने लोगों का अंतिम संस्कार किया, तो सहस्र गोदान करने का पुण्य मिलता है । समाज के सहयोग से ऐसे लोगों का अंतिम संस्कार करना चाहिए ।

६. मृत्यु सहज लगती है क्या? या डर लगता है?

मरणं प्रकृति: शरीरिणां विकृति: जीवितमुच्यते बुधै:।
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तु: ननु लाभवानसौ।।

कालिदास के रघुवंश में आया यह वसिष्ठ जी का वचन है । 'मृत्यु शरीर का सहज गुण और जीवि ही विकृति है । जीव एक क्षणकाल जीवित रहा तो भी, माना जाता है कि उसने ही लाभ अर्जित किया है । ऐसा होने पर भी, जातस्य मरणं ध्रुवम्। ऐसा बताया जाने पर भी डर काहे का? मरण अत्यंत सहज है । प्राय: सगे-संबंधियों को गँवा देते है, यह बात सही होते हुए भी, उसके लिए दु:ख कर सकते हैं; परंतु उसे घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है । 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्,' (हर मरा हुआ जन्म लेता

है; जन्म लेने वाला हर कोई मरता है।) यही कर्मफल, कर्मसिद्धांत है । अत: बिना किसी भय के, आवश्यक सभी कर्म करते रहना चाहिए ।

७. डरने का कारण क्या है?

अपनी विषय-वासना व इस शरीर का मोह ही भयभीत होने का कारण है । आत्मा व शरीर का संबंध ज्ञात न होने के कारण मृत्यू के बारे में भय उत्पन्न होता है । कहा गया है : 'सुबह जल्दी उठ कर, ज्ञानार्जन करते हुए, दोपहर में परिश्रम से काम करते हुए, रात में सुख-चैन की नींद करनी चाहिए।' यहाँ सुबह, दोपहर व रात याने बाल्य, जवानी व बुढ़ापा है। जीवन स्वार्थ के लिए है ऐसा सोचने वालों व जीवन ही शाश्वत है ऐसा मानने वालों में इस प्रकार का डर अति सहज होता है । किंतु इसकी आवश्यकता नहीं। मृत्यु का स्मरण करते या देख कर डरने की आवश्यकता ही नहीं।

८. संसार में वह कौन है जिनकी मौत नहीं होती?

संसार में सदैव बच के रहने वाली वात याने केवल धर्म ही है। सब के लिए मृत्यु है । लेकिन धर्म को मौत नहीं है; यही शाश्वत है ।

९. कैसा मरण अच्छा होता है?

अनायासेन मरणं विना दैन्येन जीवनम् ।
देहि मे कृपया शम्भो त्वयि भक्तिमचञ्चलाम् ।।

'हे भगवन्, मुझे बिना आयास की मृत्यु व दैन्यरहित जीवन का अनुग्रह कीजिए। आपमें अविचल भक्ति की कृपा कीजिए।' ऐसी हर दिन प्रार्थना करनी चाहिए।

१०. मृत्यु के मध्य जीने वाले कौन हैं?

श्मशानघाट के कर्मचारियों को हर दिन शवों का दर्शन करना ही पड़ता है । उसके साथ, शव के सगेसंबंधियों का आर्तनाद, वेदनाएँ आदि का अनुभव भी सहना पड़ता है । इन्हीं के साथ, अनेक वैद्यों को भी अनेकों की मृत्यु के बीच ही अपना कार्य करना होता है । समरभूमि में जूझते हुए मरने वाले सैनिक सबसे श्रेष्ठ हैं । अपने साथी मृत होते देखते हुए भी अपने कर्तव्य में जुटे रहने वाले ये योद्धा योगियों की भाँति ही श्रेष्ठ व पूज्य होते हैं ।

११. क्या घर के पूर्वजों का श्राद्ध करना चाहिए? क्यों?

घर के पूर्वजों का स्मरण करते हुए, उन्हें गौरवादर-नमन आदि अर्पित करना ही श्राद्ध कहलाता है । श्रद्धा से मनाना ही श्राद्ध होता है । यहाँ उनको सद्‌गति प्राप्त हो, ऐसा सदाशय होता है । उनकी श्रेष्ठता का पुनर्मनन होता है । उससे मानवों में कृतज्ञता, धैर्य, दूरदृष्टि, परिपक्वता आती है । महालय अमावस, पितृ पक्ष आदि उनको गौरवादर अर्पित करने के लिए ही मनाए जाते हैं । श्राद्ध कर्म करने से घर के बच्चों पर उत्तम संस्कार होते हैं । अपने माता-पिता के प्रति श्रद्धा बढ़ती है ।

यंत्र

१. **क्या आपको पता है कि आज यंत्र युग है व अब अनेक नए-नए यंत्र निर्माण हो रहे है?**

नए-नए यंत्र आने की बात ने बालकों को भी पता चलने तक का वेग पकड़ लिया है । पहले मनुष्य के शारीरिक श्रम कम करते हुए उसका जीवन सुलभता से चलाने हेतु यंत्र आए । अब क्रमश: मनुष्य की बुद्धिशक्ति व बौद्धिक श्रम भी कम करने वाले यंत्रों की संख्या बढ़ रही हैं। टेलिविजन, मोबाइल आदि मनुष्य के मस्तिष्क पर तीव्र परिणामकारी होते हैं । कम्प्युटरों की वात भी वही है । अब नैनो तंत्रज्ञान भी आया है। इसी प्रकार तीव्र वेग से बुद्धिगत होकर, मनुष्य के हाथों में यंत्र होने के स्थानपर, मनुष्य ही यंत्र के हाथों का गुड्डा बनने के दिन भी आ सकते हैं अथवा मनुष्य स्वयं ही एक यंत्र बन सकता है ।

२. **यंत्र मनुष्य के श्रम को कम करते हैं । क्या यह सही नही है कि अनेक बार बीसियों-सैंकड़ों लोगों का काम एक ही यंत्र करता है?**

मनुष्य के श्रम कम करने हेतु ही यंत्रों का निर्माण हुआ है । अत: यंत्रों के बारे में कौतूहल-आकर्षण बढ़ कर, मनुष्य यंत्रों की अपेक्षा करता है; उन्हें क्रय करता है। जैसे-जैसे यंत्रों का सामर्थ्य बढ़ता है, वैसे-वैसे उनके ग्राहक भी अधिक होते जा रहे हैं ।

३. इस प्रकार यंत्रों की संख्या ही बढ़ गयी, तो क्या मनुष्यों का काम कम होगा या बढ़ेगा?

एक यंत्र यदि दस आदमियों का काम करता है, तो नौ लोगों का काम कट जाता है । वे सब बेकार होते हैं । यही कड़वा सच है ।

४. क्या इसका विश्वास है कि उद्योगों की बढ़त के साथ रोजगार भी बढ़ रहे हैं?

उद्योग बढ़ गए, तो आसपास के स्वरोजगार नष्ट हो जाते हैं । स्वावलंबी बनकर जीने वाले किसान, व्यापारी, सब प्रकार के गृहोद्योगों में कार्यरत लोग सब नौकर बन जाते हैं । आज सब दूर फैलते जा रहे विशेष आर्थिक क्षेत्रों (SEZ) के कारण यही होने जा रहा है । अपने स्थान में मालिक रहा व्यक्ति अब किसी उद्योग क्षेत्र का अनामिक कार्मिक बन जाता है । उसे पैसा अधिक मिलता है, यह सच होते हुए भी; उसका स्थानमान, प्रतिष्ठा, आत्मसम्मान कम होता है।

५. क्या रोजगार की अपेक्षा से ग्रामीण युवकों का उद्योग क्षेत्र की ओर होता स्थलांतरण देहातों के लिए अच्छा है या बुरा?

आरंभिक दिनों में ऐसा लगता है कि केवल अपने कुटुंब व गाँव की भलाई की चिंता करने वाले लोग रोजगार की खोज में गए, तो गाँव का भला ही होगा । किंतु गाँव छोड़ के शहरों में जाने वालों को वहाँ की अनुकूलताएँ, हाथ की दूरी पर उपलब्ध असंख्य सुविधाएँ, पैसा रहा तो बस । चाहे जो वस्तु मिलती है ऐसे वातावरण आदि की भ्रांति के कारण, वे वहीं बस जाते हैं; अपना गाँव भूल जाते हैं । गाँव में क्या रखा है? ऐसा तिरस्कारभाव आता है। इस प्रकार स्वाभिमानभरे श्रमपूर्ण जीवन वाले गाँव से भी सुख-सुविधाओं से युक्त शहर अधिक आकर्षक व अपनासा लगता है । इस प्रकार, गाँवों की प्रतिभाएँ, क्रियाशीलता आदि शहरों की ओर गयीं, तो देहातों में केवल बूढ़े ही बच जाते हैं । इससे गाँव-देहात धीरे-धीरे मर जाते हैं । आज के भारत का कड़वा सच यही है कि गाँवों में जन्मने वालों व रहने वालों की संख्या कम हो रही है।

६. यदि खेती करने वाले किसान, स्वरोजगार पर निर्भर लोग अपना निजी कामधाम त्याग कर, नौकरी हेतु गए, तो लाभ किसका होगा?

शहरीकरण से केवल उद्योगपति, कुछ दलालों, ठेकेदारों, राजनेताओं मात्र

कालाभ होगा। विवेकी लोगों के अनुसार इससे देश व समाज की शाश्वत रूप में हानि ही होगी। गांधीजी की `Industrialise and Perish' (औद्योगीकरण करो और नष्ट हो जावो) यह बात सही साबित हुई है ।

७. क्या यंत्रों का निरंतर उपयोग अच्छा है? या बुरा?

'अति होने पर अमृत भी विष होता है ': यह सार्वकालिक सत्य है । मनुष्य यंत्रों पर ही निर्भर होने के कारण वह मनुष्य न रह कर स्वयं यंत्र ही बन जाता है । विभिन्न बुरी आदतों का शिकार बनता है । संस्कृतिशून्य बन जाता है । बीमारियों-बुराइयों से घिर जाता है ।

८. यंत्र मनुष्य के हाथों मे रहने चाहिए या मनुष्य यंत्रों के हाथों में?

जैसे-जैसे यंत्र का उपयोग बढ़ता है, मनुष्य यंत्र का दास बनता जाता है। चिंतन कम होता है; बिना यंत्र के वह स्तब्ध हो जाता है। इस प्रकार वह यंत्र के हाथों का गुलाम बन जाता है। आजकल हो रहा मोबाइल का इस्तेमाल उसी का ही एक उत्तम उदाहरण है।

९. 'यंत्र का उपयोग कैसे, कहाँ व किसे करना है?' इस सोच के साथ-साथ, क्या 'उसका उपयोग कैसे, कहाँ व किसे नहीं करना है? यह भी सोचना आवश्यक नहीं है?'

मनुष्य के जीवन में पाप-पुण्य, विधि-निषेध अवश्य होने चाहिए। आरंभ में उन्हें सिखाना होगा । कार में जैसा एक्सलरेटर होता है, वैसा 'ब्रेक' भी होता है । बगैर ब्रेक के कार का उफयोग कोई भी नहीं करेगा। उसी प्रकार, मनुष्य द्वारा यंत्रों का उपयोग करते समय, उनसे संबधित निषेधों को भी जानते हुए, उनका पालन करना चाहिए ।

१०. यंत्रों के कारण प्राप्त अतिवेगलाभदायक है अथवा हानिकारक?

अतिवेग यह शब्द सापेक्ष है। अति याने कितना? ध्वनि का वेग, प्रकाश का वेग, मनोवेग इन शब्दों की तुलना में विज्ञानी यंत्रों का अन्वेषण/निर्माण कर रहे हैं। किंतु विवेकसंपन्न लोगों की इतनी ही अपेक्षा है कि वह 'भस्मासुर' न बनें । परंतु, लगता है कि उनको निराश होना पड़ेगा। आज के वेग का पागलपन सर्वनाश का कारण बनने के लक्षण ही अधिक हैं। आजकल सुनायी दे रहें विमानों की टक्कर, उपग्रहों की टक्कर आदि शब्द ही आगामी विनाश के सूचक है। यह समझने के लिए सहनशीलता की आवश्यकता है कि अतिवेग के कारण होने वाला लाभ एक गुना हो, तो उससे हो रही हानि १०० गुना है।

जैविकों व रासायनिकों का उपयोग

१. **क्या आपको पता है कि खेती में जैविक व रासायनिक ऐसी दो विधाएँ हैं?**

खेती के संबंध में सोचने वाले सभी को इन दोनों प्रकार की खेती के बारे में भी पता है। बीज, खाद, कीटनाशक आदि सब आज रासायनिकों से तैयार किए जाते हैं।

'हरित क्रांति' नामक आंदोलन की सफलता के लिए अति प्रचारित पाश्चात्य कृषि पद्धति रासायनिक पद्धति है । इससे आरंभ में खेती का विकास होकर, अधिक फ़सलों के कारण किसान धनवान तो बन गए । परिणामस्वरूप हल, बैल आदि बेकार होकर, आजकल उनकी स्थान पर ट्रैक्टर, ट्रेलर दिखायी दे रहे हैं । लेकिन, इनके निरंकुश उपयोग से जमीन, जल, वायु, आकाश सब कुछ कलुषित होकर, अपनी शक्ति-क्षमता ही खो बैठे हैं। इस पर विश्वास करने वाले किसान आज हजारों-लाखों की संख्या में आत्महत्या कर चुके हैं; कर रहे हैं ।

इस प्रकार, इस समस्या का समाधान खोजने वाले लोग फिर से एक बार अपनी पारंपरिक कृषि पद्धति अर्थात गो-आधारित जैविक कृषि पद्धति का अवलंब व विकास करने की इच्छा संकल्प से प्रयोग कर रहे है और उसके अनुकूल परिणाम भी दिखायी दे रहे हैं । अत: आज जैविक व रासायनिक ये शब्द जनजनित हुए हैं ।

२. **हरित क्रांति के नाम पर रासायनिकों से बनाए खाद, कीटनाशक, संगोपक आदि क्या हमारी दृष्टि में लाभदायक हैं; यां हानिकारक?**

यह सच है कि प्रारंभ में रासायनिक वस्तुओं में किसानों तथा व्यापारियों की

लाभ पहुँचाया । लेकिन, यह उससे भी बुरा सच यह है कि इनके बढ़ते उपयोग के कारण उनके विषों से समूची प्रकृति का नाश होता गया । जमीन बंजर बनती गयी । अत्यधिक रसायनों को उँडेलने पर भी, अच्छी फ़सल मिलना रुक गया । रोग बढ़ रहे हैं । किसान के सहयोगी जानवरों व विभिन्न प्रजाति के कीटों का नाश हो रहा है । इसीलिए इसका विरोध करते हुए प्रकृति की रक्षा करने हेतु समूचे संसार में बृहत् आंदोलन चलाए जा रहे हैं ।

सभी प्रज्ञावान लोग भी कृत्रिम लाभ दर्शाने वाले रसायनों के अनियंत्रित उपयोग का विरोध कर रहे हैं; हमें फिर से जैविक खेती की ओर मुड़ने पर बल दे रहे हैं ।

३. क्या आपको पता है कि इन रसायनों के कारण ही सहज रूप में परिसर में पाए जाने वाले तितली, क्रिमि, कीट, मेंढक, पंछी, साँप, आदि क्रमशः नष्ट हो रहे हैं?

रासायनिक उत्पाद विषैले हैं । उनका अनिर्बंध उपयोग होता ही रहा है । फसलविरोधी कीटों का नाश करने हेतु प्रयोगित कीटनाशक द्रव्य पानी, हवा, जमीन में मिल कर सभी प्रकार के जीवजंतुओं का नाश कर रहे हैं । यह सबके अनुभव आयी बात है कि मेंढक, चिड़िया, भ्रमर आदि विविध जैव प्रजातियाँ (Species) विनष्ट हो रही हैं ।

४. रासायनिक खादों से जमीन बंजर हो रही है,अतः क्या हम बिना उनके प्रयोग के अधिक फ़सल उगा सकते हैं? यदि वह असंभव हो, तो बढ़ते मानव समूह को अनाज कैसे उपलब्ध करा सकेंगे?

यह बात शतशः सच है कि रासायनिक द्रव्यों के उपयोग से जमीन बंजर हुयी है व फ़सल कम हुयी है । लेकिन, मानवों की संख्या बढ़ रही है न? उन सबको अनाज कैसे उपलब्ध कराना? इस डरावने प्रश्न का उत्तर संसार के सभी देशों के कृषितज्ञों ने बड़े धैर्य से दिया है कि जैविक खेती पद्धति का बुद्धिभावी से अवलंब करने से आज के संकट से पार होकर, आने वाली चुनौतियों का सामना हम कर सकते हैं। सबको अन्न दे सकते हैं, ऐसा उन्होंने केवल कहा ही नहीं; वे कर के दिखा रहे हैं । स्थानिक कृषि प्रदेशों के साथ विभिन्न पद्धतियों का समायोजन करते हुए, किसानों के लिए वे आशाकिरण बन रहे हैं ।

५. **क्या बिना रासायनिक द्रव्यों के सुखी जीवन संभव है? सभी औषधियाँ रासायनिक द्रव्य ही हैं; अत: उनके विना कैसे जी पाएंगे?**

संसार में कुछ भी निरुपयुक्त नहीं है । सबमें किसी विशिष्ट परिवेश में उपयुक्त होने का गुण है । अत: बगैर रासायनिक द्रव्यों के जीवन चलाइए, ऐसा कहना अतिरेक की बात होगी । 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' यह एक व्यावहारिक सत्य है । इसीलिए, खेती, अनाज सुरक्षा आदि के लिए रासायनिक द्रव्यों का अति-उपयोग टाल दिया तो पर्याप्त है। रासायनिक द्रव्यों से ही जीवरक्षा होने की अनिवार्यता आ पड़ी, तो उसका उपयोग अवश्य कीजिए । पर यह सिखाना आवश्यक है कि अन्य समयों में परिसरानुकूल, विषरहित ऐसी जैविक खेती पद्धति का ही अवलंब करें ।

६. **पानी मनुष्य के लिए अत्यावश्यक है। लेकिन क्या आपको पता है कि भूजल का स्तर गिर रहा है?**

सबको ज्ञात है कि पानी मनुष्य के लिए बहुत आवश्यक है । लेकिन पानी कम हो रहा है । यह सबको विदित नहीं है कि भूम्यांतर्गत जल का स्तर गिर रहा है । धूप, हवा की भाँति ही, वर्षा से पानी मिलता है । परंतु, ऐसा मानने वाले लोग ही अधिक हैं कि यह एक कभी भी न सुखने वाला जलकोश है । पर, वर्षा से गिरा सब पानी भूमि के अंदर नहीं जा पाता। उसे मानवनिर्मित तालाबों, कुओं आदि में बचा के रखना चाहिए; भूमि में रिसाना चाहिए । तब जाकर कहीं वह मानव के लिए अक्षय जलस्रोत हो सकता है, यह मालूम होना है । लेकिन, आज मानव पानी की मशीनें जमीन के अंदर गहराई में उतार कर, भूम्यांतर्गत जल सोख रहा है । अत: पानी का संचय कम हो रहा है । नदियों में जलोन्नयन करने वाले पंप बिठाए गए हैं । वहाँ पर भी पानी कम हो रहा है । तालाब, कुएँ सूख गए हैं । अत: भाप बन कर, बादल बन के वर्षा होना कम हो गया है । यह परिसर ज्ञान अधिकांश लोगों को ज्ञात ही नहीं है । अत: पानी का दुरुपयोग बढ़ रहा है।

७. **पानी कम हो रहा है और यह ऐसा ही चलता रहा तो, क्या आप इसकी कल्पना कर सकते हो कि आगे हमें पानी मिलेगा भी या नहीं?**

पानी कम हो रहा है; लेकिन लोगों में ऐसी ऊहापोह है कि भविष्य में एक दिन हमें पानी मिलेगा ही नहीं । वैसी शिक्षा-सबक विद्यालयों, घरों या विशेष कर शासन सभाओं में भी नहीं दी जा रही है । सब लोग, 'अपने लिए आवश्यक पानी मिल रहा है न, बस!' इस प्रकार से जी रहे हैं । संकट घर की चौखट तक आ धमकने के पश्चात् भी मूढ़ता

सब जगह व्याप्त है । यह केवल पानी के संबंध में ही नहीं; पानी, हवा, धूप आदि सबके बारे में भी अपने अंदर अज्ञान भरा पड़ा है ।

८. पानी मिलता है वर्षा से । क्या वर्षा का पानी पी सकते हैं? यदि हाँ, तो इसका संग्रह कैसे करोगे?

शहरवासी यह बात समझते नहीं कि वर्षा का पानी पी सकते हैं। लेकिन उनको ही अधिक पानी लगता है । उन्हें नगरपालिका, शासन द्वारा उपलब्ध कराना चाहिए । सब लोग क्या हम सरकार को टैक्स नहीं देते? ऐसे दायित्वशून्य दर्पोद्‌गार निकालते हैं । कुछ ही सरकारों ने ऐसा कानून पारित करते हुए उसे जारी किया है कि हर घर में पानी के संचयनार्थ कुँआ, टंकी आदि बनानी चाहिए । अनेक विवेकशील लोगों ने नगरपालिकाओं से प्राप्त पानी पर अवलंबित न रहते हुए, अपने निजी जलसंचय से जीवनयापन करने का मार्ग अपनाया है । लेकिन, यह जागरूकता बहुत ही कम लोगों में हैं । सभी नगरों को चाहिए कि अनिवार्य करते हुए क्यों न हो, वे जलसंचयन का प्रबंध अवश्य करें; और शीघ्र करें ।

९. वर्षा का सभी पानी व्यर्थ न बह जाए, इसलिए क्या हम घर में ही पानी संग्रहित कर सकते हैं?

वर्षा का पानी संग्रहित करने हेतु घर में ही कुँआ, झील, टंकी आदि बना के अपने आहाते में गिरने वाले हर बूंद पानी को उनमें संग्रहीत करने का प्रबंध करा ले सकते हैं । अब हर प्रांत में इसका मार्गदर्शन करने के लिए जलतज्ञ उपलब्ध हैं । राजस्थान, तमिळनाडु, कर्नाटक में जनसामान्यों तक यह विचार पहुँचा है । लेकिन, उसे तेजी से प्रत्यक्ष व्यवहार में लाने का आग्रह करना होगा ।

१०. क्या हम कुँओं, टंकी का निर्माण कर सकते हैं?

वर्तमान में ये दोनों करने के लिए किसी भी अनुमति की आवश्यकता नहीं है। सत्ताधारी तो इसे करने की बात बता ही रहे हैं । हर घर में भी इसे करते हुए, वर्षा का सभी पानी वहीं पर रिसाने/संग्रहीत करने का काम अवश्य करना चाहिए ।

११. तदनुसार क्या गाँवों में भी वर्षा के पानी का हर बूंद बचा के रखने का मार्ग हम खोज सकते हैं?

गाँवों में लोगों को इसके बारे में मिल कर सोचना चाहिए । पानी बहने के मार्ग में

छोटे छोटे चेक-डैम बाँध सकते हैं । तालाब, झीलों का निर्माण कर सकते हैं । अब तक अनेक गाँवों में ऐसी योजनाएँ गाँव वालों ने मिल के ही की हैं व अपनी जलसमस्या का निवारण किया है । तालाब के परिसर में भी भूजल का स्तर ऊपर उठा है ।

१२. क्या पुराने जमाने में अपने पुरखों द्वारा गाँव में किए 'एक तालाब,अनेक कुँओं' के आयोजन व सुरक्षा के प्रबंधों के उदाहरणों की पहचान करते हुए, उन्हें फिर से पुनरुज्जीवित कर सकते हैं?

पुरानी ग्रामव्यवस्था की बीसियों बातें ग्राम जीवन को स्वावलंबी तथा समृद्ध नगरों को रोजमर्रा की आवश्यकताओं की पूर्ती करने वाली थीं । हर गाँव में एक तालाब, पेड़ों का बन, गोमाल (चरागाह), पाठशाला, देवालय, दाई आदि के अलावा, हर घर को भी एक छोटे कुटिरोद्योग, सामान्य वैद्यकीय ज्ञान, तांत्रिक ज्ञान के केंद्र के रूप में खड़ा किया था।

सामान्य प्रतिभा वाला व्यक्ति भी अपनी ही रीति में समाज को शक्ति प्रदान करता था । गाँव संपत्ति से भरे थे । शहर देहातों पर अवलंबित थे । पर, शक्तिमान ही जी सकता है यह सामाजिक सिद्धांत आज सबके मस्तिष्क में घुस गया है । 'Survival of the fittest' नामक नीति के कारण दुर्बलों का नाश करने वाला पैशाचिक मनोभाव सबमें आ गया है। स्त्रीभ्रूण नहीं चाहिए से प्रारंभ होकर बच्चे ही नहीं चाहिए, शादी ही नहीं चाहिए कहने वालों को विद्वान कहने तक दृष्टि बिगड़ गयी है । सगोत्र विवाह गलत है इस वैज्ञानिक दृष्टि वाले देश में समलिंगी शादी गलत नहीं है ऐसा न्यायालय द्वारा निर्णय देने तक की अवनति हो चुकी है । जिसकी लाठी उसकी भैंस यही नीति सब दूर प्रचलित हुई है । यह सब कुछ बदलना चाहिए । बदला जा सकता है। उसके लिए हर गाँव को भी अपनी जरूरतों की पहचान करते हुए, पहले पानी के संबंध में स्वावलंबी बनना है । अनंतर खेती, विद्या, रोजगार आदि सभी क्षेत्रों में भी स्वावलंबी बनाना पड़ेगा । उसके लिए आवश्यक प्रतिभा अपने में है । नेतृत्व व सामाजिक क्रियाशीलता ये दोनों भी मिल कर काम में लाना है।

१३. क्या ऐसी शिक्षा हम दे सकते हैं कि पानी बिगाड़ने या गंदा करने का काम अपने घर वाले न करें?

'नाप्सु मूत्र पूरीषं कुर्यात् । तद्व्रतम्।' यह वेदवाणी है । पानी में मलमूत्र विसर्जन नहीं करना चाहिए । पानी बिगड़ गया, तो जीवन बिगड़ जाता है । यह आज

सबको सिखाने की आवश्यकता है । घर में बड़ेबुजुर्गों द्वारा बच्चों को सिखाया जाना चाहिए कि फलाँ-फलाँ काम ऐसा करिए, वैसा मत करिए । पहले स्वयं करके अन्य लोगों के सामने आदर्श प्रस्तुत करते हुए, उनको साथ में लेकर सिखाना चाहिए । इसे ही संस्कार कहते हैं । इस प्रकार संस्कारों के रूप में ही जलसुरक्षा सबके रक्तगत हो, ऐसा कराना चाहिए । तब कहीं जनसामान्य पानी बिगाड़ने से उद्भूत होने वाले प्रसंग, समस्याएँ, संदर्भ स्वयं देख के ही सुधर जाते हैं ।

१४. क्या हम ऐसी सावधानी बरत सकते हैं कि कुँए, तालाब, नदियों में कूड़ा-कचड़ा डालना, मलमूत्र विसर्जन करना, गाँव-शहर का गंदा पानी, कारखानों का कल्मश जल में छोड़ना असंभव हो जाएं?

आज विज्ञानी, प्रशासकीय अधिकारी, सत्ताधारी आदि सब अपने अनुकूलों, अपना धनार्जन करने में ही निमग्न हैं । अत: ऐसे जघन्य अपराध खुले आम चल रहे हैं । ये सभी अपराध दण्डयोग्य हैं, इसकी प्रज्ञा उनमें पहले बिंबित होनी चाहिए । इस प्रकार एक ओर, घरों में संस्कारों के द्वारा प्रेम-स्नेह से समझदारी उत्पन्न करनी चाहिए; और दूसरी ओर, ऐसी जागरूकता प्रशासन द्वारा कड़ाई से अमल में लानी होगी कि इसके विरोधी बर्ताव करने वाले सभी को कठोरतम सजाएँ हो । तभी हर व्यक्ति, हर अधिकारी, हर उद्यमी सावधानी से आचरण करेगा । जलाभाव नहीं होगा ।

माध्यम(मीडिया)

१. क्या अपने घर में समाचारपत्र मँगवाते हो? किस भाषा के?

आज के जीवन में समाचारपत्रों ने विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है। शिक्षित व आर्थिक दृष्टि से अगड़े लोग अपने घरों में समाचारपत्र मँगवाते हैं । समाचारपत्रों का मूल उद्देश्य संदेश/समाचार प्राप्ति है । साथ ही उनके द्वारा भाषाज्ञान, लोकज्ञान, अवलोकन शक्ति, पढ़ने की कला – आदि सब प्राप्त होता है । कुछ लोग केवल दैनिक ही पढ़ते हैं, तो और कुछ लोग साप्ताहिक, मासिक आदि पढ़ने के आदी होते हैं ।

२. क्या आप धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पत्रिकाएँ पढ़ते हो?

पत्रिकाओं के अनेक प्रकार हैं । राजकीय, सामाजिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, चित्रात्मक, धार्मिक, बाल पत्रिकाएँ, वैज्ञानिक, जासूसी आदि होती हैं ।

लेकिन हमें इसकी कल्पना होनी चाहिए कि अपने घर में कौनसी पत्रिकाएँ आनी चाहिए ।. घर आने पर सब मिल कर आनंद के साथ चर्चा कर सकें ऐसे विचारों से युक्त; सबके जीवन को प्रेरणा–दिशा–दशा दे सकने वाली; अपना सांस्कृतिक ज्ञान का संवर्धन करने वाली, अपने समाज के आसपास की समस्याएँ-वैशिष्ट्य-गुण–स्वभाव–मूल सिद्धांत आदि के वारे में चित्ताकर्षण कर सकने वाली, सबके ज्ञान को उन्नतावस्था तक ले जा सकने वाली मनोरंजनात्मक पत्रिकाएँ आवें ऐसा करना चाहिए। विना अर्थ के, भ्रमित करने वाले विचारों से युक्त पत्रिकाएँ, अश्लील, अपने धर्म, परंपरा के बारे में अवहेलनात्मक पत्रिकाएँ नहीं मँगवानी चाहिए । इससे धन–मान–चित्त–शांति

की हानि होती है । इनके बारे में सब घर वालों के साथ चर्चा करते रहने से सबको सुयोग्य दृष्टि मिलती है।

३. क्या आपको पता है कि घर में किसे कौनसी पत्रिका भाती है?

बिना अभिरुचि के कोई भी कुछ नहीं करता । खेल की इच्छा न होने वाले आदमी को खेल का पृष्ठ देखना संभव ही नहीं । उसी प्रकार, हर एक की अपने ही विषय में अभिरुचि होती है । पत्रिकाओं का अंतर्रहस्य भी यही है । हर पत्रिका के संपादक को यह इच्छा अवश्य होती है कि एक ही विचार के अधिकांश लोग अपने प्रभाव में आवें । इसीलिए घर में भी इनके बारे में चर्चा-चिंतन अवश्य होना चाहिए । बच्चों को बचपन से संबंधित बातें, सामान्य ज्ञान, खेल अच्छे लगते हैं; तो युवकों को देशभक्ति, आदर्श, उत्तम उदाहरणों वाला उदात्त जीवन, चित्ररंग, क्रीड़ा आदि भाता है । क्रमशः मध्य तथा ढलती उम्र वालों को इन सारे विषयों के साथ-साथ आर्थिक, प्रशासकीय तथा राजकीय विषयों में विशेष अभिरुचि रहना साधारण बात है ।

किंतु, हमें इसकी दृष्टि रखनी पड़ती है कि बच्चे व युवा किस किस्म की पत्रिकाएँ पढ़ते हैं? यह सबको पता होना चाहिए कि पढ़ी जाने वाली पत्रिका कोई भी हो; अच्छे संस्कार व ज्ञान ही उससे कुल प्राप्तव्य होना चाहिए । इसीलिए बच्चों की अभिरुचि, प्यार आदि बातों को समझ लेना होगा । उनके साथ स्पंदित होते हुए, उनकी अच्छी चीजों को प्रोत्साहन देना चाहिए ।

४. क्या पुरानी पत्रिकाएँ दिनांकशः इकट्ठा कर के रखते हो?

उपयोग के पश्चात् समाचारपत्रों के लिए घर में एक सुनिश्चित स्थान व क्रम तय करना चाहिए । उपयोग के तुरंत पश्चात् इन पत्रिकाओं को जहाँ, जैसे सुरक्षित रखना है, उसी क्रम में उनको जोड़ कर रखना चाहिए । उनमें भी सभी पृष्ठ अपने-अपने स्थान पर रहने चाहिए । उनको निकाल कर रखते समय क्रमबद्ध रीति से जोड़ के रखने चाहिए। उन पत्रिकाओं का उपयोग करते समय भी इसी क्रम का अनुसरण करना जरूरी है । उसी प्रकार, किसी हेतुप्रीत्यर्थ इन पत्रिकाओं को शाश्वत रूप में उपयोग करने के प्रसंग उद्भूत होने पर, उनको निचले क्रम से ही निकालने की आदत डाल लेनी चाहिए । इसी में अनुकूलता होती है ।

५. क्या अच्छे समाचारों/लेखों की कतरने ढंग से फाइल करके रखते हो?

हर दिन/सप्ताह के कुछ विशिष्ट समाचार संग्रहित करके उन पर दिनांक, पत्रिका

का नाम, पृष्ठ संख्या आदि लिख कर, उनको समुचित ढंग से कतरते हुए, सुरक्षित रूप से निकाल कर रखना एक अच्छा उपक्रम है। अपनी अभिरुचि के अनुसार, अपने क्षेत्र के अनुरूप उनको कतरते हुए क्रमबद्ध रीति से (फाइल में) जोड़ के रखना चाहिए । समय-समय पर उनका अध्ययन करते हुए अधिकाधिक विषय गहराई से समझ सकते हैं।

६. क्या घर में समाचारों के बारे में चर्चा होती है?

प्रारंभ में यह एक विचित्रसा प्रश्न लगा, तो भी इसकी गहराई में एक विशेषता छिपी है । बातें अपने मन का आईना होती हैं । मन में जिसके बारे में जैसा सोचा जाता है, वही बातों के जरिए प्रकट होता है। किसी भी समाचार/वार्ता के बारे में दिन में एक बार तो चर्चा करनी चाहिए। केवल समाचारपत्र ही नहीं, तो देश की समस्याएँ, यत्र-तत्र चलने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रम, विश्व की घटित/संभाव्य घटनाएँ आदि के बारे में जानकारी संकलित करते हुए, चर्चा करने से अधिक सुविधा, अनुकूलता होती है ।

सबने चर्चा की तो, सबके विचार समझ लेने की उदारता व बुद्धि का संवर्धन होता है । अपने यहाँ का एक सुभाषित उसका ही वर्णन करता है: 'बालादपि सुभाषितं ग्राह्यम् ।' (बच्चे से भी अच्छे विचार ग्रहण करने चाहिए) हर एक के मन के घुमाव की शैली, उनके गुणावगुण आदि समझ कर, सुलभता से उनको सुधारने की प्रक्रिया में वह बुजुर्गों को सहायक होता है । इससे अभिरुचि का प्रकटीकरण भी हो सकता है । बोलने की कला संवर्धित होती है । आपसी विचार विनिमय से घर में सौहार्द्रयुत वातावरण निर्मित होता है।

७. क्या आपके घर आने वाले नियतकालिक व पत्र-पत्रिकाएँ (Periodicals/Magazines) स्वास्थ्यपूर्ण हैं?

स्वास्थ्य कहते ही शारीरिक स्वास्थ्य ऐसा ही अर्थ नहीं; इसके विपरीत, यहाँ मानसिक स्वास्थ्य पर बल दिया है । नियतकालिकों की आवश्यकता ज्ञानपिपासु लोगों को होती है । जीवनश्रेष्ठता साध्य करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है । उसकी पर्याप्त मात्रा में पूर्तता नियतकालिक करते हैं । लेकिन कैसे विचारप्रदायक नियतकालिक पत्र चाहिए? इसका विवेक मात्र हमें करना होगा । इससे हमारा ज्ञान, अनुभव बढ़ना चाहिए। उससे हमारे संस्कार संवर्धित होने चाहिए । देश की गतिविधियों की समुचित व्याख्या करने वाले लेख होने चाहिए । हमारी चिंतनशीलता बढ़नी चाहिए । वे हमें सत्य-धर्म के मार्ग पर जुटाने वाले होने चाहिए। केवल मौजमस्ती, अश्लीलता,

पैसा, अनाचार इनसे ही भरे नहीं होने चाहिए । मनकी भावनाओं को खिलाने वाले चाहिए; न कि कामवासना व दुष्टता को प्रोत्साहन देने वाले ।

८. क्या सी.डी., कैसेट्स स्वास्थ्यपूर्ण हैं? क्या उनका वर्गीकरण करके निकाल के रखते हो?

आज के इस वैद्युतिक क्रांति के युग में इन सी.डी व कैसेटों का योगदान महत्वपूर्ण है । उनसे भी अनुकूलताएँ व प्रतिकूलताएँ होती ही हैं। लेकिन बुद्धिशाली लोगों को उनसे महत्तम अनुकूलताएँ प्राप्त करा लेनी चाहिए । संगीत, साहित्य, कला, प्रवचन, पर्यटन स्थल, विज्ञान, विचार आदि के बारे में सी.डी/कैसेट्स संग्रहित करने चाहिए । मानवी जीवन के लिए उपयुक्त विचारों से युक्त इन सी.डी व कैसेटों के ऊपर नाम लिख (लेबिल लगा) कर, समुचित-चयनित-सुनिश्चित स्थान पर रखना चाहिए। उनका विषयानुसार वर्गीकरण करने की आवश्यकता है । अपेक्षानुसार उनको सुन कर, देख कर, सुना कर, दिखा कर, आनंदित होते हुए, हमें संस्कार-प्रसारक बनना चाहिए।

९. जब चाहें तब वे प्राप्त हों, इसलिए आप क्या व्यवस्था करते हो?

सामान्यत: अनेक लोग कहते हैं, हमारे घर में अपेक्षित चीज समय पर मिलती ही नहीं । इसका कारण है अव्यवस्था । याने सबके लिए एक व्यवस्था होनी चाहिए। हमारे उपयोग की वस्तुओं भी सुनिश्चित रूप से स्थानों पर ही रखनी चाहिए । महाभारत में विदुर ने एक संदर्भ में कहा है : 'सर्वं हतम् अनवस्थितस्य ।' (अव्यवस्थित लोगों का सब कुछ नष्ट हुआ है) जैसे जीवन के लिए एक प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिए, वैसे ही जीवन व हर काम में भी एक व्यवस्था रहनी चाहिए । अत: घर में हर वस्तु का एक सुनिश्चितसा स्थान होना चाहिए । उपयोग के तुरंत पश्चात् वह वस्तु उसी स्थान पर रखने का स्वभाव लगा लेनी चाहिए । ये स्थान सबको मालूम भी होने चाहिए । उदा. घर में बच्चे हों, तो उनके द्वारा निकाल के रखने योग्य सभी वस्तुएँ उनको ही निकाल रखने की प्रेरणा देनी चाहिए। इस ओर ध्यान देना चाहिए कि बच्चे विद्यालय से आते ही उनके समवस्त्रों से लेकर, पुस्तक आदि सभी वस्तुओं को ढंग से जोड़ के निकाल रखते हैं, या नहीं? उनका काम यदि हम ही करते गएं, तो उनको उसका महत्त्व, आवश्यकता समझ में नहीं आएगी और वे अपना यह दुरभ्यास वैसे ही आगे बढाएंगे । रसोईघर में भी सभी वस्तुएँ सुव्यवस्थित रीति से जोड़ के रखनी चाहिए । शुरु में डिब्बों पर उनमें रखी वस्तुओं के नाम लिख के रख सकते हैं। इस प्रकार घर की रोजमर्रा के इस्तेमाल की सभी

वस्तुओं का वर्गीकरण करते हुए, उनका स्थान निर्धारित कर के, वही जारी रखा गया, तो सब कुछ सुव्यवस्थित रहता है ।

१०. छोटों की विवेकशीलता और भी प्रबुद्ध करने हेतु आप क्या कुछ करते हो?

छोटों का मन कौतूहलभरा होता है । छोटे बच्चों को तो हर वस्तू के बारे में जिज्ञासा होती है । इसीलिए प्रारंभ में वे इनकी ओर स्वयं ही टकटकी लगा के देखते हैं । उस कुतूहल का शमन करने ज्येष्ठ जनों को सुसज्जित व सदासन्नद्ध रहना पड़ता है । इससे उनमें प्रबुद्धता बिंबित होती है । तदर्थ निम्नांकित कुछ बातों की ओर ध्यान दे सकते हैं :

★ समुचित मार्गदर्शन द्वारा उनके कौतूहल का यथासंभव स्तर तक शमन करना चाहिए ।

★ यदि संभव हुआ, तो सभी विषय प्रायोगिक (Practical) तौर पर समझाने चाहिए । वैसा न हो पाया, तो उदाहरण, दृष्टांत आदि द्वारा समझाना होगा।

★ उनको उड़ाऊ, अनुत्तरदायित्वपूर्ण, झूठा, अविश्वसनीय उत्तर नहीं देना चाहिए।

★ अपने उत्तर में हमें प्रामाणिक रहना चाहिए ।

★ जो विषय हमें उनको समझाना है, उसके बारे में जिज्ञासा जागृत करते हुए, भावनाओं को खिला कर, वह कार्य सही ढंग से करने हेतु उनको प्रबोधित करना चाहिए ।

★ गलती करने पर समुचित रीति से सजा देनी चाहिए । वह सजा हँसते-हँसते ही देनी चाहिए, हँसते-खेलते ही कराना चाहिए; उसके साथ समझौता मात्र नहीं करना चाहिए ।

★ उनका भिन्न-भिन्न विचारों के साथ सामना कराते हुए, वहाँ उनकी चिंतनलहरी की परीक्षा करनी चाहिए ।

★ यहाँ 'गाजर-छड़ी' न्याय का अवलंब करना होगा । 'गाजर-छड़ी नियम' याने अच्छे कामों के लिए प्रोत्साह, प्रेम, पुरस्कार, पारितोषक आदि; वही गलती/ खराब काम के लिए मार, चिल्लाना, चेतावनी, संदर्भानुसार आशा अथवा भय दिखा के सिखाने की नीति का अवलंब करना चाहिए ।

★ अनेक काम करते समय, वे क्यों करने चाहिए इसके बारे में समझाते हुए, उस काम में परिणति प्राप्त करने की प्रेरणा देनी चाहिए । करने का ढंग गलत हुआ, तो बिना गाली देते हुए, करने की सही पद्धति दिखा देनी चाहिए ।

११. क्या संग्रहित अच्छे विचार, वाक्य, गीत, सिद्धांत आदि लिख के रखते हो?

ज्ञान का स्रोत निरंतर बहता है । वह कभी भी सूखता नहीं । वह नित्य निरंतर प्रवाहित होता रहता है । कुछ बार मौन रूप में, तो कुछ बार अपने घनगर्जन से लोगों को ज्ञानी बनाते हुए, विवेकशील बनाते हुए आगे बहते जाता है । इसीलिए, हम जो-जो नए विचार समझ लेते हैं, वे सब एक जगह पर संग्रहीत करके रखना अच्छा रहता है । उसी प्रकार, केवल मन में ही उनको संग्रहीत करते, संरक्षित करते रहना कठिन काम है । 'शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात् ।' (सीखी विद्या कालौघ में बिसर जाती है) एक प्रसिद्ध अंग्रेजी वाक्य है : "The slightest of the ink is better than strongest memory" अत: इस प्रकार के सभी विशिष्ट, सुयोग्य वचन, विचार, वाक्य, गीत, सिद्धांतों का संकलन करके रखने की आदत रहनी चाहिए । उसके लिए यदि हमने हर दिन संग्रह करने का काम प्रारंभ किया, तो व्यक्ति परिपूर्णता की ओर जा सकता है ।

१२. क्या बीच-बीच में उसे पढ़ के विचार करते हो?

एक सुभाषित बताता है कि मनुष्य कहलाने वाले को हर दिन अपने गुणावगुणों की विमर्शा करते रहना चाहिए । प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नर: चरितमात्मन: । (हर दिन आत्मपरीक्षा करते रहने से, व्यक्ति परिपूर्ण हो सकता है ।) याने पहले विषय-संग्रह करना चाहिए; अनंतर उसका अवलोकन, परिशीलन होना चाहिए । एक उक्ति है : "A day is not wasted, if a memory is made." इसीलिए स्वाध्याय का त्याग न करते हुए, बीच-बीच में पठित-शिक्षित-प्रबोधित-संग्रहित विषयों को पुन: पुन: पढ़ कर, तब तक कितना कुछ आत्मसात किया गया है तथा कितना आत्मगत करना बाकी है, इसका यदि चिंतन किया जाए, तो व्यक्ति अपनी योग्यता और भी अधिक बढ़ा सकता है।

१३. क्या किसी प्रमुख को अपने घर आमंत्रित करते हुए, इसके बारे में चर्चा कर, उनका मार्गदर्शन पाते हो?

एक सुभाषित कहता है :

य: पठति लिखति पश्यति परिपृच्छति पण्डितानुपाश्रयति।
तस्य दिनकरकिरणैर्नलिनीव विकासते बुद्धि: ।।

'जो पढ़ता है, लिखता है, देखता है, पूछ कर अपनी आशंकाओं का समाधान करा लेता है तथा पंडितों का आश्रय पाता है, उसकी बुद्धि सूर्य की किरणों जैसी खिलती है।

सामान्यत: अपना मन हमेशा किसी न किसी विषय का चिंतन करते ही रहता है। फिर भी वह अपने ज्ञान की सीमाओं में ही रहता है। उसके अग्रिम विकास के लिए बाहरी अंकुर की आवश्यकता होती है । अपनी तथा अपने घर की चिंतन-लहरें एकतानता के साथ प्रस्फुटित कराने व नए-नए विचार-विधान-चिंतनों को समझने हेतु संबंधित विषयों के अनुभवी ज्ञानी व्यक्तियों को अपने घर आमंत्रित करते हुए, चर्चा-चिंतन चलाना चाहिए । घर के सभी को इन महनीयों के दर्शन/मार्गदर्शन से और अधिक प्रेरणा मिलती है ।

आज की संस्कृति

१. क्या आज की संस्कृति आधुनिक है या पाश्चात्य?

आज आधुनिकता के नाम पर प्रचलित संस्कृति पाश्चात्य ही है । परंतु इस निरंतर बदलते विश्व में आधुनिक याने कौनसी? आज आधुनिक कहलाए जाने वाली बात कल पुरानी बन जाती है । इतना ही नहीं, भारतीय चिंतन के अनुसार, विश्व का परिवर्तन सीधी रेखा में होता ही नहीं; वह गाड़ी के पहिए के भाँति चक्राकार होता है। इस तरह पुरानी बात ही फिर से आधुनिक होती है । शक्तिशाली समाज की बोलचाल का अनुकरण शेष समाज करते हैं । प्राय: आने वाले दिनों में हिंदू समाज शक्तिशाली बनने पर, हिंदू संस्कृति ही आधुनिक संस्कृति कलहाएगी ।

२. पाश्चात्य संस्कृति को कैसे पहचान पाते हो?

'जियो और जीने दो!' (Live and let live) यह हिंदुओं का मूल चिंतन है । स्वयं जीते हुए, बाकी लोगों को भी जीने के लिए सहाय्यभूत होना ही अपनी विशेषता है । 'लोकास्समस्ता: सुखिनो भवन्तु', 'ईश्वर एक; नाम अनेक', 'वसुधैव कुटुंबकम्' आदि वाक्य उसीके प्रतीक हैं । हमारे विश्वास को मानते हो, तो यहाँ रहिए। अन्यथा, 'Survival of the fittest' (बलवान ही बचके रहेगा) यह पाश्चात्यों की संस्कृति है । देखने में आकर्षक होते हुए भी, वह सही नहीं है । केवल यही (only) यह पाश्चात्य विचार है; 'यह भी' (also) भारतीय चिंतन है ।

३. पाश्चात्य संस्कृति अच्छी है या खराब? उसमें स्थित अच्छाई को क्या हम यथावत् मान सकते हैं? अथवा हमें जैसा चाहिए, जितना चाहिए, वैसा व उतना ही, ऐसा छान के मान सकते हैं?

यह विश्व केवल मानव के लिए ही है, इस मान्यता के अनुसार केवल उपभोग को ही संस्कृति के रूप में घोषित करने वाली आज की पाश्चात्य संस्कृति को, मानव का जन्म ही विश्व को सुख देने के लिए है,'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्हिताय च' की अवधारणा वाला हिंदू कैसे मान्यता दे सकता है? उसमें वास्तविक भलाई देखना अच्छा ही है, इस सोच से उसकी चर्चा करते हुए, प्रांजलतापूर्वक विश्लेषण करना चाहिए। उसमें सही अर्थ में अच्छाई है, इसकी सुनिश्चिति होने के बाद ही इसका निर्धारण करना चाहिए कि अपने देश व जगत् का हित इन दोनों दृष्टियों से वर्तमान समाजशक्ति के आधार पर किस पैमाने में व कैसे स्वीकारना है?'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः' का उद्घोष करने वाले हमें भद्राः याने केवल सुविचारों को ही स्वीकारना चाहिए। 'जिहाद-क्रूसेड', 'पब', 'वैलेन्टाइन', 'सौंदर्यस्पर्धा' आदि का स्वीकार कभी भी नहीं करना है । धर्म शाश्वत मूल्यों से ओतप्रोत होता है, उसी पृष्ठभूमि पर बाहरी विचारों की चर्चा करते हुए, उन्हें स्वीकारना होगा ।

४. पाश्चात्य संस्कृति में अवश्य मान्य करने योग्य ऐसी कौनसी बातें हैं?

प्रकृति व मानवकुल के लिए मारक ऐसा कोई भी विषय, चाहे वह कहीं से भी क्यों न हो, उसे मान्य नहीं करना चाहिए - यही हमारी धारणा है । पाश्चात्य संस्कृति में कई बुरी आदतें हैं अर्थात् बगैर प्रश्न उठाए विश्वास करना, धर्मरहित जीवन, स्वच्छंद आचरण, बिना लक्ष्य का जीवनयापन, भोगप्रधान जीवन, साधनशुचिता न मानने वाली समाज नीति आदि । उसकी दृष्टि में कोई भी उजड़ गया तो क्या? विश्व ही नष्ट होता हो, तो क्या फर्क पड़ता है? जितने दिन जिंदा हो, मौजमस्ती से जियो - यही उनका जीवनाधार है । इन्हें नहीं मानना चाहिए ।

५. पाश्चात्य संस्कृति की मारकता को कैसे रोकोगे?

इसका एकमात्र उत्तर है जागृति । अपनें द्वारा किए जा रहे हर कार्य का कोई न कोई उद्देश्य अर्थात् वह अंतिमतः समष्टि का हित ही होना चाहिए । उसके द्वारा अपने चिंतन की गहराई-फैलाव-व्याप्ति का परिचय सबको करा देना होगा । जिसमें विश्व का कल्याण है, वही पुण्य है; उसे करना ही चाहिए । जिससे विश्व की हानि होगी, वह पाप है;

उसे कभी भी नहीं करना चाहिए, इसका विवेक बढ़ना चाहिए । विवेक का प्रकाश बढ़ते ही स्वच्छंदता का अंधकार अपने आप दूर होता है ।

कामश्च क्रोधश्च लोभश्च देहे तिष्ठन्ति तस्करा: ।
ज्ञानरत्नापहाराय तस्मात् जाग्रत जाग्रत ।।

याने, १काम-क्रोध-लोभ ये शरीर में वास करने वाले चोर हैं। वे हमारे ज्ञान रूपी रत्न की चोरी करते हैं। अत: हमें उन सबसे सदैव जाग्रत रहना चाहिए।' ये सभी बुरी बातें हमारे अंदर आने के लिए काम-क्रोध-लोभ ये तीनों भी सभी अनर्थों का कारण हैं।

पाप-पुण्य की विस्मृति ही इन तीनों की उद्गात्री है । अंधानुकरण, पाश्चात्यों द्वारा की जाने वाली हर बात श्रेष्ठ है, ऐसा अज्ञान व उपनिवेशवादी लोगों के दुष्प्रचारों का शिकार बन के हम भी इस मारकता के प्रतिपादक बन रहे हैं । कुल मिला के अपनी विवेकहीनता ही इसका कारण है ।

६. जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त इस अंधानुकरण को कैसे रोक सकते हैं?

संगीत, साहित्य, वेषभूषा, पेय, आहार, विहार, बोलचाल आदि जीवन के सभी क्षेत्रों एवं सभी बातों में भी हम इसे देख रहे हैं । पहले, अपनी संस्कृति का गहरा अध्ययन करना व इस अध्ययन से बिंबित होने वाली श्रद्धा की व्याप्ति बढ़ानी चाहिए । तदुपरांत उसका व्यापक प्रचार करते हुए, घर-घर में इस विषय को अगली पीढ़ियों तक पहुँचाना है । इन दोनों को एक साथ चलाए जाने पर ही सफलता संभव होगी । सबसे प्रमुख बात यह है कि हम विश्व की अति प्राचीन सभ्यता से संबद्ध समाज है, इसका विश्वास दृढ़ करते हुए, समूचे विश्व को उत्तम, उदात्त बनाना अपनी ही जिम्मेदारी है, इसे जान-पहचान कर जीवन बिताना चाहिए। हम ही विश्व की सभी घटनाओं के लिए जिम्मेदार हैं, इसकी उर्मि-ऊर्जा भारत के सभी बच्चों में जाग्रत होनी चाहिए ।

७. क्या आपको ऐसा लगता है कि पाश्चात्य संस्कृति आयी तो, 'हमें का हानि?'

'तिमिरे हि कौशिकानां प्रतिपद्यते दृष्टि:' याने उल्लू को केवल अंधेरे में ही दिखायी देता है । उसी प्रकार, जिनको अपनी संस्कृति का संज्ञान ही नहीं है, उनको पाश्चात्यों की सभी बातें सही लगती हैं। उन जैसे लोगों के ही ये उद्गार हैं । यह नहीं होना चाहिए । संस्कारभरित जीवन ही सही जीवन है । हमारी दृष्टि तभी साफ-सही होगी, जब

हम जान जायेंगे कि आज अपने पास की सभी बातों को खो दिया, तो उन्हें फिर से पाना संभव नहीं, ऐसी स्थिति पैदा होगी ।

८. बच्चों को पाश्चात्य संस्कृति के दोष कैसे समझा सकते हैं?

शिक्षा की सात्विक, राजसिक व तामसिक ऐसी तीन विधाएँ हैं। पहली में केवल अपनी श्रेष्ठता को ही सिखाना – यह है सात्विक शिक्षा। दूसरी में उनके तथा अपने बीच की बातें बच्चों को समझाना । इसे राजसिक कहते हैं । तथा कुछ बार उनकी पद्धति को नकारते हुए, मज़ाक करते हुए, उसे गलत बताते हुए, विनोद की शैली में बताना पड़ता है । यह है तामसिक विधा । इन तीनों विधानों का प्रयोग करते हुए, संदर्भानुसार, बच्चों पर अपनी श्रेष्ठता अवश्य बिंबित करनी चाहिए। लेकिन, इन सबसे अधिक महत्व का है घर के बुजुर्गों का सदाचरण । देश के बारे में असीम श्रद्धा, अपने बुजुर्ग-ऋषियों के बारे में निष्ठा तथा मुझे अपने जीवन के जरिए सब लोगों के जीवन को सुधारना है, ऐसी आत्मश्रद्धा । इस त्रिसूत्री का दर्शन यदि ज्येष्ठजनों के जीवनों द्वारा हुआ, तो अगली पीढ़ियाँ अपने आप सुधर जाएंगी ।

मतांतरण

१. मतांतरण याने क्या?

मतांतरण यह एक विचित्रसा सिद्धांत है । उसे सुव्यवस्थित ढंग से करने/चलाने वाली अनेक संस्थाएँ हैं । उनका मुख्य उद्देश्य एकही है । अपने मत की संख्या येनकेनप्रकारेण बढ़ाना । किसी मत/धर्म अथवा हिंदुओं के किसी एक जाति के लोगों को ईसाइयत या इस्लाम का स्वीकार करने पर बाध्य करते हुए, अपनी संख्या बढ़ाने का यह एक षड्यंत्र है । अपने मत का विस्तार करते हुए अपने सिद्धांतों/विचारों को विश्वव्यापी बनाना ही मतांतरण का उद्देश्य है।

२. मतांतरण करने वाली ताकतें कौनसी हैं?

मतांतरण के लिए बहुत बड़े पैमाने पर पैसों की आवश्यकता होती है। अत: विदेशी स्रोतों से धन प्राप्त करते हुए, यहाँ पर कार्यरत शासकेतर सेवा संस्थाएँ (NGOs) यह कृत्य करती हैं । खास कर, यहाँ पर सेवा के नाम पर यह सब चलता है । 'यहाँ की परिस्थिति वास्तव में बहुत ही गंभीर बनी है । यहाँ के लोग दु:ख-कष्टों से घिरे कराह रहे हैं । ये सब लोग घोर अज्ञान में डूबे हैं ।' ऐसा विदेशों में अपप्रचार करते हुए, वहाँ के लोगों में विश्वास पैदा करके, वहाँ की सरकारों को हिला सकने की क्षमता रखने वाली ये संस्थाएँ भीख माँग-माँग कर संग्रहीत किए धन से यहाँ के समाज को तोड़ने का काम कर रही हैं । अब और कई देशों की सरकारें स्वयं ही सीधे रीति

पर न हो, तो भी अपने-अपने देश के ईसाई/इस्लामी संगठनों के द्वारा इस कृत्य का समर्थन/सहाय्य करते हुए, मतांतरण के लिए सभी प्रकार का सहकार प्रदान कर रही हैं।

३. मतांतरण करने हेतु उपयोग में लाए जाने वाले मार्ग कौन-कौनसे हैं?

इसके लिए अनेक तंत्रों का उपयोग किया जाता है । प्रथम, सुनिश्चित क्षेत्र में जाकर वहाँ की समस्याओं व लोगों का अध्ययन करते हुए उनकी वृत्ति, संसति, गुण, स्वभाव, दुर्बलताएँ, लब्ध सुविधाएँ आदि की जानकारी प्राप्त करते हैं । 'हम यहाँ नए ही आएं हैं' ऐसा दर्शाते हुए उनका स्नेह प्राप्त कर, क्रमश: घरों का संपर्क कर के अपने अनुभवों को बाँट लेते हुए, स्वयं किस कारण से मतांतरित हुए हैं, इसका रोना रोकर, वे उनके और भी अधिक निकट आते हैं । अपने समाज की कई दुर्बलताओं व अज्ञान को नकारते हुए, हमारे लोगों की ओर करुणा से देख कर, मनुष्य का सहज आकर्षण-केंद्र रही नारी-धन-विलासितापूर्ण जीवन आदि प्रलोभनों के द्वारा उनको वहीं पे बाँध के, वे कभी भी पुन: हिंदू के रूप में पुन: वापस न जा पाएं, ऐसे संकट की स्थिति में फँसाते हैं । यह सामान्यत: ईसाइयों द्वारा किए जाने वाले मतांतरण की कहानी है ।

मुस्लिमों द्वारा अपनायी जाने वाली मतांतरण की रीति ही कुछ और है । वे युवतियों द्वारा युवकों का/युवाओं द्वारा युवतियों का बलात्कार/ अपहरण के माध्यम से शादियाँ रचा कर मतांतरण करते हैं ।

इसी के साथ ही, धनसहाय्य या समस्या-समाधान करने का स्वांग रचा कर, या सामाजिक परिवर्तन के नाम पर या दूसरे मतों के आचरणों की निंदा करते हुए, युवतियों को मतांतरणदूत के रूप में उपयोग कर, 'यह परिवर्तन का युग है', 'बाँझ रीतिरिवाजों को उखाड़ फेंक कर, नये विश्व का निर्माण' आदि गप्पुड़बाजी करते हुए, मतांतरण करने के प्रयास सब दूर चल रहे हैं ।

(१) सेवा के नाम पर, (२) स्थानीय लोगों को शिक्षा देने हेतु शाला/कॉलेजों में भर्ती कराते हुए, (३) बीमारों पर उपचार करते हुए आदि उपरोक्त कारणों से, यहाँ के लोग मतांतरित होने के लिए तैयार हैं; परंतु उनको अपनी ओर खींच लाने के लिए पैसों की आवश्यकता है ऐसा विदेशों में दुष्प्रचार कर पैसा वसूलते हुए, मतांतरण की गतिविधियाँ चलाते हैं ।

४. कौन मतांतरित होते हैं?

जिनको अपने पूर्वजों में अथवा अपनी शक्ति में विश्वास नहीं है, केवल वे ही लोग मतांतरित होते हैं । क्योंकि, मतांतरित होने के अनेक कारण हैं – जैसा किसी एकाध समस्या का समाधान होगा इस विश्वास से; धन, नौकरी, छोकरी का प्रलोभन दिखा कर आदि । इसीलिए जिनका मन बहुत ही क्षुब्ध, निकम्मा या मृदु होता है, जो मूर्खता के कारण उनके हर आचरण को सही मानते हैं, समाज में अच्छा नाम-कीर्ति कमाने की चाहत रखते हैं या आज की सामाजिक दु:स्थिति से बाहर आने के लिए आतुर होते हैं, सामान्यत: वे ही मतांतरित होते हैं ।

मतांतरण में लिप्त लोग, खास कर, अपने समाज के उपेक्षित बांधवों का परिवर्तन करने के लिए आतुर होते हैं । उसके साथ ही, मध्यम वर्गीय लोगों की अनदेखी करते हुए, धनवान कुटुंबों का भी मतांतरण करने पर बल देते हैं । सामान्यत: समाज की मूल धारा से किंचित दूर रहें 'अस्पृश्य' बंधु, सुशिक्षित होकर पाश्चात्य जीवनशैली का शिकार बने लोग, हठात् धनवान बनने की उमंग रखने वाले, शिक्षित होते हुए भी देश-संस्कृति के बारे में अज्ञानी लोग ही मतांतरित होते हैं ।

५. सभी मत समान मानने के बाद, मतांतरित होने में दोष क्या है?

ऐसा कहने पर भी कि सभी मतों द्वारा प्रतिपादित तत्व एक ही है, इनकी मौलिक संकल्पनाओं में ही अनेक मूलभूत अंतर है । बातें खड़ी होती हैं ईश्वर की कल्पना पर । इस विषय में यह कह सकते हैं कि हिंदुओं के समान उदारवादी दूसरा कोई है ही नहीं । हिंदुओं की मौलिक धारणा यही है कि सभी देवता हमें स्वर्ग प्राप्त करा देते हैं । किंतु, मतांतरण करने में लिप्त मतों के अनुयायी मात्र इसे मानते नहीं। उनकी दृष्टि में ईश्वर एक ही है; वह याने केवल उनके द्वारा पूजित देवता मात्र। जो उन के देवता को नहीं मानते, उनके लिए नरक का स्थान सुनिश्चित है । बाहरी दृष्टि से ऐसा दिखायी देते हुए भी कि वे (विशेष कर ईसाई) हमारे देवता की पूजा करते हैं, फिर भी अंदर ही अंदर वे कोई षड्यंत्र चलाते ही रहते हैं । ३३ कोटि देवताओं को मानने वाले हम हिंदुओं की दृष्टि में, ये दो देवताएँ हमारे यहाँ आने पर, हमारे लिए उनको समा लेना कोई कठिन बात नहीं हैं । लेकिन, वे मात्र ऐसा कभी भी नहीं कहते कि सभी मत समान हैं; और वे ऐसा कभी कहेंगे भी नहीं । यदाकदा, उन्होंने वैसा कुछ कहा, तो फिर, मतांतरण की उनकी सोच भी अन्ततः कहाँ से पैदा हुई? क्या ऐसा मानना समुचित नहीं होगा कि उनका मतांतरण करना ही ठीक नहीं है, निरा मूर्खता है?

६. मतांतरण से देश को क्या संकट है?

देश के कुछ चुनिंदा प्रदेशों में ईसाई अथवा इस्लामी अनुयायियों की संख्या बढ़ा कर, वहाँ अपना बहुसंख्यक जिला अथवा राज्य निर्माण करते हुए, उसके द्वारा अपनी सशस्त्र गुटबाजी प्रचोर का प्रभंजन चला कर, देश की एकता व अखंडता को खतरा पैदा करने का षड्यंत्र रचना ही इस मतांतरण के पीछे का उद्देश्य होता है।

हिंदू धर्म के अतिरिक्त, प्राय: शेष सभी सेमेटिक पंथों का उद्देश्य समूचे संसार को अपने धर्मध्वज के तले लाना ही होता है। क्योंकि, उनकी विचारधारा में वैसा ही बताया गया है। इसके साथ ही, उनके लिए अनुकूल सरकार बनाने में निर्णायक भूमिका निभाते हुए उनकी गतिविधियों को कोई बाधा न पहुँचें, ऐसी स्थिति उत्पन्न करने के लिए वे आतुर होते हैं। अत: देश के कोने-कोने में भी ऐसी संस्थाएँ अपना जाल फैलाते हुए, वहाँ की वायुमण्डल के अनुरूप स्थानिक राजनैतिक नेताओं को अपने अधीन करा लेने के काम भी करती हैं।

यहाँ घटित फुटकर घटनाओं को भी विदेशों में बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करते हुए, संपूर्ण देश को ही बदनामी की कालिख पोत कर, यहाँ की मूल संस्कृति आदि सभी दांभिक हैं; केवल उनकी मात्र सर्वसमावेशी व सबको समानता प्रदान करती है ऐसा उद्घोष करना ही इन संस्थाओं का दुरुद्देश्य होता है।

इसीलिए, मतांतरण से उद्भूत होने वाली समस्याएँ एक-दो नहीं हैं। अत: हमें इनके विरुद्ध आवाज उठा कर, लोगों को इनके दुष्ट, कलुषित विचारों/उद्देश्यों से अवगत कराना चाहिए। इसीलिए स्वामी विवेकानंद ने कहा है, एकाध व्यक्ति मतांतरित होने से हिंदुओं की संख्या केवल एक से कम होती है, इतना मात्र नहीं; उससे दुश्मन की संख्या भी एक से बढ़ती है। यह हमारे लिए सर्वविदित बात है कि महात्मा गांधीजी भी मतांतरण का विरोध करते थे।

७. मतांतरण कैसे रोका जा सकता है?

सामान्यत: सब लोग मतांतरित नहीं होते। बहुतही दुर्बल मन वाले ही मतांतरित होते हैं। हम उसके पीछे का उद्देश्य संपूर्णतया समझ सकते हैं।

मतांतरण से उद्भूत समस्याओं का संज्ञान न होने के कारण या कहीं सामाजिक स्थानमान के लिए मतांतरण होता है; विशेष कर, उपेक्षित बांधवों में व सामाजिक दृष्टि से दुर्बल अनुभागों में। अत: हमें विशेषत: उस प्रकार के लोगों में अपना संग-सहवास-संपर्क करते हुए, वे भी अपने धर्म के अविभाज्य अंग हैं; उनकी

वृत्ति–व्यवसाय, उनके रीति–रिवाज, या जाति–पाँति के कारण उनमें से किसीको भी दूर रखना उचित नहीं है – इस भावरूप को हमें कार्यगत करना चाहिए ।

अब, हमें ऐसी सावधानी बरतनी होगी कि धनवान व मध्यम वर्गीय परिवारों में उनकी पारिवारिक समस्याओं के साथ स्पंदित होते रहने के कारण, अपना धर्म त्याग के अन्य मत का स्वीकार कोई भी नहीं करेगा ।

इसके साथ ही, मतांतरण एक गैरकानूनी कृत्य है । इस प्रकार मतांतरण करने वालों को बिना किसी संकोच पकड़ कर, कानून के हवाले करते हुए क्यों न हों, हमें इसे हर हाल में रोकना पड़ेगा ।

८. क्या मतांतरितों को पुन: परावर्तित होते देखा है?

हाल ही में, यह एक बहुचर्चित विषय बन गया है । पहले कभी कुछ लोग प्रलोभन या भय के मारे मतांतरित होते हुए, हमने दूर से ही देखा होगा। विशेषत: ईसाई/मुस्लिमों से बात करते समय उनको समझ लेते हुए, सीधे प्रश्न पूछने पर कि कितनी पीढ़ी पहले आप मतांतरित हुए हो? हमें उनकी थोड़ी सी प्राथमिक जानकारी मिलती है। इसका पता चलता है कि क्या वे अभी–अभी (१ या २ पीढ़ियाँ) या बहुत पहले मतांतरित हुए थें? यह पूछने का कारण इतना मात्र है कि प्राय: उनको अपने पूर्वज हिंदू थें, या नहीं, इसकी जानकारी ही नहीं होगी ।

दूसरी बात याने, किस कारण मतांतरित हुए हो? यह प्रश्न पूछ कर, उनको और भी अधिक स्पष्ट रूप में समझाने का प्रयत्न करने पर, उनमें भी परावर्तन का बीज अंकुरित हो सकता है ।

आंज केवल भारत में ही नहीं, तों संपूर्ण विश्व में अनेक लोग हिंदू धर्म की ओर आकर्षित हो रहे हैं । उनके अपने मतों की सीमारेखाओं की जानकारी न होने यां वास्तविक चिंतन प्रक्रिया में उनकी चालाकी के कारण उनको स्वत: को अनुभवित हो रही यातनाओं को स्पष्ट रूप से समझ कर, वहाँ से पैर बाहर निकालने की भावना उनमें बिंबित हो गयी है । हमें भी अपने विचारों को इसी दिशा में चलाना समुचित होगा तथा परावर्तन कार्य के अपने प्रयत्नों की शुरुआत करनी होगी । उसी प्रकार, दूसरों द्वारा बोए जा रहें फिरकापरस्ती की भावना को उखाड़ कर फेंकते हुए, सर्वजन समभाव का अनुपालन अपने जीवन में उतार दिया जाए, तो कोई भी आदमी मतांतरित नहीं होगा । मतांतरित हुए लोग भी पुन: मातृधर्म में वापस आ जाते हैं ।

९. क्या मतांतरित लोग सुख से जी रहे हैं?

यहं अत्यंत चिंता व चिंतन का विषय है । अपने मूल तत्वों को भूल कर, अपने जन्म से चलाते आए आचरणों के विरुद्ध, अपने पूर्वजों के उज्ज्वल इतिहास को कलंकित करते हुए, अपने बांधवों से दूर होकर मतांतरित लोगों ने तात्कालिक प्रलोभनों का शिकार होकर, शाश्वत का सुख खोकर, अब वे तिलमिला रहे हैं । क्योंकि, जिसका धिक्कार करने के लिए उन्होंने अपने धर्म का त्याग किया था, उन्हीं समस्याओं का सामना वहाँ पर भी करने वालों की परिस्थिति व मनस्थिति कैसी होगी? कैसी होनी चाहिए? जिस सामाजिक वायुमण्डल के लिए अपने मातृधर्म का त्याग कर के, जिस नए मत में गएं थे, वहाँ भी उनको उसी प्रकार का या उससे भी बुरा अनुभव आने लगा है, तो भ्रमनिरसन के अलावा और कुछ नहीं होगा । उदाहरणार्थ, खाड़ी देशों में गएं भारतीय मुस्लिमों को वहाँ के लोग हिंदू-मुस्लिम के नाते ही पहचानते हैं । हिंदू धर्म के उपेक्षित समुदाय वाले अर्थात् एक दलित ने यदि ईसाइयत का स्वीकार किया तो वह दलित-ईसाई होता है; उसी तरह से लिंगायत-ईसाई, मराठा-ईसाई, राजपूत-ईसाई, जाट-इसाई आदि बन जाता है । इसीलिए उनकी अवस्था 'इतोऽपि भ्रष्टः ततोऽपि भ्रष्टः' (न घर का, न घाट का) ऐसी होती है । अतः वे छटपटाते रहते हैं ।

चुनाव

१. **क्या आपके घर में चुनावों के बारे में बातचीत होती है?**

अपना जनतांत्रिक पद्धति को मानने वाला देश है । जनतंत्र का आशय यही होता है कि जनता के अभिप्राय का स्वीकार कर, तद्नुसार सरकार चलानी चाहिए । कानून बनाना, जनता द्वारा उसका पालन सुनिश्चित करना, कराधान-करसंग्रह, उसका समुचित आवंटन, लोगों के सुखी जीवन के लिए जरूरी आहार, निवास, वस्तु, जल, बिजली, औषधि आदि सब बातों का सुयोग्य प्रबंध सरकार को ही करना होता है । सरकार को जनता के अभिमतानुसार चलना होता है । लेकिन सरकार द्वारा सोचे गए सभी कामों के बारे में लोकाभिप्रायों का संग्रह करना, उतनी सहज सुलभ बात नहीं होती। उसके लिए संबंधित प्रदेशों की ओर से एक-एक प्रतिनिधि का चुनाव करते हुए, उनको जनप्रतिनिधि के नाते सरकार व जनतंत्र के बीच की कड़ी के रूप में काम करना होता है । वैसे प्रतिनिधियों का चयन करने की प्रक्रिया को ही चुनाव कहते हैं। चुनाव लोकतंत्र का आधार है ।

समय-समय पर चुनाव आते हैं । संबंधित संदर्भों में काम करने के लिए कौन सुयोग्य व्यक्ति होते हैं? इसका निर्धारण नागरिकों को जागरुकता से करना अपरिहार्य होता है । उसके लिए मतदाताओं का जनजागरण करना जरूरी होता है । इस जागरण का प्रशिक्षण पहले हर घर में होना आवश्यक है । राजनैतिक दलों की नीतियाँ, पात्रताएँ, प्रत्याशी की क्षमताएँ; इन सबके बारे में सुनिश्चित अभिप्राय का निर्णय करने हेतु घर में चलने वाली स्वास्थ्यपूर्ण चर्चाएँ सहाय्यभूत होती हैं ।

२. क्या आपके घर के सभी वयस्कों का नाम मतदाता सूची में है?

हर जाग्रत मतदाता का पहला कर्तव्य होता है, अपना नाम मतदाता सूची सम्मिलित करने की ओर ध्यान देना । विविध कारणों से नाम इस सूची से छूट जाने की संभावना होती है । अत: मतदान के एकाध महीना पहले ही अपना नाम उस सूची में है, इसकी संतुष्टि करा लेनी चाहिए। इसकी जानकारी माध्यमों के द्वारा प्रकटित होती है। यदाकदा, सूची में नाम नहीं है, तो संबंधित अधिकारियों/कर्मचारियों से मिल कर अथवा न्यायालय जाकर निर्धारित प्रपत्र भर के, अपना नाम उस सूची में प्रविष्ट कराने की ओर ध्यान देना होगा ।

इस तरह, हर व्यक्ति को अपने नाम के बारे में सजग रहने के साथ साथ, घर के प्रमुख को चाहिए कि अपने घर के सभी वयस्कों के नाम उसमें शामिल हैं, इसे देखें; यदि नहीं हैं, तो उन्हें उसमें समाविष्ट कराएं ।

३. आपके घर के सभी मतदाता मतदान करते हैं?

जिनका नाम मतदाता सूची में समाहित होता है, वे ही मतदाता होते हैं । उनके लिए सुनिश्चित स्थान पर मतदान केंद्र होता है । वहाँ जाकर मतदान करना चाहिए । मतदान गोपनीय रहें, ऐसी ही व्यवस्था की जाती है । निर्धारित समय पर अपने विहित परिचय-पत्र के साथ जाकर, वहाँ के नियमों का पालन करते हुए, मतदान करना चाहिए।

४. मतदान के समय किन बातों का ध्यान रखते हो?

मतदान करते समय, अपने नाम पर ही मतदान करना चाहिए । दूसरों के नाम पर मतदान नहीं करना चाहिए ।

मतदान के दिन यथाशीघ्र मतदान केंद्र पहुँच कर, मतदान करना चाहिए । पैसा-जाति अथवा किसी अन्य प्रलोभनों का शिकार न होकर, सुयोग्य दल व सुपात्र व्यक्ति को मत देना चाहिए । देश के लिए परिश्रम करने वाले, प्रामाणिक, हिंसा में विश्वास न करने वाले, विदेशों पर निष्ठा न रखने वाले, अल्पसंख्यकों का तुष्टिकरण न करने वाले आदि सभी उनकी पात्रता के पहचान बिंदु हैं ।

जाग्रत मतदाता को चाहिए कि वह अपने साथ वाले मतदाताओं को भी इसी दृष्टि से प्रेरित करें ।

५. **क्या आपका मत व्यक्तिपरस्त या दलपरस्त है?**

मतदान ही जनतंत्र का मुख्य अंग है । अपना मत याने देश को आगे बढ़ाने के लिए हमारे द्वारा दी जाने वाली शक्ति है । विश्व में मान्यता प्राप्त ऐसे सैंकड़ों जनतांत्रिक देश होने पर भी, सभी देशों का जनतंत्र एक ही प्रकार का नहीं है । अध्यक्षीय जनतंत्र की अमेरिका, सांसदीय लोकतंत्र वाला भारत, इंग्लैण्ड आदि इस भिन्नता के उदाहरण हैं । चुनाव के विधान भी भिन्न होते हैं । वयस्क लोग ही मतदाता होते हैं । हर क्षेत्र में शेष प्रत्याशियों की तुलना में सर्वाधिक मत पाने वाला जीतने की पद्धति अपने देश में है । अत: यहाँ पर जो दल अधिक स्थान प्राप्त करता है, वही सत्ता पर आरुढ़ हो सकता है । उनकी नीतियों को ही प्रमुखता मिलती है। इसीलिए चाहे जितना सोचने पर भी, हमें दलों को ही चुनना होता है । व्यक्ति को भी दल की नीति के विरुद्ध चलना अमूमन संभव नहीं होता; चलना भी नहीं चाहिए । अत: हमारे मत दल को ही होने चाहिए।

६. **हमारे प्रचारतंत्र की उत्तम बातें कौनसी हैं? दोष क्या हैं? आपकी सलाह क्या है?**

जनतंत्र में सभी मतदान कर सकते हैं । प्रशासन अच्छा न हो, तो उस का परिवर्तन भी चाहिए । चाहे जितने बलशाली होने पर भी, उन्हें चुनावों का सामना करते हुए जीतना अनिवार्य होता है । अत: सत्ता शाश्वत नहीं है; वंशानुगामी भी नहीं आदि बातें अच्छी हैं।

अब दोष : मतदान करने, सत्ता प्राप्त होने के लिए केवल उम्र की ही पात्रता है । इसके लिए दूसरी कोई भी अर्हता नहीं है, इस बात को ध्यान में लेना आवश्यक है। क्या यह अच्छी बात है? या बुरी?

उसी प्रकार, चयनित प्रतिनिधि ने यदि सही ढंग से काम नहीं किया, तो उसको वापस नहीं बुला सकते । उसकी कालावधि पूरी होने तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है ।

क्रमश: धनबल, बाहुबल आदि का इस्तेमाल बढ़ते जाता है; अपराधी तत्व सत्ता पर आना, एक खराब बात है ।

'जनता राजा है और प्रतिनिधि जनसेवक', यह केवल मौखिक बात रह गयी है। 'राजसत्ता' गयी, याने एक 'राजा' नहीं है उसके स्थान पर सैंकड़ों, हजारों 'राजा' आए हैं । जनता ही उनकी दास बन गयी है। जनता के पैसों पर ही उनका सुखोपभोग चलता है। जनसेवा के नाम पर उनका दरबार चलता है, यह एक नग्न सत्य है ।

सबसे बड़ा खतरा है : 'लोकतंत्र के नाम पर ही निरंकुश सर्वाधिकारशाही (dictatorship) की संभावना'। एक ही सलाह है : लोकतंत्र के निर्वहन में दिखायी देने

वाली तृटियों–दोषों को दूर करते हुए, उसमें सुधार लाने हेतु एक व्यवस्था, लोकपाल जैसी एकाध समिति की रचना करते हुए उसे संपूर्ण अधिकार देना चाहिए; जिनका निर्मोहित्व, निर्लोभित्व साबित हो चुका है, उनको ही उसका सदस्य बनाना चाहिए ।

७. क्या सभी वयस्कों को मतदान का अधिकार होना सही है?

सही नहीं है । उम्र के साथ थोड़ी तो शिक्षा, व्यवहार ज्ञान से युक्त लोगों को ही मतदान का अधिकार देना चाहिए ।

उसी तरह, तीन बार लगातार मतदान न करने पर, उनका मतदान का अधिकार रद्द होना चाहिए अथवा उनको मतदान की अनिवार्यता का संज्ञान हो, ऐसी व्यवस्था करनी होगी ।

८. चुनावों में धन का प्रभाव कम करने या अवैध कामों पर रोक लाने के लिए क्या करना चाहिए? अपराधी चरित्र के लोग नेता न बनें, इसके लिए क्या करना होगा?

ये दोनों प्रकार के अवैध काम बिना नेताओं के समर्थन से नहीं हो पाते। सभी दल व सरकारें इस कमी को दूर करने हेतु उन पर जनमत का दबाव बढ़ाना होगा। सज्जनों को चाहिए कि वे अपने-अपने गाँवों में एकत्रित आकर जनजागरण करें।

सबके चुनावी खर्चे के बोझ का वहन सरकार को ही करना चाहिए; विभिन्न दलों द्वारा प्राप्त मतों के अनुपात में उनको प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) प्रदान करना; दल की जीत होने पर, उनकी सूची में स्थित सर्वोत्तम नेतागण ही अनुक्रम से सरकार में (list system) सहभागी हो सकें ऐसी तब्दिलियाँ चुनावी प्रक्रिया में लानी होगी ।

अपनी चुनावी पद्धति को अब साठ वर्ष हो चुके हैं । अब तक प्राप्त अनुभव के आधार पर उसकी उपयुक्तता का मूल्यांकनात्मक परिशीलन करते हुए समुचित व्यवस्थाओं का निर्माण करना होगा ।

जीवन ही प्रसाद है

१. क्या आपके यहाँ 'नैवेद्य' ('भोग'), प्रसाद आदि शब्दों का प्रयोग होता है?

अंग्रेजी शिक्षा प्रभाव के अधीन होकर, अंग्रेजी का ही प्रयोग करने वाले घरों में नैवेद्य (भोग), प्रसाद, अभिषेक, तीर्थ, प्रदक्षिणा, पुण्य, धर्म, मोक्ष आदि शब्दों का उपयोग होता नहीं। ये सारे हिंदू संस्कृति सूचक शब्द हैं । इनके समानार्थी अंग्रेजी शब्द है ही नहीं । विशेष ध्यानपूर्वक इनका प्रयोग करने पर ही, ये बच सकते हैं और उनका अर्थ भी लग सकता है।

अपने खाने के लिए तैयार किए आहार–पदार्थों को हमारे सेवन से पहले देवता के सामने रख कर समर्पित करना ही नैवेद्य (भोग) होता है। नैवेद्य (भोग चढ़ाने) के पाश्चात्, श्रद्धापूर्वक उसे स्वीकारते हुए, सेवन करना ही प्रसाद है । हमें प्रयत्नपूर्वक इन दोनों शब्दों की अभ्यास लगा लेनी चाहिए ।

२. क्या सभी खाद्यपदार्थों का सेवन नैवेद्य (भोग) के पश्चात् ही करते हो? अर्थात् क्या आपके घर में केवल 'प्रसाद' का ही सेवन किया जाता है?

आज भी परंपरानिष्ठ परिवारों में आगंतुकों को 'खाने के लिए चलिए' ऐसा नहीं बुलाते; बल्कि कहते हैं : प्रसाद के लिए आइए । जिस घर में सभी खाद्यपदार्थों का 'नैवेद्य' (भोग) बनाते हैं, वहाँ सभी को केवल 'प्रसाद' ही प्राप्त होता है ।

पुरी के जगन्नाथ मंदिर में सभी को 'महाप्रसाद' ही प्राप्त होता है। तैयार किए सभी पदार्थों का 'नैवेद्य' करा के ही बाँटते हैं । अनेक बड़े छात्रावासों में भी यही प्रथा चली आ रही

है । थोड़ा सा कष्ट उठाते हुए क्यों न हो, अपने घर वालों का भला हो, इस दृष्टि से घरों में ऐसे उत्तम संस्कार प्रदान करना संभव होता है । यहाँ कष्ट याने, थोड़ी सी सहनशीलता व सावधानी मात्र है ।

३. क्या आपका जीवन ही प्रसाद बना है ?

जीवन को 'प्रसाद' बनाने के लिए अपना सब कुछ ईश्वर को ही समर्पित करते हुए उसे चलाने का मनोभाव सभी स्त्री-पुरुषों में रहना चाहिए । केवल तभी जीवन के सभी क्रियाकलाप ईश्वरार्पित होकर, 'न मम' (मेरा नहीं) कह कर, तद्नुसार चलना चाहिए । अपने घर की सभी गतिविधियाँ अपनी नहीं, बल्कि ईश्वर की ही है इस भाव से ही जीना चाहिए। वही समुचित लक्ष्य है । निरंतर साधना करते हुए धीरे-धीरे उसे प्राप्त करना चाहिए ।

४. जीवन ही 'प्रसाद' बनने में कौनसी बाधाएँ हैं ?

अड़चनें बाहर नहीं, वे हमारे अंदर ही होती हैं । पहली बाधा याने पति-पत्नी दोनों के बीच इस विषय में सहमति बनाने की है । सहमति बनाने के लिए दोनों के बीच दृढ़ विश्वास और आपसी गौरव होना चाहिए। यह पूर्णरूपेण न होने पर, 'मैं मेरा'का भाव बढ़ता है । उसके बदले 'हम', 'हमारा' यह भाव बढ़ना चाहिए । यह भाव बिंबित होने तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

५. जीवन को 'प्रसाद' बनाने के लिए क्या कुछ करना चाहिए ?

प्रसाद कहते ही स्मरण आती है खाद्य पदार्थों की । अत: सभी खाने की वस्तुओं उचित समय पर ईश्वर के सम्मुख रखते हुए स्वीकार करो, ऐसा अनुरोध करने की आदत लगा लेनी चाहिए । क्रमश: हमारे द्वारा अनुभवित/उपभोगित सभी वस्तुएँ भी 'उस' को अर्पित करते हुए, अनुभव/उपभोग करने की दृष्टि, पद्धति को स्वीकार करना पड़ेगा । तब धीरे-धीरे जीवन ही 'प्रसाद' बन जाता है ।

उपभोक्तावाद
(Consumerism)

१. क्या यह सही है की पाश्चात्य सभ्यता का प्रमुख लक्षण उपभोक्तावाद (Consumerism) है?

हाँ ! सौ प्रति शत सही है । पाश्च्यात्यों का सिद्धांत है : विश्व है ही मानव के सुख के लिए । वे बताते हैं कि सृष्टि की रचना करते हुए ईश्वर ने मानव को कहा: ''मैंने तुम्हारे लिए ही विश्व की रचना की है। जावो, सुख से जियो !'' इसीलिए पाश्चात्य चिंतन में अपने सुख के लिए दुनिया को लूटने की आतुरता दिखायी देती है । 'कुछ भी करो, चिन्ता नहीं । मुझे जो चाहिए, उसे मैं प्राप्त करके ही रहूँगा।' यही दृष्टि उनमें विकसित हुयी है । 'संसार के पशु, पंछी, प्राणी, जीव, जंतु हों; या पेड़-पौधे-बनस्पतियाँ आदि सभी केवल मेरे लिए ही हैं । मुझे ही उनका उपयोग, उपभोग करना है' ऐसा गँवारापन भी है । अर्थ-काम ही लक्ष्य रहा उपभोक्तवाद (Consumerism) ही पाश्चात्य सभ्यता का लक्षण है ।

२. क्या पहले आवश्यकता, बाद में उत्पादन यह नीति सही है? या 'पहले उत्पादन, बाद में आवश्यकता ओं का निर्माण' यह सही है?

भारत का चिंतन पाश्चात्यों के चिंतन से भिन्न है । यहाँ संसार मानव के लिए नहीं, बल्कि मानव संसार के लिए है । इस धरा पर ८४ लाख जीवजंतु आदि हैं । मानव की भाँति ही उन सबको भी इस दुनिया में जीने का हक़ है । अत: किसीको भी केवल अपने लिए ही विश्व का शोषण नहीं करना चाहिए । ईशावास्योपनिषद का उपदेश है ।

'जितनी आपकी आवश्यकता है, उतना ही संसार से प्राप्त कीजिए । दूसरों की वस्तू की अपेक्षा नहीं करना ।' भारतीय दृष्टि कहती है : 'अपनी आवश्यकता की पहचान करने के पश्चात् उनका उत्पादन कीजिए।' इसके विपरीत पाश्चात्य चिंतन बताता है : 'पहले नयी वस्तुओं का आविष्कार करते हुए उनका उत्पादन करो; तदुपरांत उनका उपयोग करनेवालों को तैयार करो ।' अमेरिका व यूरोप के अनेक देशों द्वारा प्रचंड पैमाने में युद्धसामग्री का निर्माण करना ही इसका एक ताजा उदाहरण है । युद्धों को इसीलिए ही थोपा जा रहा है ताकि अन्य देश उसकी खरीदी करें । संसार को इन आयुधों से होने वाले लाभ–हानि चाहे कुछ भी हों, उन कंपनियों का मात्र लाभ ही लाभ है । ऐसी लाभैक दृष्टि से किसीको भी सुख नहीं मिलता । अत: जैसी–जैसी आवश्यकता होती हैं, वैसे–वैसे उत्पादन करने की सहज मानव नीति सार्वकालिक रीति से समुचित व भली होती है । प्राकृतिक संपदाएँ असीम नहीं हैं; उनकी सीमाएँ हैं । उन सीमाओं का उल्लंघन न हो, इस सावधानी के साथ सुख प्राप्ति के प्रयास करने चाहिए।

३. क्या हर नयी वस्तु अपने पास होनी ही चाहिए, ऐसी आतुरता सही है?

भोग संस्कृति में पहले स्पर्धा बढ़ जाती है । वस्तुत: विवेकी व्यक्ति को स्पर्धा से बाहर रहना चाहिए । किसीका बुरा न चाहते हुए, अपनी शक्ति, पात्रता, क्षमता व आवश्यकता के अनुसार, जीने वाला व्यक्ति ही सज्जन होता है । सज्जन स्पर्धा को मानते ही नहीं । किंतु पाश्चात्य सभ्यता का आधार ही तुलना व स्पर्धा है । व्यापारी मनोभाव वाले लोग तुलना–स्पर्धा का उपयोग करते हुए ही बड़े धनवान होते हैं। आज के जीवन में विज्ञप्तियाँ, प्रचार आदि इनका ही प्रचोदन करते हैं। हर व्यक्ति के अहं को उत्तेजित करते हुए, अपनी वस्तुओं का विक्रय करने के लिए आप एक विशेष व्यक्ति हो, 'सबसे श्रेष्ठ हो' ऐसा झूठा विश्वास, आत्मप्रज्ञा लोगों में बढ़ाते हैं । तब उस विशिष्ठ व्यक्ति को लगता है कि अपने पास हर नयी चीज होनी ही चाहिए । वस्तु पुरानी होने पर भी उसका हर नया brand, नया model अपने पास होना ही चाहिए, ऐसा मनोभाव बढ़ाते हैं । एक बार इस भावना का शिकार बना व्यक्ति इतना आशान्वित हो ही जाता है, और सभी नयी वस्तुएँ प्राप्त करने प्रयास अवश्य करता है । साथ ही वस्तुओं के होने से सुख, ऐसी मूढ़ता भी बढ़ती है । सुख वस्तुओं में नहीं होता; वह उनका अनुभव करने वाले मन में होता है : ऐसी समझदारी आने पर, सत्य का संज्ञान होने वाला व्यक्ति वैसी चीजों के लिए आतुर नहीं हो सकता ।

४. 'क्या आवश्यक है?' यह सोच कर वस्तुएँ घर लाते हो? या पड़ोसी ने लायी है, इसलिए लाते हो?

आवश्यक होने पर लाना, यह सरल जीवन का लक्षण है। लेकिन, सब लोग ला रहे हैं; पड़ोसी ने भी लाया है; यह केवल बनावटी 'अहं' का प्रदर्शन (snobbery) है। पड़ोसी ने नकली दाँतों का सेट बना लिया है, इस कारण यदि किसीने अपने लिए भी दाँतों का सेट बनवाया; तो उसे क्या कोई विवेकशील व्यक्ति मान सकेंगे? परंतु, कृत्रिम अहं के शिकार बने लोगों का उसेही अति श्रेष्ठ मानते हुए, दिखाऊ वस्तुओं से भ्रमित होना, आजकल एक सामान्यसी बात बन गयी है। कृत्रिम कान, नाक, भौंहें बनवाके लगाने के नये-नये उद्योग ही निर्माण हुए है न? यह सही भी नहीं; और गलत भी नहीं – इसे पहचानने वाले लोग ऐसी त्रुटि नहीं करते।

५. बच्चों को वस्तुएँ आवश्यक लगने पर ही दिलाते हो? माँगते ही दिलाते हो? या उनके माँगने के पहले ही आप स्वयं आगे बढ़ कर दिलाते हो?

आज के भोगयुग का लक्षण है कि देखी हुयी हर वस्तु की अपेक्षा करना। किंतु, वह 'आवश्यकता है, अनिवार्य है' इसकी सोच करना विवेक का लक्षण है। अपने द्वारा अपेक्षित सब कुछ अवश्य मिलना चाहिए, ऐसी दृढ़ इच्छा बच्चों में बढ़ना भी, उनके विकास की दृष्टि से अच्छा नहीं है। माता-पिता को चाहिए कि वे बच्चों को क्या आवश्यक है, क्या नहीं, इसकी पहचान करने की क्षमता उनमें प्यार-दुलार से ही बढ़ाएं। बाज़ार में आयी हर वस्तु अपने घर में भी हो, यह सोच अच्छी संस्कृति का लक्षण नहीं है। क्या आवश्यक है, क्या नहीं?, इसका संज्ञान भी यदि बचपन में ही उनमें आया, तो बच्चों का विकास अच्छा होता है।

६. कानून कहता है कि १६ वर्ष की उम्र पूरी नहीं हुई, तो उसे वेगवान वाहन नहीं चलाना चाहिए। क्या यह सही है? क्या आप इसे मानते हो?

आज के वेगभरे युग की विभिन्न विकृतियों में 'बालापराध' नामक एक विकृति है। वास्तविक बच्चों को अपनी शक्ति की सीमाओं का संज्ञान होने के कारण वे अपराध करने से घबराते हैं। लेकिन, आज के वेगवान युग में बचपन में ही पैसा, यंत्र, वाहन आदि सुलभ होकर, उनके मन-मस्तिष्कों में 'मैं चाहे जो कर सकता हूँ' इस रूखेसूखे अहं-प्रतिष्ठा के कारण बच्चे अनगिनत अपराध करते हैं; कर रहे हैं। इसकी पीड़ा उनको जिस प्रकार होती है; वैसी ही वे दूसरों को भी तकलीफ पहुँचाते हैं। यह सब

रोकने के लिए ही ऐसे कानून बनाए गए हैं । उनको मानते हुए उनका परिपालन करना, यह हम सबका कर्तव्य है।

७. क्रय करने के पश्चात् वस्तु निरुपयोगी है, ऐसा पता चलने पर आप उन वस्तुओं का क्या करते हो?

यह प्रश्न ही आधुनिक दुनिया का प्रतीक है। आवश्यकता ओं का संज्ञान न होते हुए भी, आज हम अनेक वस्तुएँ घर में ला रहे हैं। घर आने के एक-दो दिनों में वह निरुपयोगी सिद्ध होती हैं। पश्चिमी देशों में अनेक घरों में तरण-ताल होता है। उसके रखरखाव के लिए हजारों डॉलर्स खर्च होते हैं। केवल उसका उपयोग करने वाले ही न होने के कारण, वह उनकी प्रतिष्ठा का चिह्न (Status Symbol) बनके रह जाता है। उसी प्रकार अपने यहाँ भी अनेक घरों में बिना उपयोग की वस्तुओं का एक कमरा ही बन गया है। जो उनका उपयोग कर सकते हैं, उनको दिया जा सकता है। परंतु देने का मन इस भोगवादी युग में होता नहीं। आज का मनोभाव यही है : हमारे यहाँ पड़ी रहने दो, चिन्ता नहीं।

८. क्या आपको पता है कि हमें आकर्षित करने वाली अधिकांश वस्तुओं का पुनर्विक्रय मूल्य (Resale Value) नहीं होता?

भोगयुग का मंत्र ही है 'Use and Throw' (उपयोग करो और फेंक दो); दुबारा उसका उपयोग मत करना । अत: बहुत दिन तक उपयोग में आवें, इस रीति से तैयार ही नहीं करतें । नित्य नयी वस्तु की ही अपेक्षा करते रहते हैं । उपयोग करो, फेंक दो । पर, कई वस्तुएँ फेंकनी भी हो, तो उन्हें फेंकें भी कहाँ? आकर्षित होकर वस्तुओं को घर में लाना; और दूसरे घरों में फेंकी वस्तु की अपेक्षा करना – यही आजकल की दुरवस्था है ।

९. क्या बाजार में Brand के नाम से कई गुना अधिक मूल्य पर उपलब्ध सभी वस्तुएँ शोषण का एक माध्यम होती हैं?

'Buy one, take three.' (एक खरीदो, तीन ले जावो) यह बाजारू तंत्र आजकल सबके मुँह की बात है । यह शोषण है यह सबको पता है। लेकिन, यह भी उतना ही सच है कि जब तक लोग शोषण करा लेने के लिए स्वयं तैयार हैं, तब शोषकों की संख्या भी बढ़ती जाती है । अत: हमारे अंदर यह विवेक बुद्धि बढ़नी चाहिए कि हम शोषित नहीं होंगे । तभी आज का यह व्यापार रुक सकता है ।

एक और मार्ग भी है । Brand वाली किसी भी वस्तु का उपयोग करना नहीं, उन्हें क्रय करना नहीं । इसके लिए भी विवेक व सहनशीलता आवश्यक है । वैकल्पिक वस्तुओं की खोज, निर्माण, बजारों में उनका प्रचलन बढ़ाने का तंत्र आदि सब आवश्यक है । तभी स्वदेशी, स्थानीय तकनीकी, गृहोद्योग, सहकारी उद्योग आदि विकसित हो सकते हैं ।

१०. क्या विज्ञापनों पर विश्वास करते हुए, वस्तुओं की खरीदी करना होशियारी का लक्षण है?

निश्चित ही नहीं । समाचार पत्रों में विज्ञप्तियों के साथ–साथ इनकी गुणवत्ता के लिए हमारा दायित्व नहीं हैं यह वाक्य भी छिपा हुआ होता है न? फिर भी हम खरीदते हैं न? लोगों को ठगने वाले बैंक, कंपनियाँ हर दिन आँखों के सामने दिखायी देते हुए भी, लोग पुन: पुन: ठगे जा रहे हैं । जब तक ठगे जाने के लिए लोग तैयार होते हैं, ठगने वाले लोग भी बढ़ते जाते हैं । हर बार उनके तंत्र नये–नये होते हैं ।

सजना-धजना

१. क्या सबके लिए सजधजना आवश्यक है? क्या इसका अनुसरण उम्र, लिंग, परिवेश आदि के अनुसार भिन्न होना चाहिए?

बचपन के अनुरूप बच्चे का पहनावा किया जाए, तो उसके सहज हालचाल के लिए सहायक होता है । बाहरी सजधज बच्चे की मृदु त्वचा, बालों की सुरक्षा के लिए सहायक होने चाहिए ।

हर दिन स्नान, स्वच्छ वस्त्र धारण, हर दिन सिर के केशों की कंघी, सप्ताह में एक बार तो तेलस्नान (अभ्यंग) आदि दैहिक स्वास्थ्य व बच्चों के संवर्धन के लिए सहायक होता है । कालमान के अनुसार, वस्त्र परिधान भी बच्चे के स्वास्थ्य की दृष्टि से सहकारी होता है ।

युवा-युवतियों का पहनावा युगानुकूल हो; और आत्मसम्मानजनक रहना चाहिए। बाहरी सजधज तथा पहनावा हमारे व्यक्तित्व का निदर्शक होना चाहिए । सजधज की सरलता हमारे व्यक्तित्व को उत्तम बनाने में सहयोगी होता है । युवा-युवतियों का पहनावा दूसरों के लिए उत्तेजक न हो; वह उनके लिए भूषणास्पद हो ।

उम्र के अनुरूप वयस्क लोगों का सजधजना उनके आत्मगौरव वर्धन तथा व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति में प्रमुख भूमिका निभाता है ।

वरिष्ठ नागरिकों के सम्मान, गौरव, लक्षण व गुणवर्धन में सजधजने की सरलता सहायक होती है ।

कुल मिला कर, ऋतुमान व उम्र के अनुरूप, आत्मसम्मान, गौरव व सरलता को अभिव्यक्त कर सकने वाला सजधजना सार्वकालिक तौर पर सर्वमान्य होता है।

आयुर्वेद भी कहता है कि मुखमार्जन, स्नान, स्वच्छ वस्त्रधारण, केश-नाखूनों को सरलता व स्वास्थ्यपूर्ण रीति से काटना, सुगंधद्रव्य लेपन आदि का अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उपयोग करना चाहिए ।

२. सजधजने से होने वाली समस्याएँ क्या हैं?

अति सजधजना स्वास्थ्य व मन:स्थिति पर खराब परिणाम करता हैं । बहुत मूल्यवान पहनावों, गहनों से सजधजने के बाद, कपड़े खराब होंगे इस भावना से अपने स्वयं को निरंतर कामों में जुटा लेने या अधिक काम करने में अड़चनें आएंगी ऐसा हमें लगता है । बहुत मूल्यवान गहने पहन कर हम चोरों को आमंत्रित करते हैं । कुछ परिवेशों में संकोच, किरकिरी, कष्टों को हम स्वयं ही न्योता देते हैं । समाज में अति सजधजना, अंधानुकरण, विदेशी शैली के पहनावों के कारण, या दूरदर्शन-फिल्मों के प्रभावों से उत्तेजित होकर युवा-युवतियों का सजधजना केवल उनकी बोलचाल में ही बदलाव लाने तक ही सीमित नहीं रहता; वह अपनी भारतीय जीवनशैली बेमेल होने या बहुतसे लोगों के सामने अलग रीति से स्पष्ट दिखायी देने जैसे रहा, तो वह अन्यों को व स्वयं वैसे सजेधजे लोगों को भी कष्ट में डाल सकता है ।

३. सजधजने की सामग्रियाँ क्या हैं? उनमें कौनसी देह को शक्ति प्रदान करती है? कौनसी हानि पहुँचाती है?

सजधजने की दो विधाएँ हैं । नित्यालंकार तथा निमित्त के अनुरूप विशेष अलंकार।

नित्यालंकार प्रतिदिन की दिनचर्या होती है; स्वास्थ्य की दृष्टि से वह मन की हर्षदायक स्थिति का कारण होता है। उसे ही आयुर्वेद में निम्नांकित रीति से बताया गया है।

'पादप्रक्षालन:' बार-बार पैर धोना । बाहर से अंदर आते ही, रसोई में प्रवेश करते समय, भोजन के पहले व बाद में पादप्रक्षालन करने से शुचिता के लिए सहायक व रोग परिहारक होता है । दृष्टि प्रसादक व प्रीतिवर्धक भी होता है ।

'दन्तधावन:' हर दिन दाँत माँजने से दाँत व मसूढ़ों की रक्षा तथा मुखरोगों का निवारण होता है । खाने में स्वाद तथा पाचनक्रिया में सहायक होता है ।

पुरुषों को समय-समय पर सिर के बाल, दाढ़ी-मूँछे, नाखून आदि का काटना शुचित्वकारक, रूपप्रकाशी, आयुपुष्ठिकर तथा वीर्यवर्धक होता है । दिनशुद्धि, तिथिशुद्धि आदि देख कर, इन्हें काटने का काम सुबह ही पूरा कर के, बाद में ही स्नान करना अच्छा होता है ।

स्त्री-पुरुष दोनों द्वारा हर दिन सिर के बालों की कंघी करने से धूल, मैल आदि दूर होकर, केश ढंग से बढ़ते हैं । सिर को अभ्यंग करने से केवल शिरोरोग दूर होते हैं ऐसा नहीं, तो केश मुलायम, काले व स्निग्धताभरे होते हैं । सिर के लिए शीतकारक व बलदायक होता है। इंद्रियों याने आँखे, कान, नाक, जिव्हा को शक्ति मिलती है। चेहरा भी प्रसन्न रहता है ।

देह को तेलाभ्यंग करने से त्वचा मुलायम होकर, धातुओं की पुष्ठि होती है। निर्मलता, वर्ण व बल की वृद्धि होती है ।

'स्नान:' - हर दिन स्नान करने से आनंद, तृप्ति, शुचिता सब कुछ प्राप्त होता है । स्नान से निद्रा, जलन, श्रम, पसीना, खुजली, प्यास, आलस आदि दूर होते हैं । उसी प्रकार, यह पाचन क्रिया में भी सहायक होता है । अत: नित्य स्नान अत्यावश्यक है।

साफसुथरे वस्त्र धारण करना कीर्तिकारक, आयुष्कारक, आनंदप्रद, व सभायोग्य होता है ।

एक बार पहने हुए कपड़े फिर से पहनना; मलीन वस्त्र या दूसरों के कपड़े धारण करना; फटे-पुराने या जले हुए कपड़े पहनना दरिद्रता तथा रोग लाता है।

बताया गया है कि गंध, फूल, माला धारण करना पुष्ठि-बल-आयु का संवर्धन करने में सहयोगी होता है । उसी प्रकार गंधानुलेपन (परयुम का प्रयोग) सौभाग्य-प्रीति-कांति-बलकारक, पसीनानिवारक व श्रमपरिहारक होता है ।

कहा गया है कि रत्नजड़ित गहनें धारण करना धन-मांगल्य-संपत्तिसूचक होता है । आयु-उल्लास-काम-कांति का संवर्धन होता है।

आयुर्वेद में उल्लेख किया गया है कि इस प्रकार हमारी दिनचर्या में हर दिन सजधज के रहना स्वास्थ्यरक्षा की दृष्टि से अच्छा होता है ।

विशेष संदर्भों के अनुसार संबंधित सभा, समारंभ, कार्यक्रम के अनुरूप अपने व्यक्तित्व को कलंकित न कर पाने वाला व अपने व्यक्तित्व की पुष्टि कर सकने वाला सरल, परंतु सहज, सुंदर सजधजना आवश्यक होता है ।

४. हानि कर सकने वाले सौंदर्यप्रसाधन कौनसे हैं?

सौंदर्य प्रसाधन प्राकृतिक होने चाहिए । सिंथेटिक सामग्रियों से शरीर के लिए ऍलर्जी उत्पन्न होने की संभावना अधिक होती है । उदा. केशरंजक (हेअर डाई), देह पर लगाने वाले परिमलद्रव्य (परफ्यूम्स) । ये केवल शरीर के लिए अति हानिकारक ही नहीं, तो मरणांतक परिणाम करने वाले भी हैं । त्वचा की ऍलर्जी होने पर जलने की भाँति होकर त्वचा अपना प्राकृतिक वर्ण, कोमल ता खो बैठती है । हेअर डाई आँखों के लिए भी हानिकारक होते हैं । होंटों के रंग जैसी वस्तुओं भी यदि प्राकृतिक न हों, तो होंठों के लिए मारक बनके, होंठ शाश्वत रूप में काले पड़ सकते हैं।

५. क्या प्रसाधनों की सीमाएँ आपके घर के सभी को ज्ञात है?

उम्र के अनुसार सजधजने के उपरांत, व्यक्ति को गौरवादर मिलता है। महिलाओं का प्रसाधन आदर्शप्राय हो, इसका ध्यान यदि रखा जाए, तो घर के सदस्यों व सगेसंबंधियों में वे विशेष सम्मान के पात्र बन जाती हैं। उसी प्रकार बच्चों का बड़ों के प्रति सम्मानभाव बढ़ता है ।

६. क्या प्रसाधनों में स्वदेशी-विदेशी ऐसा कुछ है?

वनस्पतिजन्य प्रसाधन स्वदेशी होते हैं और उनसे स्वास्थ्यरक्षा होती है । विदेशी प्रसाधान अधिकांशत: रासायनिक द्रव्यों से बनाए जाते हैं और अनेक संदर्भों में हानिकारक होते हैं ।

केशरंजकों में केशों को निखारने, रंग भरने के लिए प्रयोगित वस्तुएँ, चेहरों का सौंदर्य बढ़ाने हेतु उपयोगित ब्लिच, क्रीम्स, लिपिस्टिक, फेशियल क्रीम्स, फेस पैक्स, आँखों की पँखुडियों पर लगाने वाले रंग, आँखों की पुतलियों का रंग बदलने के लिए प्रयोगित सामग्रियाँ आदि सब विदेशी विचारों से भरी हुयी होने के कारण, उनमें से अधिकांश हानिकारक ही होती हैं । (पहनावों में वहाँ की ठंड के अनुसार सूट-बूट-टाई आदि हमारे जैसे ऊष्ण वलयीन प्रदेशों में अत्यंत विपरीत परिणाम पैदा करते हैं।) स्त्रियों का पहनावा-प्रसाधन भी असह्य भाव उत्पन्न करने वाला होता है । उदा. महिलाओं द्वारा पहनी हुयी पैन्ट उनके सुलभता से गृहकार्य करने में बाधा उत्पन्न करती है। सहज नीचे बैठना भी कठिन होता है। स्त्रियों के बाल कतरना विदेशी संस्कृति है। लंबी वेणी बचा के विविध रीति से जूड़ों की रचना करना, इस देश की विविधता में एकता का संकेत है।

७. **सौंदर्य-प्रसाधन क्या केवल प्रदर्शन के लिए या सुरक्षा व सम्मान बढ़ाने के लिए होते हैं?**

हमारे द्वारा किया जाने वाला सौंदर्य प्रसाधन दूसरों की दृष्टि में सम्मानकारक होना चाहिए । साफसुथरा रहन-सहन तथा ठंड-वर्षा-गर्मी आदि ऋतुमान-हवामान के अनुसार शरीर प्रकृति, स्वास्थ्य के अनुरूप रक्षा हेतु आवश्यक एवं दैहिक आरोग्य के लिए पूरक रूप में प्रसाधन करना सबके लिए जरूरी होता है ।

८. **सौंदर्य-प्रसाधन से यदि भय, आतंक बढ़ गया, तो क्या करोगे?**

अपनी हिंदू संस्कृति में उम्र के हिसाब से प्रसाधन रूपित हुए हैं। छोटीसी बच्ची का लेहंगा, चोली, वेणी, पैंजन, कंगन आदि सब कुछ इस प्यारी सी गुड्डी को अति प्रिय होता है । उसी तरह बड़ी सुहागन की माँग में बड़ासा सिंदूर, गालों पर हल्दी, बालियाँ, नथनी, कंगन आदि पूज्यभाव सुझाता है । किंतु खेद की बात यह है कि आज उस संस्कृति का प्रचलन कम होकर, अपनी वेषभूषा ने बड़ा ही विचित्र मोड़ ले लिया है । इस कारण, स्त्री-पुरुषों में आपसी आदर-गौरव भाव उत्पन्न होने के बजाय; कामवासना, हीनगंड, उपहास, असह्यता आदि विकृतियों के उदय की अनुकूलता उत्पन्न हो गयी है । इसके अतिरिक्त, कभी-कभी असभ्यता, आतंक की स्थिति भी पैदा होती है । भय मिटाने के लिए ज्ञान बढ़ना चाहिए । विवेक से सही-गलत का पता लगा कर, विश्वास बिंबित करने वाला प्रसाधन प्रचलन में आना चाहिए ।

९. **क्या आपको विश्वास है कि आपका सजधजना सदैव सभ्य होता है और वह आपका आत्मगौरव बढ़ाने वाला होता है?**

सभ्यता की सीमाओं से आबद्ध सजधजना आपकी प्रतिष्ठा व गौरव दोनों बढ़ाता है । उम्र के हिसाब से, स्वास्थ्य, मौसम के अनुरूप, अपनी संस्कृति के पूरक रूप में, असभ्यता-अश्लीलता-आडंबर की हवा से दूर ऐसा सजधजना हमारे लिए सर्वदा ग्राह्य है। चाहे वह हमारे द्वारा पहने हुए वस्त्र हों या प्रसाधित सौंदर्य, किसी अन्यों के मन में विकार पैदा करने वाला नहीं होना चाहिए । मानों कि यह कम ही है, हमारे द्वारा वस्त्र धारण करने का मूल उद्देश्य केवल प्रतिष्ठा प्राप्ति व प्रदर्शन, या हमारा धन या आडंबर दिखाना नहीं है । इसके विपरीत, वह स्वास्थ्यरक्षा के लिए होता है, इतना सामान्य सा विवेक भी खोकर, अनेक लोग आज चित्र-विचित्र ढंग के कपड़े पहन रहे हैं । इसीलिए पाश्चात्य कल्पना के Dressed to kill नामक दुष्टता को उखाड़ फेंक कर,

सुशीलता-शालीनता से युक्त, सबको आनंद दे सकने वाला, किसीको भी समस्यात्मक-संकोचात्मक-असह्य आदि न लगने वाला सौंदर्य प्रसाधन करना चाहिए।

१०. बच्चों का सजधजना सही न लगने पर, उसे कैसे सुधारते हो?

बच्चे अपने साथी बच्चों के रंग-ढंगों का ही अनुसरण अधिक करते हैं । साथ ही आजकल दृश्यमाध्यमों में दिखायी देने वाला सजधजना सहज ही उनके मन को आकर्षित करता है । ऐसे समय, माता-पिता, बड़े-ज्येष्ठजनों को चाहिए की वे उनका सूक्ष्म अवलोकन करते हुए, उनके हालचाल, सजधजना आदि ध्यानपूर्वक देख कर, उसका व्यर्थ व्यंग न करते हुए, धीरे-धीरे उपहास में ही, उदाहरणोंसमेत उनका मनपरिवर्तन कर के, सभ्य सजधजने में उनकी अभिरुचि बढ़ाने के लिए उन्हें प्रेरित-प्रोत्साहित करना चाहिए । उसके साथ ही, उनको सही ढंग से समझाने योग्य बात यही है कि सजधजना ही सर्वस्व नहीं; और हमारे सजधजने का तात्पर्य किसी दूसरों को रिझाना नहीं है ।

११. क्या उत्तम सजधजना देख कर, उसकी सराहना करने की अभिरुचि आपमें है?

उत्तम बातों की सराहना करना ही सज्जनता का लक्षण है । वह अपने शत्रु में हो, तो भी उसकी प्रशंसा करनी चाहिए । स्वयं उत्तम रीति से सजधज कर, दूसरों का सिंगार करना भी एक क़ला होती है । इस प्रकार उत्तमता का दर्शन होते ही, निश्चित ही उसकी प्रशंसा करनी चाहिए और उनको प्रोत्साहित करते हुए, दूसरों को भी उसका अनुकरण-अनुसरण करने की प्रेरणा देनी चाहिए । समय-संदर्भ व व्यक्तियों को ध्यान में रखते हुए ऐसी प्रशंसा की बातें करनी चाहिए; अन्यथा इसे सार्वजनिक परिवेशों में कोई स्थान नहीं है, ऐसा लगना चाहिए ।

घरेलु दवाइयाँ

१. आपको रसोई सामग्री के औषधि गुण ज्ञात हैं? क्या आपके घर में किसी दूसरे को पता है?

हमारी हिंदू पद्धति की रसोई में सब कुछ स्वास्थ्य को प्रमुखता देते हुए बनाने का विधान शामिल किया गया है । प्रतिदिन की रसोई में हमारे द्वारा उपयोग किए जाने वाली दालें, तरकारियाँ, सोंठ, हरा धनिया आदि पत्ते वाली सब्जियाँ, लहसून, हींग, गुड़, जीरा, मेथी, काली मिर्च, धनिया, घी, दूध, दही आदि सब औषधि गुणों से युक्त हैं । 'घृतेन वर्धते बुद्धिः क्षीरेणायुः प्रवर्धते' ऐसी एक उक्ति है; अर्थात् मानव की बुद्धि शक्ति वृद्धि के लिए घी ही औषधि; दूध आयुर्वर्धक; मानव शरीर में पुष्ठिदायक अंगों की वृद्धि के लिए दलहनें, जीवसत्वों के लिए हरी सब्जियाँ, पाचनशक्ति के वर्धनार्थ सोंठ, लहसून, हींग आदि; आहारस्थ दोषों के निवारणार्थ जीरा, मेथी, काली मिर्च, इलायची आदि मसाले, इनकी पूर्णता के लिए दूध, दही आदि हैं ।

केवल इतना भर नहीं, आहार सेवन के बाद, सेवित आहार के सुलभ पचनार्थ पान–बीड़े का चबाना भी इसमें आता है ।

इस प्रकार, हिंदू पद्धति के अनुसार आहार बना कर सेवित किया, तो परिपूर्णता विकसित होती है । 'आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः' याने मन परिशुद्ध रहना हो, तो अपना आहार भी उतना ही परिशुद्ध रहना चाहिए। इसीलिए, उनका उपयोग करते समय, उनके औषधि गुणों को पहचान/समझ कर रसोई में प्रयोग करने से उसके परिणाम अधिक होते हैं। साथ ही उनका परिचय कराते हुए, सभी लोगों के द्वारा उसका पालन हो, इस

ओर ध्यान भी देना चाहिए । साथ ही, घर में यदि कोई पुराने समय के पाकशास्त्र में निपुणता प्राप्त वरिष्ठ या अपने अन्य कोई सगे हों, तो उनसे मिल कर, उनके ज्ञान-अनुभवों से लाभान्वित होना चाहिए । हमें पता होना चाहिए कि आहार की हर वस्तु भी एक औषधि ही है । दादी की दवा दादी का बटुआ ऐसे ही अनुभवों से चलती आयी परिपाटी है ।

२. यदि कोई बीमार पड़ा, तो क्या पहले आप घरेलू दवा करते हो?

अधिकांश बच्चों/स्वस्थ लोगों को आने वाली बीमारियाँ तात्कालिक होती हैं। प्राय: वे हवामान व आहार विपरीतता के कारण आती हैं । उदा. खाँसी, सर्दी, पेटदर्द, सिरदर्द आदि । इन छुटपुट बीमारियों में अपने घर में ही प्रयुक्त चीजों का ही उपयोग औषधि के रूप में कर सकते हैं । सर्दी के लिए तुलसी, काली मिर्च, गिलोय, तुंबी के फूल, जीरा, सोंठ, लहसून आदि से बनाए काढ़े का सेवन तथा इन पदार्थों का धूप सुँघाना आदि; खाँसी आने पर सोंठ, धनिया, कढ़ीपत्ता, जीरे का काढ़ा; या हल्दी, काली मिर्च डाल कर उबाला हुआ दूध; सिरदर्द में हल्दी-चंदन का लेपन आदि उपयुक्त होता है । अपचन में रामबाण होता है कालीमिर्च, पुदीना, तुलसी, सोंठ, हींग, इलायची का प्रयोग । इनके कारण किसी भी प्रकार के प्रतिकूल परिणाम नहीं होतें । यदा-कदा इनके प्रयोग के बाद भी बीमारी नहीं हटी, तो डॉक्टरों से सलाह लेनी चाहिए ।

३. क्या आप समय-समय पर इसके बारे में सभी घर वालों के साथ चर्चा करते हो?

घरेलू दवा बनाते समय, उसके औषधि गुण, तैयार करने की विधा आदि सभी बातों के बारे में घर वालों के साथ चर्चा करनी चाहिए। उदा. ज्येष्ठ जनों के साथ चर्चा की तो कुछ विशिष्ठ समस्याओं के परिणामों के लिए कुछ अति प्रखर ऐसी औषधियाँ वे बता देते हैं । उदा. तुलसी, हल्दी, बीड़े का पान, मुनक्के, खजूर आदि के प्रयोग से सामान्य खाँसी दूर होती है। लेकिन तगड़ी खाँसी का निवारण पिप्पली, बिल्वगर आदि विशिष्ठ जड़ीबूटी से कर सकते हैं । इसके साथ ही छोटों को भी इसका संज्ञान होता है । यदि उनको यह भी बता दिया कि उस काढ़े/औषधि को कैसे तैयार करना है, तो उन सबको उसका परिचय होता है और 'घर-आँगन की वनस्पति औषधि ही होती है' यह बात भी स्पष्ट हो सकती है ।

४. **क्या आपके ध्यान में आया है कि अपने देश का आरोग्य शास्त्र अर्थात् आयुर्वेद (i.e. Science of Life) व विदेशी चिकित्सा शास्त्र (i.e. Science of Medicine) इन दोनों के चिंतन में मूलभूत अंतर है?**

देश का वातावरण, जन समुदाय तथा उनके द्वारा स्वीकृत चुनौतियों के अनुसार, हर देश का चिंतन साकार होता है । वही बात आयुर्वेद व ऍलोपॅथी की है । मानव का संपूर्ण जीवन ध्यानपूर्वक देख कर, सूक्ष्म उपचार करते हुए, बीमारी आने पर चिकित्सा देने वाला अपना आयुर्वेद समग्र जीवनशास्त्र है । बीमारी आएं ही नहीं, यही इसका उद्देश है । पाश्चात्य उपक्रम का नाम है चिकित्साशास्त्र (Science of Medicine)। इसमें रोग आने के उपरांत ही चिकित्सा करनी होती है । साथ ही बीमार को औषधि देने वाला आयुर्वेद और बीमारी पर औषधि देने वाली ऍलोपॅथी के चिकित्साक्रमों के बीच जमीन-आसमान का अंतर है ।

५. **क्या आप इसे मानते हो कि आहार की नियमितता व समयानुरूप पथ्य से स्वास्थ्य ठीक रहता है?**

आयुर्वेद में उत्तम जीवन चलाने के अनेक सूत्र बताए गए है । यदि हर मनुष्य अपने पुरखों द्वारा सिखाए जीवनक्रम का सही पालन करता है, तो वह विनारोग का निरामय जीवन चला सकता है । 'सभी प्रकार के रोगों के लिए ऐसी औषधि भी रहती है कि रोग उत्पन्न होगा ही नहीं '- इस सूत्र का अवलंबन करते हुए चिकित्साक्रम रूपित किया गया है । इसमें आहार, विश्राम, पथ्य बहुत ही महत्वपूर्ण हैं । किस समय कौनसा आहार सेवन करना चाहिए, इसका एक बहुत ही अच्छा विज्ञान है । उसी तरह, विश्राम की रूपरेखाएँ कब, कैसे विश्रांति लेनी होती है, यह भी एक महत्त्व का विषय है । उतना ही प्रमुख है परहेज । क्या कुछ सेवन करना चाहिए, इसके साथ ही, क्या कुछ सेवन नहीं करना चाहिए इसका निषेध भी अति महत्व का होता है । सही ढंग से इसका अनुसरण किया गया, तो मनुष्य के अंदरस्थित निरोधक शक्ति बढ़ कर, रोग दूर होता है ।

६. **क्या यह सच है कि समुचित रीति से जीवन जीने से याने आहार-विहार, व्यायाम-विश्राम सही अनुपात में होने पर रोग आते ही नहीं?**

यह अनुभवसिद्ध सत्य है । उम्र, समय, परिवेशों के अनुसार समुचित आहार सेवन करना, कुछ आहारपदार्थ वर्जित करना, उच्चाभिरुचि से युक्त मनोरंजन, समुचित

आहारसेवन–जलपान का सुनिश्चित समय, शरीर की आवश्यक ता के अनुसार विश्राम आदि से मनुष्य की रोगनिरोधक शक्ति बढ़ती है । स्पष्ट है कि इससे रोग दूर ही रहते हैं।

७. क्या यह सही है कि अपने घरों में रसोई के लिए उपयोग में लायी जाने वाली सभी सामग्रियाँ स्वास्थ्यलाभ व रोगनिवारणार्थ उत्तम होती हैं?

भारतीय पाकशास्त्र याने रसोई बनाना, परोसना, आहार–सेवन करना – ये तीनों मनुष्य का स्वास्थ्य बलशाली करने की दृष्टि से ही रूपित हुए हैं । विगत हजारो वर्षों से हमें मिल रहा प्रत्यक्ष अनुभव है कि रसोई की सामग्रियाँ पकाने पर व उनके सहज पक्व रूप में किस प्रकार औषधियाँ वन सकती हैं व हरी सब्जियाँ, फल, विविध प्रकार की तरकारी, दाल, सांभर, उनके सभी मसाले आदि मनुष्य की स्वास्थ्यशक्ति बढ़ाने के लिए ही हैं । सब लोग मान्य करते हैं कि रसोई में प्रयुक्त हर वस्तु किसी न किसी रोग का निवारण करती है ।

८. इसका कोई जानकार व्यक्ति आपके घर में है?

कुछ ही साल पहले, हर गृहिणी को यह पता होता था कि रसोई की हर सामग्री का गुण व उपयोग क्या है? उनका कैसे उपयोग करने से किस रोग का निवारण होता है? लेकिन घरों में आपसी संवाद कम होकर, एकत्रित आना रुक जाने से, समाज के लिए वहुत उपयुक्त ऐसा एक बड़ा ज्ञान पूरा नष्टप्राय हो गया है । किंतु, वह पूर्णरूपेण लुप्त नहीं हुआ है । बहुत सारे घर अभी भी बचे हैं । बाकी लोगों ने उनसे यदि वह सीख लिया तो, समाज का बड़ा लाभ होगा ।

९. क्या आप यह मानते हो कि बीमारी के प्रारंभ में ही, इसके जानकार वरिष्ठों की सलाह लेकर ही आगे बढ़ना उचित होता है?

इसे हर कोई मान लेगा । वैसे ज्येष्ठ जनों किसी भी गाँव–मोहल्लों में रहते हों, तब भी वे समाज के लिए शक्तिस्रोत होते हैं । सभी लोग उनके पास जाते हैं । इतना ही नहीं, वे स्वयं ही सबके पास दौड़ते जाकर, सबका हालचाल पूछते हुए, धीरज बँधाते हैं । तब अनजाने में ही यह विद्या अनेक लोगों तक फैलती है ।

मठ-आश्रम

१. मठ याने क्या है? क्या वर्तमान में मठों की आवश्यकता है?

अपने देश में अनादि काल से मठ की संकल्पना ने श्रद्धाकेंद्र के रूप में गरिमायुक्त स्थान प्राप्त किया है । आध्यात्मिक साधना में उन्नत अवस्था प्राप्त साधु-संत केवल आत्मोद्धारात्मक चिंतन छोड़ कर, समाजाभिमुख होकर, सबके श्रेय-प्रेय वर्धनार्थ जनसामान्यों की आकांक्षाओं के केंद्र बनने हेतु स्थापित हुए आलय ही मठ हैं । सनातन भारत की गुरुकुल पद्धति के सन्निकट समीपताप्राप्त मठों ने गुरुकुल पद्धति की शिक्षा-दीक्षा प्रदान करना, सर्वतोमुखी विकास के मंदिरों के रूप में, समाजकंटकों का मूलोत्पाटन, दुष्टों का दमन, सज्जनों की रक्षा करने जैसी समाजसेवा में भी महत्त्व की भूमिका का निर्वहन किया है, इसके अनगिनत उदाहरण हम इतिहास में देख सकते हैं ।

समाजोद्धार का संकल्प लेकर, जनसामान्य के जीवन में दिखायी देने वाले उत्थान-पतन, दुःख, संकट, बुढ़ापा, बीमारियाँ आदि सभी झंझटों का समाधान सुझाते हुए, आध्यात्मिक स्तर पर ईशभक्ति, बड़े-ज्येष्ठ जनों की सेवा आदि का प्रबोधन करने वाले मठ आज अभूतपूर्व रीति से अत्यावश्यक बन गए हैं ।

२. मठों की जिम्मेदारी क्या है? क्या आप समाज में अनेक समुदायों के मठों के अस्तित्व को सही मानते हो?

सदैव समाज के अभ्युदय का ही चिंतन करने वाले मठ/आश्रम गुरुतर दायित्व

निभाते हैं । सामान्य जन अपनी रोजमर्रा की समस्याओं का समाधान इन्हीं मठों, वहाँ के पीठस्थ गुरुजनों से ही पाते हैं । आर्थिक दृष्टि से दुर्बल जनों के बच्चों की शिक्षासंबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ-साथ, समाज में सुयोग्य नागरिकों को रूपित करने में अहम भूमिका निभाने वाले मठ दीन-आर्त लोगों के संकटों में सदैव संवेदनशील रहते हैं । आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के साधना मार्ग में दीपस्तंभ बन कर, ये मठ कार्य कर रहे हैं ।

इसी दायित्व के कारण, इन मठों द्वारा स्थापित-संचालित श्रेष्ठ गुणवत्ता की शिक्षा संस्थाएँ, अस्पताल, देवालय आदि समाजोद्धार के लिए अपना ही अनूठा योगदान दे रहे हैं । इस प्रकार अपने संस्थापकों के ध्येयोद्देशों का समर्थ निर्वहन करने का दायित्व इन मठों पर ही है ।

समाज के अंतिम व्यक्ति का उद्धार हो, इस वीरसंकल्प के साथ ही स्वामी विवेकानंद ने श्री रामकृष्ण मठ की स्थापना की है । लेकिन इस बृहत् राष्ट्र में सर्वजनस्पर्शी रूप में केवल कुछ ही मठों को कार्यनिर्वहन करना संभव नहीं है; यह सही भी नहीं। संबंधित प्रदेशों, जनसमुदायों के रूढ़ीगत आचार-विचारों का तलस्पर्शी अध्ययन किया हुआ व उन्हीं लोगों के द्वारा ही साकार हुआ कोई मठ ही अतीव समुचित लगता है।

यहाँ जाति-आधारित मठों की ओर सापेक्ष दृष्टि से देखने के स्थान पर, ऐसा कह सकते हैं कि संबंधित समुदायों के उद्धार की अपेक्षा करते हुए, अपने जीवन का स्तर दूसरों के लिए आदर्शप्राय बनाने व अन्यों से तुलना करने की हद तक प्रगतिशील करने की सहज प्रक्रिया ही आज दिखायी देने वाले असंख्य मठों के अस्तित्व का कारण है ।

३. क्या आपने उपरोक्त वर्णन के मठ देखे हैं? कोई उदाहरण दे सकते हो?उनसे क्या प्रेरणा पायी है?

अपने देश में पुराने समय में कूलीमठ नामक स्थानीय महत्त्व के मठों में अति उन्नत संस्कार व शिक्षा दी जाती थी । बिना किसी जातिभेद के सभी गरीब बच्चों की शिक्षा वहाँ होती थी ।

अब व्यापक स्तर पर, कर्नाटक का श्री सुत्तूर मठ, श्री आदि चुंचनगिरि मठ, महाराष्ट्र का स्वाध्याय मंडल, गुजरात के स्वामी नारायण पंथ, पू. आसाराम बापू, उत्तर प्रदेश का दीदी माँ साध्वी ऋतंभरा जी का वात्सल्य धाम, उत्तरा खंड का पू. सत्यमित्रानंद

गिरी का भारत माँ मंदिर, गायत्री परिवार, पू. रामदेव बाबा, मुनी तरुण सागर, पंजाब में

अकाल तख्त और अन्य कई संत-संथाओं द्वारा देश भर में समाज प्रबोधन का काम चल रहा है ।

इन मठों ने प्रमुख अन्नछत्र, दासोह (अन्नदान) क्षेत्र, शिक्षा क्षेत्र, वेद/वैदिकों के साधना क्षेत्रों के रूप में ख्याति प्राप्त की है ।

समाज को एकत्रित बाँध के रखने में इन मठों द्वारा निभायी जाने वाली गुरुतर भूमिका का स्मरण अत्यंत कृतज्ञतापूर्वक करना चाहिए । बगैर किसी दूषित भावना से इनको भेंट देते हुए, प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिए और वहाँ के सेवाकार्यों में यथासंभव योगदान देना चाहिए ।

परिसर सुरक्षा

१. परिसर याने क्या है?

हम सब जहाँ श्वासोच्छवास करते हुए ज़ीतें है, उस क्षेत्र को मोटे तौर पर परिसर कहते हैं । यह केवल इतने तक ही सीमित नहीं है; अपने चारों ओर स्थित प्राणी, पंछी, कृमिकीट भी बिना किसी भय के वास करते हुए स्वच्छंदता से विहार करने वाले वातावरण को भी 'परिसर' कहा जाता है । और अधिक व्यापक अर्थ में अपने आसपास के पेड़-पौधे, कुँएं-तालाब, झरने-नदियाँ, पहाड़-पर्वत, सागर-महासागर व उनमें आश्रय करते हुए जीने वाले चराचर जीव-वस्तुओं की सहज, निर्मल स्थिति भी परिसर ही है !!!

२. परिसर कैसे कलुषित होता है?

सहजता से खिलते हुए खड़ी हुयी प्रकृति का अपनी आवश्यकता ओं के अनुसार उपयोग किया गया, तो कुछ हानि नहीं है । लेकिन, विश्व में सभी प्रकृति केवल अपने उपभोग के लिए ही है और मानव ही इसका एकमात्र मालिक, ऐसी आधुनिक मनुष्य की गँवारगी व असीम लालच के कारण सभी पेड़-पौधे गिराये जा चुके हैं, पशु-पंछियों की प्रजातियाँ ही विनष्ट हो चुकी हैं, नदी-तालाब सब मलीन बन चुके हैं, (खदानों के कारण) पहाड़-पर्वत भूमि से समतल बन चुके हैं; खाइयाँ बन चुकी हैं।

ऐसे अनुत्तरदायित्वपूर्ण बर्ताव से नगर प्रदेशों में अब तो चिड़ियाँ, गिलहरियाँ आदि दिखायी देतीं ही नहीं । लालच के कारण नदियों में चलाए जाने वाले विस्फोटों के कारण, जलचरों की अनेक प्रजातियाँ नष्ट हो गयी है । अरण्यों में हजारों-लाखों पेड़

काटे जाने से, अनेक किस्म की वनस्पतियाँ व जड़ीबूटियाँ अदृश्य हुयी हैं । कारखानों के त्याज्य पदार्थों के कारण नदियाँ, जलाशय व सागर विषाक्त बन गए हैं ।

इन सबके परिणामस्वरूप, वातावरण प्रदूषित होकर, समूचा परिसर ही कलुषित हो गया है ।

३. परिसर विनाश के परिणाम क्या हैं? मनुष्य की क्या हानि हुयी है?

परिसर विनाश का सीधा परिणाम ही प्रकृति का प्रकोप है । अकालिक बारिश, अचानक बाढ़,(एक अनुमान के अनुसार उत्तर कर्नाटक में हो रही अंधाधुंद खदानगिरी से वातावरण का असंतुलन बढ़ कर इस साल अप्रत्याशित वर्षा व बाढ़ आयी) । दुनिया के अनेक विज्ञानियों ने पहले ही चेतावनी दे दी है कि केवल कुछ ही वर्षों में वैश्विक समस्याओं के रूप में हमें सता रहा भीषण अकाल-दुष्काल-सुनामी-भूकंप, गड़गड़ाहट के साथ बिजली का गिरना, अभाव आदि सब इसीका ही परिणाम है ।

अब परिसर मालिन्य के कारण मानवता पर हुए परिणामों की ओर देखेंगे । हजारों वर्षों से जिनके बारे में देखा/सुना ही नहीं हैं, ऐसी बीमारियाँ मनुष्यों को सता रही हैं। उनको बैक्टेरिया, वायरस आदि नामों से पहचाना गया होगा, तो भी उनकी पृष्ठभूमि बड़ी स्पष्ट है । आधुनिक मानवता को बाधित करने वाली असंख्य बीमारियाँ प्रदूषित वातावरण से ही उद्भूत हुयी हैं । वायु-जल मालिन्य से अस्थमा, उल्टियाँ, पेट झाड़ना, टायफाइड़, मलेरिया, कॉलरा, सुअर ज्वर, चिकनगुनिया आदि बीमारियों का मूल कारण कलुषित परिसर ही है । वैद्यों के अभिप्रायानुसार बच्चों को सताने वाली तीव्र स्वरूप की बीमारियों का कारण भी हमारे द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले कीटनाशक, रासायनिक औषधियों का सिंचन आदि ही हैं । कुल मिला कर, यही स्वयंसिद्ध सत्य है कि परिसर का विनाश करने वाला स्वयं आदमी भी अंत में विनष्ट होने जा रहा है ।

४. परिसर की रक्षा कैसे की जा सकती है?

इसके लिए कुछ सुलभ सूत्रों का अनुसरण करना पड़ेगा :

१. घर के आंगन में स्थित पेड़-पौधों को अच्छी तरह से बचाना चाहिए, बच्चों को छोटे-छोटे पेड़-पौधे लगाने व उन्हें बढ़ाने का प्रशिक्षण, प्रोत्साहन देना ।

२. गाँव-गाँव में वृक्षारोपण करते हुए, श्रद्धा से पेड़ों की रक्षा करने का संकल्प करना ।

३. तालाब–कुँएं–झील आदि में रासायनिक साबुन के उपयोग पर प्रतिबंध लगाना।

४. जैविक खेती का अनुसरण करना, उसे उत्तेजन देना ।

५. पशु–पंछियों की प्रजातियों को पहचान कर, उनका पोषण करने की इच्छा बच्चों में छुटपन से ही जगाना ।

६. परिसर सुरक्षा मंच, वन्य प्राणी सुरक्षा मंच आदि संस्थाओं के सक्रिय सदस्य बन कर काम करना ।

७. हाल ही में सड़क चौड़ी करने के लिए पेड़ों की लंबी कतारों की कतारें ही निर्ममता से काटी गयी हैं; काटी जा रही हैं । वहाँ काटे गए पेड़ों के स्थान पर एक पेड़ लगाते हैं ऐसा कोरा भरोसा मात्र अवश्य देते हैं । किंतु इसका अन्वयन कहीं पर भी हुआ नहीं है । इसीलिए; पंक्तिबद्ध पेड़ों की सुरक्षा करने हेतु संघर्ष करने वालों का समर्थन करना होगा । प्रकृति के विनाश के उपरांत जगने से कोई भी प्रयोजन नहीं होगा ।

अपने बच्चों, पोतों के लिए हम क्या बचा के रखने वाले हैं? ऐसा प्रश्न उठा, तो आत्मसाक्षी बन कर एकमात्र उत्तर दे सकते हैं : परिसर प्रज्ञा परिसर सुरक्षा!

तीर्थयात्रा

१. तीर्थ याने क्या है ?

'तीर्थ' यह हिंदू संस्कृति की ही एक विशिष्ट संकल्पना सूचित करने वाला शब्द है। सामान्यत: देवता को अभिषेक किया हुआ जल ही तीर्थ याने पवित्र माना जाता है । देवता–ऋषि सानिध्य से युक्त सभी नदियाँ, जलाशय, कुँएं, तालाब, समुद्र आदि सब तीर्थ बन जाते हैं । कुछ संन्यासियों के नामों के अंत में भी 'तीर्थ' शब्द आता है। वहाँ पर भी पवित्र यही अर्थ होता है । इस प्रकार, जहाँ जाने से पुण्य प्राप्त होता है, उस स्थान को 'तीर्थ' या 'क्षेत्र' कहते हैं । तीर्थस्थली भी कहते हैं ।

२. यात्रा याने क्या ?

'यात्रा' याने सुनिश्चित उद्देश्य से निकल के किया हुआ प्रवास, उदा. 'जैत्रयात्रा', 'दंडयात्रा', 'तीर्थयात्रा', 'अंत्ययात्रा' आदि शब्द ही उनका उद्देश्य स्पष्ट् करते हैं । मनोरंजनार्थ, स्वहितार्थ, व्यापार के लिए किया हुआ प्रवास यात्रा नहीं कहलाता । खास कर, धार्मिक दृष्टि से किया प्रवास तीर्थयात्रा कहलाता है । मंगलकारी क्षेत्रों में जाना, यही इसका अर्थ है।

३. तीर्थयात्रा क्यों करनी चाहिए?

तीर्थयात्रा आत्मसंस्कार के लिए की जाती है । व्यक्तिगत, कौटुंबिक, सामाजिक व आत्मोन्नति के विकासार्थ यात्रा करनी होती है । तीर्थयात्रा अकेले कर सकते हैं; सामूहिक

भी कर सकते हैं। सभी प्रकार की तीर्थ यात्राओं में कोई न कोई नियम होता ही है। तीर्थयात्रा अपने ही देश की विशेषता है। इस देश की इंच-इंच भूमि पवित्र है। गाँव, देहात, नगरों से लेकर सभी गिरि-पर्वत, वन-अरण्य, नदी-झरने, तालाब-सरोवर आदि हमारे लिए तीर्थ ही हैं। भूमि हमारी माता है; उसकी पूजा ही श्रेष्ठ पूजा है। साथ ही, विशेष संदर्भों में सुनिश्चित स्थानों पर वहाँ की दैवी शक्ति की अनुभूति पाकर उसका आवाहन् करना ही तीर्थयात्रा का उद्देश्य होता है। भक्तिभाव से नियमबद्ध रीति से चलते हुए, क्रमश: स्वयं ही देवत्व प्राप्त करने के प्रयास करना ही तीर्थयात्रा है। 'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्' (शिव बन के ही शिव की पूजा कीजिए) यही सभी के मन का शुभ संकल्प होता है। तीर्थयात्रा हर हिंदू के जीवन का भाग है। अपने गाँव के समीपस्थ स्थान या अपनी कुलदेवता की यात्रा पर बार-बार जाना संभव है। जीवन में न्यूनतम एक बार तो, काशी-रामेश्वर जाना है, यह विचार सबके मन में आना चाहिए। जैसा ही मन दृढ़ होता है, अमरनाथ यात्रा, कैलाश-मानसरोवर यात्रा पर भी जाना चाहिए। ये दोनों भी अत्यधिक दैहिक श्रम, मानसिक व्यवधान व आर्थिक बोझ से युक्त हैं। अत: हिंदुओं का संकल्प होता है कि यदि इस जन्म में संभव नहीं हो पाया, तो अगले जन्म में क्यों न हो, इन दोनों क्षेत्र की यात्रा अवश्य करेंगे।

४. तीर्थयात्रा करते समय किन बातों का ध्यान रखना होता है?

आजकल रास्तों व वाहनों की अनुकूलता बढ़ जाने के कारण यात्रा करने वालों की संख्या भी बढ़ गयी है। लाखों-करोड़ों की संख्या में लोगों की सहभागिता वाले कुंभ मेले, पुष्कर, शबरीमलै, काँवर यात्रा आदि कुछ प्रख्यात यात्राएँ हैं।

यात्रा कोई भी हो, अंतर, मार्ग, सहयात्री, आर्थिक बोझ, मार्ग में निवास, भोजन, टिकट आरक्षण आदि के बारे में पहले ही सुनिश्चित कर लेना चाहिए। आज के दिनों में यात्रिकों का हित ही प्रमुख मानते हुए, अनेक यात्रा कंपनियाँ उत्तम व्यवस्था कर रही हैं। उन्हें खोज कर, उनके जरिए भी जा सकते हैं।

यात्रा के दौरान किसीके साथ भी कठोरतापूर्ण बातें या वादविवाद न करते हुए, सबके साथ हँसते-खेलते रहना चाहिए। कष्ट होने पर, उसके बारे में अधिक चिंता न करते हुए, उसे सही ढंग से लिया गया, तो यात्रा सुखकर होती है। वापस लौटने पर सगे-संबंधियों व आप्तमित्रों को क्या कुछ बताना है, इसके बारे में सोच कर, वैसी जानकारी संग्रहित करते हुए, एक वही में लिख कर रखना चाहिए। उनको देने हेतु प्रसाद तथा अन्य समुचित सामग्री

आदि लेकर आना चाहिए । प्रमुख बाते याने सभी स्नान, पूजा आदि में भाग लेते हुए संबंधित स्थानों के पुराण आदि सुन के समझ लेना जरूरी है । आपको सहायता करने वालों के नाम यथासंभव स्मरण में रख लीजिए । यथाशक्ति दान करना चाहिए।

५. तीर्थयात्रा के समय क्या कुछ नहीं करना चाहिए?

अनावश्यक वाद-विवाद, झगड़ा आदि टालना चाहिए । कहीं भी अकेले नहीं जाना चाहिए । बोझ उठा न सकने वाली चीजों का संग्रह नही करना चाहिए । असेव्य पेय/पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए ।

चाहे जहाँ थूँकना, शोरगुल मचाना, जोर से बोलना नहीं चाहिए।

आपके मार्गदर्शक वर्णन करते समय टेढ़ेमेढे, गंदे प्रश्न न पूछते हुए, गंभीरता से सुन कर ग्रहण करना चाहिए । तीर्थक्षेत्रों को गंदा नहीं करना चाहिए । देवालय, पेड़, शिलालेख आदि पवित्र स्थान तथा सुरक्षा स्थानों पर अपना नाम, गाँव आदि नहीं लिखना चाहिए । किसी को भी दुख नहीं देना चाहिए । मन में प्रश्न आया, तो अंत में पूछ सकते हैं ।

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं पुण्यक्षेत्रे विनश्यति ।
पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ।।

'अन्य स्थानों में किए पाप पुण्यक्षेत्र में नष्ट होते हैं । पुण्यक्षेत्र में किए पाप वज्रलेप की भाँति शाश्वत रहते है' इसका स्मरण रखना चाहिए।

६. तीर्थयात्रा के समय क्या क्या संग्रहित करना चाहिए?

उस क्षेत्र से संबंधित सभी पौराणिक, ऐतिहासिक जानकारी संग्रहित करनी चाहिए। आपके साथ पधारे हुए स्थानिक व्यक्तियों की जानकारी, आपके समीपस्थ संबंधियों के लिए उस क्षेत्र से क्या कुछ क्रय कर सकते हैं (जैसे चित्र, धागा, तीर्थ, प्रसाद, विभूति, कुंकुम आदि में से क्या लेना है) इसकी सोच कर खरीद के साथ ही लेना चाहिए ।

७. तीर्थयात्रा के पश्चात् अनिवार्य रूप से क्या करना होता है?

सभी सगेसंबंधी, मित्रों को एकत्रित कर, लाए हुए तीर्थ-प्रसाद का वितरण करना चाहिए । वितरण के पहले आपके द्वारा वहाँ पर देखे हुएं स्थानों की विशेष जानकारी, आपके ध्यान में आयी उत्तम बातें आदि सब कुछ ऐसा बताना चाहिए कि सुनने वालों के मन में भी

एक बार वहाँ जाकर आने की इच्छा उत्पन्न हो । अपरिहार्य न हुआ तो तकलीफों, कष्टों का उल्लेख टालिए । हिसाब लगा कर, आप किसी को कुछ तो देय हो, तो यथाशीघ्र दे डालिए।

८. तीर्थयात्रा कब सफल होती है?

तीर्थयात्रा करते समय मन में उद्भूत सत्संकल्पों का स्मरण कर, उनका पालन करने हेतु हमें क्या करना चाहिए, इसका चिंतन करते हुए, शीघ्र ही उसे प्रारंभ कर दीजिए; देरी होने से भूल सकते हैं ।

आपके निकटवर्ती बांधवों के मन में तीर्थयात्रा के बारे में उत्तम दृष्टि व अच्छे काम करने की इच्छा उत्पन्न हुई, तो अच्छा ही है । उनको स्वयं भी तीर्थयात्रा करनी चाहिए, ऐसी अपेक्षा हुयी, तो आपकी यात्रा सफल और आपका जीवन चंगा होता है।

हिंदुत्व

१. कौन हैं हिंदू?

इस प्रश्न का उत्तर देना इतना सरल नहीं है । जो भी कहें, कुछ लोग छूट जाने (अव्याप्ति) का दोष आता है; या कोई अन्य लोग इसमें घुसाए जा सकते हैं । तब अतिव्याप्ति हो जाती है । इन दोनों को टाल सकने वाला उत्तर देना, थोड़ा कठिन ही है । उदाहरणार्थ : हिंदुस्थान में वास करने वाले सभी लोग हिंदू हैं, ऐसा कहना ऊपरी तौर पर सही लग सकता है । लेकिन प्रश्न यह उठता है कि यहाँ पर रहने वाले गैर-हिंदू जनसमूह तथा दूसरे देश के लोगों का क्या होगा ? उसी तरह एक अनुमान के अनुसार, अमेरिका में रहने वाले पच्चीस लाख हिंदुओं का प्रश्न भी सामने आता है । अब परंपरागत चला आया वर्णन – जैसा कि ''हीनं दूषयति इति हिन्दुः'' (हिंदू वह है, जो पापों का तिरस्कार करता है) अथवा ''आसिन्धु सिन्धुपर्यन्ता....'' नामक वीर सावरकर द्वारा की गयी व्याख्या भी इसी न्यूनता से भरी है।

क्योंकि, हिंदू यह कोई जाति नहीं है; वैसे ही वे एक ही देश के निवासी नहीं हैं; कई देशों मे रहते हैं । अनेक देवताओं की पूजा करते हैं । उन में ईश्वर को न मानने वाले भी हो सकते हैं । तो फिर, अनेकों के अभिप्रायानुसार, दुनिया के बीसियों देशों में फैले हुए, विविध भाषाएँ, रूढियाँ, रीतिरिवाजों को मानते हुए जीवनयापन करने वाले सभी हिंदुओं की पहिचान कर सकने वाला विवरण संभव ही नहीं है । अनेक लोग यह भी कह सकते हैं कि हिंदू याने परमात्मा की भाँति अवर्णनीय, अनिर्वचनीय होता हैं । एक चतुरोक्ति है : Hindutva is so fine, it cannot be defined.

तो भी विश्वव्यापी हिंदू समाज की पहचान दिलाने हेतु विश्व हिंदू परिषद ने प्रयासपूर्वक एक व्याख्या प्रस्तुत की है । वह लघु वाक्य नहीं है; दो–तीन श्लोकों से युक्त है । उसे परिपूर्ण नहीं कह सकते, फिर भी कुतूहलकारी जनों का बौद्धिक शमन करने के लिए वह यहाँ पर दी गयी है । इससे भी बेहतर विवरण यदि किसीने सुझाया, तो उसका स्वीकार करने की प्रामाणिकता, उदारता हिंदू समाज में है ।

भारतीयर्षिसम्प्रोक्तान् इहामुत्रार्थसाधकान् ।
योऽङ्गीकरोति सश्रद्धं सत्सिद्धान्तान् सनातनान् ।।
महात्मभिः दिव्यशीलैः काले काले प्रवर्तितान् ।
सम्प्रदायानाद्रियते यः सर्वान् पारमार्थिकान् ।।
यत्र कुत्राऽपि जातः सः वास्तु यः कोऽपि जन्मना ।
सच्छीलोदारचरितः सोऽत्र हिन्दुरिति स्मृतः ।।

अर्थ : जो भारतीय ऋषियों द्वारा संकल्पित, इहलोक–परलोक दोनों का मार्ग बन सकने वाले, उत्तम शाश्वत सिद्धांत श्रद्धापूर्वक मानते हैं; उत्तम आचरण वाले महात्माओं द्वारा समय–समय पर प्रवर्तित उत्तम पारमार्थिक संप्रदायों का जो आदर करते हैं; ऐसे सभी गुणवान, उदार चरित लोग–चाहे वे किसी भी देश में जन्मे हों, किसी भी जाति से जुड़े हों – हिंदू कहलाते हैं।

२. हिंदुत्व शब्द की व्युत्पत्ति कैसे हुयी ?

कुछ लोगों ने उल्लेख किया है कि ''सिंधु शब्द का उच्चार न कर सकने वाले यवनों ने 'स'कार के बदले 'ह'कार का उच्चार किया; इसीसे 'हिंदु' बन गया है।'' लेकिन इसका प्रयोग उससे भी प्राचीन होने के कारण यह कह सकते हैं कि वह 'अनादि' है । अनादि काल से प्रचलित शब्द होने के कारण, इसकी व्युत्पत्ति की जिज्ञासा केवल जिज्ञासा ही बन कर आगे चल रही है ।

कांची पीठ के परमाचार्य पूज्य श्री श्री चंद्रशेखरेंद्र सरस्वती जी द्वारा प्रस्तुत विवरण इसका समाधान कर सकता है ।

'स'कार को 'ह'कार जैसा उच्चार करने वाले लोग पहले भी थे। आज भी हैं । आगे भी रहेंगे । प्रादेशिक उच्चारों की पहचान करनी चाहिए, आदर करना चाहिए। 'सिंधु' शब्द संस्कृत है और 'हिंदु' प्राकृत। इनमें से कौनसा पहले होगा ? प्राकृत या संस्कृत ? स्पष्ट है कि प्राकृत ही । यानि हिंदु ही पहले था, बाद में 'सिंधु' आया । लेकिन, वह साहित्य में दिखायी

नहीं देता । अर्थात् साहित्य पहले केवल संस्कृत में ही होने के कारण सिंधु ही प्रचलित हुआ था । परंतु जैसे ही धीरे-धीरे प्राकृत में भी साहित्य का विकास होता गया, तब 'हिंदू' शब्द साहित्य में दिखायी देने लगा । उदाहरणार्थ: 'असम' व 'अहोम' नामक दो शब्द । असम समूचे देश में उपयोगित होने वाला शब्द है। लेकिन असम स्थित अधिकांश लोग उसे 'अहोम' ही कहते हैं ।

३. क्या घरों में 'हिंदुत्व' आवश्यक है ?

हिंदू यह एक जीवन पद्धति है । दुनिया में प्रचलित ऐसा एकमात्र धर्म है हिंदू धर्म । वह मनुष्य का अति प्राथमिक तथा आध्यात्मिक धर्म है। अपने यहाँ जिसे धर्म कहते हैं, उसको हमने परंपरा से कर्तव्य के अर्थ में ही स्वीकार किया है । यदि हम चाहते हैं कि घर के सभी सदस्यों में यह कर्तव्यभाव बिंबित हो, तो हिंदुत्व का घर में होना आवश्यक है ।

४. घर में हिंदुत्व कैसे दिखायी देगा ?

हिंदू धर्म का अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू है - 'जियो और जीने दो।' अत: जीवन के हर स्तर पर, चाहे वह घर हो या कोई दूसरी जगह, वहाँ इस सिद्धांत का अनुसरण किया जाए, तो वहाँ पर हिंदुत्व का ही अनुसरण करना होगा । यहाँ अधिकारों के बजाय कर्तव्यों पर अधिक बल दिया गया है । अत: घर में अपने-अपने कर्तव्यों का पालन किया जाए, तो वह हिंदुत्व का परिपालन करने जैसा ही होगा । अनिवार्य संदर्भों में भी हमारे बुजुर्ग, पूर्वज, पुराणों के महान किरदारों ने जिस तरह आचरण किया है, वह विधा किसी के लिए भी आदर्श है । अत: उन आदर्शों का पालन, धर्म का आचरण ही घर में हिंदुत्व को स्थापित करने की प्रक्रिया है ।

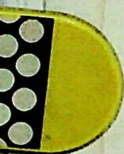


देखिए, पाश्चात्य चिंतन का प्रभाव

* लॉटरी ।
* भिशी, किश्तों (Installments) में वस्तुओं की क्रय करना ।
* 'पैसा हो, तो चाहे जो मिलता है'; 'पैसा ही परमेश्वर है '।
* सब कुछ बिकता है – पानी, देह, पिता, बच्चे आदि सब ।
* 'जिएं तो मौजमस्ती में जिएं ': यह दृष्टि ।
* बिना भूख की अनुभूति का जीवन ।
* 'मार्ग कोई भी हो, लक्ष्यसिद्धि महत्वपूर्ण (End justifies Means)'
* 'गुनाह करके पकड़ में नहीं आना, चल जाता है '– यह दृष्टि ।
* 'क्या बड़ी बात ?' 'क्या होता है ?' 'ठीक है' 'चलता है' ऐसी नीति ।
* तिरस्कार से पैसा फेंकने की विकृति ही संस्कृति बनी है । बचत करना अपराध बन गया है ।
* विदेशी चकाचौंध का आकर्षण, मोह ।
* स्त्रियों की सौंदर्य स्पर्धाएँ । नंगा बनने की ही शिक्षा ।
* रूप का भद्दा प्रदर्शन, रूप की बिक्री, कृत्रिम अंगांगों को प्रोत्साहन ।
* स्पर्धा ही जीवन ।
* हिंसा का लगाव – हिंसा में आनंद उठाने की प्रवृत्ति ।
* प्रकृति मानवीय भोग के लिए ही है – यही दृष्टि ।
* दुनिया मेरे लिए ही है, ऐसा भ्रम ।
* आत्मकेंद्रित भाव : 'मैं भला, जग भला' 'तुम्हारा हाल तुम जानो'।
* आत्मकेंद्रित जीवन का समर्थन करने वाले माध्यम, राजनीति व न्यायालय।
* विकृति को ही संस्कृति के रूप में पेश करने की धूर्तता ।
* अंग्रेजी का आकर्षण, मोह ।
* यंत्रों को अवास्तव महत्त्व ।
* डॉक्टर भी यंत्रों के दास बन चुके हैं ।
* Brands का प्रचार, प्रभाव ।
* भूख से अनजान जीवन ।

- ★ सभी देहाती गँवार, मूर्ख हैं – ऐसी धारणा ।
- ★ बड़े–वृद्धों के प्रति सम्मानहीनता का भाव ।
- ★ जीवन में कोई नियमबद्धता नहीं चाहिए । नियम–कानून धन कमाने में बाधा।
- ★ संबंधों का विस्मरण ।
- ★ नगरों की ओर दौड़; प्रतिभा पलायन ।
- ★ एकांत, एकाकीपन का भय ।
- ★ अंधेरे का डर ।
- ★ मौन से अनभिज्ञता ।
- ★ हर बात के लिए भीड़, शोरगुल मचाना ।
- ★ क्रीड़ाओं में Fixing, Drugs का आधिपत्य ।
- ★ 'Happening' के नाम पर युवाओं में व्याप्त स्वैराचार ।
- ★ बच्चे संपदा बनने के बजाय बोझ बने हैं; माँ न बनने की विकृति ।
- ★ जितना कर्जा उतनी बड़ी प्रतिष्ठा, बड़प्पन – ऐसा भ्रम ।
- ★ Valentine Day आदि Days का प्रभाव ।
- ★ Hybrid संस्कृति, सबको नि:सत्त्व बनाने का मोह, दौड़ ।

5-3-12



ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥

श्रीमद् भगवद्गीता १५-१

जिसकी जड़ें ऊपर व शाखाएं नीचे की ओर हैं, ऐसे पीपल के पेड़ का उल्लेख शास्त्रों ने 'जीवन वृक्ष' के रूप में किया है। यह केवल एक संकेत, एक प्रतिमा मात्र है। वृक्ष का अस्तित्व ही होता है उसकी जड़ों में; उनके द्वारा प्राप्त करने की शक्ति में। ऐसी जड़ें ऊपर की ओर हैं; लेकिन संसार में हमें दिखायी देने वाले पेड़ों की जड़ें नीचे की ओर होती है; अतः प्रस्तुत विवरण इसके बिलकुल विपरीत है। इस प्रतिमान की सुरसता याने ऊपर का उल्लेख अव्यक्त स्वरूपी मूल चैतन्य को, श्रेष्ठता को अर्थात् अपनी सामान्य दृष्टि को दिखायी न देने वाले, किन्तु प्रकृति की सभी विवरणों का मूल कहे गए चैतन्य स्वरूप का यह संकेत है। संसार का मूल याने अव्यक्त परब्रह्म ही है - यही यहाँ की भूमिका रही है। नीचे की ओर स्थित शाखाएँ 'संसार' अर्थात् 'विश्व' की संकेत हैं। यहाँ के पर्ण-पत्तें 'जीवन-वृक्ष' की रक्षा करते हैं। इन पर्ण-पत्तों की तुलना वेदों के साथ किया जाना भी एक मार्मिक बात है। पत्ते वृक्ष की रक्षा करते है; वृक्ष को सौंदर्य, फलवत्ता प्राप्त करा देने में पत्तों का कार्य अतीव आवश्यक होता है। उसी तरह वेद एक साथ ज्ञान व कर्म का संकेत हैं। निरंतर ज्ञाननिष्ठ क्रियाशीलता ही संसार के सार-सत्त्व का आस्वादन करने का साधन है। इस प्रकार संसार याने सृष्टि अर्थात् अपने जीवन को सुंदर, आनंदप्रद बनना हो, तो वह हमारे द्वारा अपनी रोजमर्रा की गतिविधियाँ सही संज्ञान व सही ढंग से चलाने से ही संभव हो सकेगा। यदि अपने घर का बचाव करना हो, तो कुछ कर्तव्यों का परिपालन हमें अवश्यमेव करना ही पड़ेगा। ऐसी कार्यसिद्धि ही अपने घरमे प्रवेश करनेवाले सब अमंगल तत्वोंको दूर कर उसे मंगलमयी भवन बना सकती है। इस प्रकार हमारा घर, नित्य मंगलमयी बना रहे, अमंगलको दूर करनेवाले हो, इसके लिये आवश्यक विचार तथा आचारसंहिता को प्रस्तुत कर के अपने जीवन मित्र बननेवाला कृति ही 'मंगलभवन अमंगलहारी'।